हिन्दी ललित निबन्ध-साहित्य का अनुशीलन

डॉ. प्रफुल्ल कुमार

सर्वाधिकार सुरक्षितः रचनाकार/प्रकाशक की अनुमति के बिना इस पुस्तक को या इसके किसी अंश को संक्षिप्त/परिवर्धित कर प्रकाशित करना या फिल्म बनाना या किसी अन्य प्रकार से उपयोग करना कानूनन अपराध है।

हिन्दी ललित निबन्ध-साहित्य का अनुशीलन

डॉ. प्रफुल्ल कुमार

नवजागरण प्रकाशन
नई दिल्ली

ISBN	978-93-88640-09-1
लेखक	डॉ. प्रफुल्ल कुमार
मूल्य	₹500/-
प्रकाशन वर्ष	2019
सर्वाधिकार @	डॉ. प्रफुल्ल कुमार
मुद्रक	आकृति प्रिंटर्स, नई दिल्ली
प्रकाशक	नवजागरण प्रकाशन
	ए-3, विकासकुंज एक्सटेंसन,
	विकास नगर, उत्तम नगर, नई दिल्ली-110059
	109, प्रथम तल, मनीष मार्केट, सेक्टर-11,
	द्वारका, नई दिल्ली-110 075
	संपर्क : +91-9718013757
	ईमेल : navjagranprakashan@gmail.com
	वेबसाईट : www.navjagran.in

Hindi Lalit Nibandh Sahitya ka Anushilan

A Book by **Dr. Prafull Kumar**

Published by: Navjagran Prakashan

विषय-सूची

प्रथम अध्याय : ललित निबन्ध और हिन्दी का ललित निबन्ध-साहित्य 10

1. ललित निबन्ध : विभिन्न परिभाषाएँ एवं स्वरूप निर्धारण 16
2. ललित निबन्ध के आधारभूत तत्व 23
3. निबन्ध, कहानी, गद्यगीत, संस्मरण, आत्मकथा, जीवनी तथा डायरी रेखाचित्र, रिपोर्ताज, यात्रा-वर्णन, पत्र-साहित्य आदि से ललित निबन्ध का साम्य-वैषम्य 34
4. हिन्दी का ललित निबन्ध-साहित्य 44
   - (क) उन्नीसवीं शताब्दी का ललित निबन्ध-साहित्य
   - (ख) बीसवीं शताब्दी का ललित निबन्ध-साहित्य
   - (अ) स्वतंत्रता पूर्व का ललित निबन्ध-साहित्य
   - (आ) स्वातंत्र्योत्तर ललित निबन्ध-साहित्य
   - (ग) निष्कर्ष 72

संदर्भ—संकेत 74

द्वितीय अध्याय : ललित निबन्धकार

सामान्य परिचय

1. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी 79
2. प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा 86
3. डॉ. विद्यानिवास मिश्र 91
4. धर्मवीर भारती 102
5. कुबेरनाथ राय 114
6. कामता प्रसाद सिंह'काम' 126
7. जैनेन्द्र कुमार 130
8. प्रभाकर माचवे 137
9. शिव प्रसाद सिंह 140
10. अज्ञेय 141
11. इन्द्रनाथ मदान 142
12. कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर 144

संदर्भ-संकेत 147

तृतीय अध्याय : ललित निबन्धों का विषयगत अनुशीलन (1)

1. संस्कृति-सम्बन्धी निबन्ध 154
2. इतिहास-पुराण-धर्मग्रन्थ एवं प्राचीन साहित्य-सम्बन्धी निबन्ध 161
3. धर्म और दर्शन-सम्बन्धी निबन्ध 166

संदर्भ–संकेत 177
चतुर्थ अध्याय : ललित निबन्धों का विषयगत अनुशीलन (2)
1. वर्त्तमान जीवन- सम्बन्धी निबन्ध 179
2. नगर जीवन और ग्रामजीवन-सम्बन्धी निबन्ध 190
3. निजी जीवन-सम्बन्धी निबन्ध 198
4. प्रकीर्ण विषयक निबन्ध 214
संदर्भ–संकेत 221
पंचम अध्याय : ललित निबन्धकारों की जीवन-दृष्टि
1. जीवन-दृष्टि के प्रमुख पक्ष 228
2. अतीत-सम्बन्धी जीवन-दृष्टि 239
3. वर्त्तमान-सम्बन्धी जीवन-दृष्टि 241
4. परम्परा बनाम आधुनिकता-सम्बन्धी चिन्तन 245
5. निष्कर्ष 249
संदर्भ–संकेत 251
षष्ठ अध्याय :- ललित निबन्धकारों की भाषा-शैली
1. शब्द स्रोत् और शब्द संयोजन 253
2. विशिष्ट अभिप्राय गर्भित शब्द 255
3. वाक्य संरचना का स्वरूप 258
4. विशिष्ट भाषिक युक्तियाँ 260
5. भाव निवेदन के विभिन्न रूप 261
6. शैलीकार के रूप में महत्व 262
संदर्भ–संकेत 264
सप्तम अध्याय :- तुलनात्मक अध्ययन
1. विषय वस्तुगत तुलना 265
2. भाषा-शैलीगत तुलना 268
3. जीवन-दृष्टिगत तुलना 271
4. निष्कर्ष 273
आधार ग्रन्थ 275
सहायक ग्रन्थ 279
पत्र-पत्रिकाएँ एवं कोश 282

प्राक्कथन

'हिन्दी ललित निबन्ध-साहित्य का अनुशीलन' पुस्तक(प्रथम संस्करण-2018 ई.) हिन्दी ललित निबन्ध-साहित्य के उद्‌भव से वर्त्तमान तक की विकास-यात्रा का परिचय देते हुए हिन्दी ललित निबन्धों के आधारभूत तत्वों, विशिष्ट लालित्य-बोधक, आकर्षक भाषा-शैली, इसके गरीमामयी स्वरुप, सभर व्यक्तित्व-सम्पन्न निबन्धकारों के गहन अध्ययन, अनुभव, सरल-सहज मित्रवत्सम्प्रेषण-क्षमता आदि से सम्बन्धित विभिन्न पहलुओं पर स्पष्ट विचारों का उद्‌घाटन करती है। इस पुस्तक में हिन्दी ललित निबन्ध को अन्य विभिन्न प्रकार के निबन्धों, अन्य साहित्यिक विधाओं से भिन्न, स्वतंत्र लालित्यपूर्ण स्वरूप में देख पाने के लिए विभिन्न विधाओं से इसके साम्य-वैसम्य का विश्लेषण किया गया है। हिन्दी-साहित्य के इतिहास में उपलब्ध सामान्य एवं विशिष्ट ललित निबन्धकारों के ललित निबन्धों को ललित निबन्ध की परिभाषा, आधारभूत तत्वों एवं स्वतंत्र स्वरूप की कसौटी पर खरा पाकर चयन किया गया है। अध्ययन एवं पहुँच की अपनी सीमा एवं क्षमता भर कार्य करने के उपरांत हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे है कि हिन्दी साहित्य की अन्य समस्त विधाओं की तुलना में हिन्दी ललित निबन्धों की रचना कम हुई है। इसका कारण भी स्पष्ट है- ललित निबन्धों की रचना ऐसे रचनाकार ही करते हैं जो व्यापक अध्ययन, अनुभव एवं सामाजिक क्षेत्र से सम्बद्ध रहते हैं, जिनकी प्रकृति यायावरी होती है। जो विषयांतर में भ्रमण करते हुए पुनः मूल विषय पर आने की क्षमता, धैर्य एवं विवेक रख सकें। जो धूल से धुआँ तक, मानव जीवन से सरोकार रखने वाले किसी भी विषय पर कलम चला सकें। जो गंभीर विषयों को भी सरल सम्प्रेषणीय बनाकर पाठकों के साथ मित्रवत वार्तालाप शैली में आत्मसात करने योग्य बना दें। जिनका अध्ययन एवं अनुभव का क्षेत्र इतना विस्तृत, व्यापक हो कि चयनित विषय के इर्द-गिर्द स्वच्छन्द विचरण कर सकें। अनायास ही एक के बाद एक विचार, भाव सहज गति से अभिव्यक्त होता जाय। पाठकों के साथ मित्रवत वार्तालाप करते हुए निबन्ध को आगे बढ़ाते जायें। ऐसे सभर व्यक्तित्व वाले रचनाकार कम ही होते हैं। ऐसे सभर व्यक्तित्व-सम्पन्न निबन्धकारों की अभिव्यक्ति हिन्दी ललित निबन्धों में होती है। यही पाठकों के लिए आकर्षण और कौतुहल का कारण भी है। पाठकों की स्वाभाविक इच्छा जगती है कि हजारी

प्रसाद द्विवेदी जी ने इतिहास में गोता लगाकर कितने और कैसे-कैसे अनमोल विचारों को अपने निबन्धों में अभिव्यक्ति दी है। भारतीय सभ्यता-संस्कृति की जड़ तक जाकर नाखून क्यों बढ़ते हैं? का कारण मनुष्य की सहजात बर्बरता और पशुत्व कहा है। विद्या निवास मिश्र जैसे विद्वान, अनुभवी निबन्धकार के गाँव का मन भारतीय ग्रामीण सभ्यता-संस्कृति की कैसी-कैसी विशेषताएँ बताया है। प्राकृतिक संसाधनों से लेकर भारतीय सांस्कृतिक जीवन की रम्य झाँकी, घर-आँगन ही नहीं विश्व के अनेक नगरों में गुजरे हुए प्रवासी का दर्द, अपनी मिट्टी की सोंधी महक, विभिन्न साहित्यिक कृतियों के व्याख्याता, परिष्कृत सभर व्यक्तित्व वाला निबन्धकार सामान्य जनजीवन के विविध पक्षों की अंतिम परत तक पहुँचकर जीवन अमृत का कलश ढूँढ लाता है। कुबेर नाथ राय रस आखेट करके कैसे जीवन को सरस बना डालते हैं। ललित निबन्धों में लेखक अन्य साहित्यिक रचनाओं की अपेक्षा अधिक आत्मीयता पूर्वक, अधिक स्वतंत्र-सहज आत्माभिव्यक्ति करता है, इसलिए भी यह आकर्षक है। साहित्यिक कृतियों का मूल्यांकन उसकी विपुलता की अपेक्षा उसकी गुणवत्ता पर आश्रित होता है। संत तुलसी दास का राम काव्य हो या सूरदास का कृष्ण काव्य संख्या में सीमित होकर भी मानव-सभ्यता का भूत एवं वर्त्तमान का परिचायक और भविष्य का सर्वाधिक महत्वपूर्ण, लोकप्रिय मार्गदर्शक है।

प्रस्तुत पुस्तक में ललित निबन्ध का सैद्धान्तिक निरूपण करते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि किस प्रकार अन्तर्वस्तु और उसके प्रस्तुतिकरण की विशेषताओं के कारण ललित निबन्ध विधा अन्य विधाओं(कहानी, संस्मरण, लेख, यात्रा-वृत्तांत, गद्यगीत आदि) से भिन्न हो जाती है। ललित निबन्धकार कहानी, गद्यगीत, संस्मरण रेखाचित्र, रिपोर्ट के तत्वों को आत्मसात कर उनसे आगे बढ़कर लालित्य प्रदान करती है। हिन्दी ललित निबन्ध का इतिहास प्रस्तुत करते हुए क्रमशः इसके विकास और प्रमुख ललित निबन्धकारों के योगदान ही नहीं बल्कि उनके ललित निबन्धों का अनुशीलन भी किया गया है। यह भी स्पष्ट है कि हिन्दी ललित निबन्ध-साहित्य का वर्त्तमान अतीत से अधिक सम्पन्न है। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी, विद्यानिवास मिश्र, कुबेर नाथ राय ऐसी विधा के प्रमुख शैलीकार हैं। प्रो. देवेन्द्र नाथ शर्मा, धर्मवीर भारती, प्रभाकर माचवे आदि के योगदान अविस्मरणीय रहेंगे।

इस पुस्तक में प्रमुख ललित निबन्धों का विषयगत अनुशीलन करते हुए

संस्कृति, इतिहास-पुराण, धर्मग्रंथ, धर्म औरदर्शन, प्राचीन साहित्य,-सम्बन्धी, वर्त्तमान-अतीत, नगर, ग्रामीण, निजी जीवन-सम्बन्धी निबन्धों को अलग से व्यवस्थित किया गया है। निबन्धकारों की जीवन-दृष्टि एवं भाषा-शैली पर प्रकाश डाला गया है। विषय, भाषा-शैली एवं जीवन-दृष्टिगत तुलनात्मक अध्ययन करते हुए खास निष्कर्ष तक पहुँचने की कोशिश की गई है।

इस पुस्तक के समय पर प्रकाशन के लिए नवजागरण प्रकाशन के प्रकाशक श्री राज कुमार अनुरागी जी का मैं आभारी हूँ। गुरुदेव स्व. महेन्द्र किशोर प्रसाद सदैव स्मरणीय रहेंगे, जिनकी प्रेरणा एवं आशीर्वाद से यह कर्म पूरा हो सका है। अपने परिवार के सदस्यों की सहायता एवं उत्साह वर्धन के प्रति भी आभार व्यक्त करता हूँ। आशा है, हमारे इस प्रयास से विद्यार्थियों, शोधकर्ताओं, साहित्य-प्रेमीजनों को लाभ प्राप्त होगा। आज विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय के सभी पाठ्यक्रमों में ललित निबन्ध-साहित्य को स्थान मिलता है। अतः प्रस्तुत पुस्तक सबके लिए उपयोगी साबित होगी। अंततः मैं उन सभी ललित निबन्धकारों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ, जिनकी कृतियों के आलोक में मेरा यह विनम्र प्रयत्न परिणति तक पहुँच सका है।

इस कार्य में किसी भी प्रकार से सहयोगी सभी सज्जनों को धन्यवाद!

लेखक- डा. प्रफुल्ल कुमार

प्रथम अध्याय

ललित निबन्ध और हिन्दी का ललित निबन्ध-साहित्य

हिन्दी ललित निबन्ध से सम्बद्ध सैद्धान्तिक विवेचन-क्रम में सर्वप्रथम ललित निबन्ध की विभिन्न अवधारणाओं को स्पष्ट कर लेना अति आवश्यक है।

हिन्दी ललित निबन्ध को अंगरेजी पर्सनल ऐसे का पर्याय मानने वाले विद्वान मिशल द् मोन्तेन (सन् 1533-1592) को ही इसका जनक मानते हैं। वस्तुतः मोन्तेन ने लगातार 10 वर्षों की अनवरत साधना के पश्चात् 1580 ई. में सभी साहित्यिक विधाओं से सर्वथा भिन्न जिन रचनाओं को 'ऐसे' (प्रयास) नाम से प्रस्तुत किया उसमें लेखक की आत्मा के संवहन का प्रयास था। न तो कोई बन्धन था और न पाण्डित्य प्रदर्शन। जयनाथ नलिन के अनुसार' अपनी रचनाओं के विषय में उसने अनेक स्थलों पर कहा है कि मेरी रचनाओं में आप मुझे प्राकृत, अकृत्रिम और यथार्थ रूप में देख सकते हैं। मेरा व्यक्तित्व ही इनका उद्देश्य है। मैंने अपने यथार्थ निज को उपस्थित करने का प्रयास किया है।'(1)

ज्ञानेन्द्र वर्मा की दृष्टि में तीसरी शताब्दी के पूर्व उद्भूत पाश्चात्य निबन्ध में' मोन्तेन से पूर्व निबन्ध जैसी रचनाओं में दार्शनिक और आध्यात्मिक पक्ष अधिक मुखरित था, लालित्य और कलात्मक पक्ष की प्रायः उपेक्षा होती थी।'(2)

प्रो. नलिन विलोचन शर्मा के अनुसार मोन्तेन द्वारा प्रस्तुत 'एसे' (ऐसाई) पाश्चात्य साहित्य में 'पर्सनल एसे' (व्यक्तिगत निबन्ध) मराठी में ललित निबन्ध के लिए प्रयुक्त हो रहा है।'(3)

हिन्दी में ऐसे निबन्धों के लिए वैयक्तिक, व्यक्ति व्यंजक आत्मपरक, आत्मनिष्ठ, आत्माभिव्यंजक आदि कई नाम प्रयुक्त होते हुए देखे जाते हैं। उदाहरण के लिए श्री वल्लभ शुक्ल ;ललित निबन्ध को व्यक्ति व्यंजक निबन्ध और विषयी प्रधान निबन्ध नाम देते हैं।'(4)

डॉ. त्रिभुवन सिंह 'आत्माभिव्यंजन प्रधान' या 'आत्मपरक निबन्ध'(5)

और डॉ. शांतिस्वरूप गुप्त ने भावात्मक वर्ग में ऐसे निबन्धों को रखकर' वैयक्तिक या ललित निबन्ध'(2) कहने पर बल दिया है।

ऐसे आलोचकों की दृष्टि में ललित निबन्ध की जो अवधारणाएँ स्पष्ट होती

हैं, उनमें हिन्दी ललित निबन्धों का अलग वर्ग बन पाना कठिन है क्योंकि इनके द्वारा प्रयुक्त'ललित निबन्ध' शब्द की व्याख्या का आधार ही वैसे साहित्यिक निबन्धों के लिए है जिसमें साहित्यिक होने मात्र का लालित्य हो। इसकी व्यापक सीमा के अंतर्गत आत्मपरक, व्यक्तिगत, भावात्मक, आत्मकथात्मक, संस्मरणात्मक आदि सभी विषय निष्ठ निबन्ध आ जाते हैं। जो मात्र विषयनिष्ठ अथवा विचारात्मक निबन्ध नहीं होते हैं।

ऐसी स्थिति का परिचय समसामयिक हिन्दी निबन्ध के लेखक ज्ञानेद्र वर्मा द्वारा किये गये वर्गीकरण में अधिक स्पष्ट रूप में मिलता है। इन्होंने सम्पूर्ण हिन्दी निबन्ध को दो प्रमुख वर्गों में विभक्त किया-(1) ललित निबन्ध (2) विचारात्मक निबन्ध। फिर स्पष्ट किया कि" इस (ललित निबन्ध)वर्ग खण्ड में भावात्मक वर्णनात्मक और विवरणात्मक तीनों रूपों के निबन्धों को स्थान प्राप्त है।"(7) ऐसे वर्गीकरण हिन्दी ललित निबन्ध को अलग स्वरूप में देखने के लिए उपयुक्त नहीं हैं। यहीं ललित निबन्ध व्यापक अर्थ बोधक बन जाता है।

प्रसंगवश जयनाथ नलिन द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण अधिक सफल एवं उल्लेखनीय हैं-इन्होंने सम्पूर्ण हिन्दी निबन्ध को दो वर्गों में विभक्त किया-(क) निजात्मक (सब्जेक्टिव) (ख) परात्मक (औब्जेक्टिव) पुनः निजात्मक वर्ग को तीन उपवर्गो में विभक्त किया-(1) विचारात्मक (2) भावात्मक (3)आत्मपरक या वैयक्तिक।

विवेच्य विषय के लिए निजात्मक वर्ग का तीसरा उपवर्ग ध्यातव्य है। जयनाथ नलिन का तर्क है कि ''निजात्मक निबन्ध के वर्ग में भावात्मक और विचारात्मक में वह प्रकार नहीं समाता जिसे अंग्रेजी में पर्सनल कहते हैं। दोनों प्रकार पर्सनल नहीं होते हुए भी सबके हैं। मतलब आत्म का स्वरूप इनमें भी नहीं आता। वह स्वरूप जिसमें आए, उसे इनसे अलग ही मानना चाहिए। उस तीसरे प्रकार को हम आत्मपरक या वैयक्तिक कहेंगे।' ऐसे निबन्धों के विषय में इनकी स्पष्ट अभिव्यक्ति हैः- 'विचारात्मक या भावात्मक निबन्ध शेष विश्व का भी होकर निबन्धकार का भी हो सकता है, निबन्धकार का होकर भी वह शेष विश्व का हो सकता है, आत्मपरक में निबन्धकार का 'निज' ही विश्व का बनता है-शेष विश्व का उसका निज नहीं बनता यही सबसे गहरी और चमकीली रेखा, दोनों के बीच अन्तर की पहचान बनती है।

डॉ. ज्ञान राज काशीनाथ गायकवाड़ ने भी अपने द्वारा प्रस्तुत वर्गीकरण

में 'आत्मनिष्ठ निबन्ध' (पर्सनल एसे) को अलग वर्ग में रखते हुए कहा है'व्यक्तिगत निबन्ध का अधिक महत्व का भेद है आत्मनिष्ठ यानी आत्मपरक निबन्ध इसे हिन्दी में ललित निबन्ध भी कहा जाता है। इसे अंग्रेजी में पर्सनल ऐसे' और मराठी में ललित निबन्ध या लघु-निबन्ध कहा जाता है।" (10)

राजनाथ शर्मा मानते हैं 'यह निबन्धों का सबसे भिन्न और ऐसा रूप है जिसके दर्शन हिन्दी में बहुत कम होते है। इनमें विचारात्मक और भावात्मक निबन्ध की सम्पूर्ण विशेषताएँ मणिकांचन संयोग के समान परस्पर घुल-मिलकर एक अद्‌भूत कांति और सौन्दर्य उत्पन्न कर देती हैं। आजकल कुबेरनाथ राय और विद्यानिवास मिश्र इस प्रकार के सुन्दर निबन्ध लिखते हैं। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के भी कई निबन्ध इसी कोटि के हैं।" (11)

रामस्वरूप चतुर्वेदी ऐसे निबन्धों को ललित निबन्ध कहकर इसकी रचना प्रक्रिया की ओर संकेत देते हैं--'कभी-कभी लगता है कि पांडित्य में लालित्य का छौंक देने से ललित निबन्ध तैयार होता हैं।"(12) यहाँ तक आत्मपरक निबन्धों के लिए ललित निबन्ध शब्द का प्रयोग करने की धारणा तो उचित है। यह नाम सर्वाधिक प्रचलित सार्थक एवं सारगर्भित है। समसामयिक दृष्टिकोण में आपत्तिजनक रेखाएँ नहीं उभरती दिखती है।

परन्तु जरा ध्यान दिया जाय उन सभी आत्मपरक निबन्धों पर जिन्हैं व्यक्तित्व प्रधान, व्यक्तिनिष्ठ, आत्मनिष्ठ आदि विभिन्न ऐसे नाम दिये जाते हैं जहाँ लेखक की प्रधानता और विषय की गौण स्थिति का बोध हो सके, क्या वैसे सभी निबन्ध ललित हैं? क्या उनमें लालित्य ही विशेष प्रकट हो पाता है। सौंदर्य का ही चरमोत्कर्ष होता है? यदि हाँ तो किस रूप में? यदि नहीं तो उन्हें ललित निबन्ध न कहकर, व्यक्तित्व प्रधान, वैयक्तिक, आत्मपरक आदि उपयुक्त शीर्षक के अन्तर्गत रखकर ही क्यों न देखें। उनमें से कुछ निबन्धों में लालित्य पाकर सभी को ललित निबन्ध की कोटि में किस मोहवश खींच लावें। किस आग्रह वश ललित निबन्धों को एक विशेष वर्ग में न रखकर आत्मपरक वर्ग में ही रहने दिया जाय। जहाँ कोई भी निबन्धकार आपबीती सुना रहा हो, धर-घाट की समस्याएँ रख रहा हो, आत्मकथा या संस्मरण कह रहा हो। चाहे उसमें सभर व्यक्तित्व की उँचाई हो या न हो, विचित्रता उत्पन्न कर मोह लेने का गुण हो या न हो वह भावना मात्र में गोता लगाते ही क्यों न जाय, दूसरों की खिल्ली उड़ाने मात्र के लिए कलम पकड़ लिया हो या इसी तरह मात्र बकवास

करे कोई पते की बात भी न दे पावें परन्तु आत्मपरक लिखने के कारण ललित निबन्धकार की श्रेणी में रख दिया जाए। यह कैसी विवशता है, जिसके कारण उच्च कोटि के ललित निबन्धों को पहचान पाना कठिन कार्य हो जाता है।

वस्तुत; हिन्दी ललित निबन्धों का वर्त्तमान साहित्य इतना सम्पन्न अवश्य है कि एक अलग वर्ग में रखकर इसका अनुशीलन किया जा सके। इन्हे आत्मपरक, यक्तिगत आदि निबन्धों से अलग लालित्यउभारने वाले निबन्धो कें रूप में देखना उचित होगा। यह ललित नाम मात्र सहित्यिक रचनाओं में नीहित सामान्य लालित्य की हल्की रेखाओं का संकेतक नही हैं यह ललित निबंधो में ही विशेष रूप से छलक उठता है। जहाँ तक व्यक्ति-व्यंजक निबन्धों से गहरी समानता की बात है तो उसे नकारा नहीं जा सकता है। इसके बावजूद ललित निबन्ध इन्हीं आत्मपरक व्यक्तिगत निबन्धों की एक कोटि है जो अपने लालित्य अथवा सौन्दर्य के कारण भिन्न एवं विशिष्टि रसात्मक अनुभूति प्रदान करने में समर्थ है।

सुप्रसिध्द निबन्धकार अज्ञेय ने कुमारी अरूणिमा दिलजन के प्रश्न का उत्तर देते हुए उचित ही कहा है।'व्यक्तित्व व्यंजक निबन्धो और ललित निबन्ध समानार्थक नहीं हो सकते। व्यक्तित्व -व्यंजक निबन्ध की एक कोटि ही ललित निबन्धों के नाम के अन्तगर्त आयेगी। व्यक्तित्व की व्यंजना अनेक प्रकार से हो सकती है। रूचि-वैचित्र्य या कोई विशेष मनोदशा जब अपने को प्रकट करने के लिए एक लीला भाव अपनाए, जब निबन्ध में प्रस्तुत की गई वस्तु का चयन और नियोजन राग-रंजित दृष्टि से किया जाए, तभी रचना के लालित्य को महत्व का स्थान दिया जाएगा और तभी निबन्ध ललित निबँध कहलाएगा लीला भाव प्रधान नहीं भी हो सकता है। जहॉ वस्तु को राग-रंजित रूप में प्रस्तुत करने का आग्रह न हो फिर भी व्यक्तित्व की व्यजंना उस में हो और काम्य रही हो वहाँ निबन्ध को ललित निबन्ध कहना ठीक नहीं होगा। ललित निबन्ध उसका केवल एक वर्ग होगा।"[13)]

सुप्रसिध्द ललित निबन्धकार डॉ. विद्यानिवास मिश्र की दृष्टि में 'ललित निबन्ध और व्यक्ति व्यंजक निबन्ध में अंतर नाम का ही नहीं, अंतर मनोभाव और शैली का भी है। ललित निबन्ध में मोहकता स्मृतियों के ताने -बाने से उतनी नहीं आती, जितनी आती है शब्दों की चित्रमयता से और भावों की सरसता सें आरोही अवरोही सरसता से जबकि व्यक्ति व्यंजक निबन्ध में

स्मृतियों का ताना बाना विशेष मतलब रखता है और ये स्मृतियाँ अपनी होती हुई भी दूसरों में घुले हुए अपनेपन की होती है। यही नहीं व्यक्ति व्यंजक निबन्ध में भाव विचारमय होने के लिए प्रस्तुत होते हैं। और शब्द आत्मीयसंवाद स्थापित करने के लिए।" (14)

डॉ. मिश्र ने यह भी कहा है- मैं स्वयं इस ललित निबन्ध को व्यक्ति व्यंजक निबन्ध के अंतर्गत एक उपराशि मानता हूँ। ललित में कल्पना के स्वच्छंद की उड़ान ज्यादा है। उसकी एक कोटि है। मैं अपने थोड़े से निबन्धों को ललित मानता हूँ। जैसे अपने जीवन में कोई घटना अनुभव बनता है।"(15)

स्पष्ट है कि ललित निबन्ध आत्मपरक व्यक्ति व्यंजक, व्यक्ति निष्ठ आदि नामों सें पुकारे जाने वाले विषयी निष्ठ निबन्धों से कई समानताएँ रखने के बावजूद लालित्य के उभारके गुणों के कारण उनसे भिन्न है।

अत; ललित या लालित्य शब्द के विषय में विचार कर लें तो अति उत्तम होगा। हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 ; प्रधान सम्पादक-धीरेन्द्र वर्मा में ललित साहित्य का तात्पर्य सरस साहित्य बतलाया गया है- ललित साहित्य में साहित्य की वे सब कोटियाँ आयेंगी जिनमें बोध पक्ष उतना प्रधान नहीं, जितना भाव पक्ष, अर्थात् जिनमें बुध्दि की अपेक्षा हृदय को स्पर्श करने की सामर्थ्य अधिक है। गद्य और पद्य दोनों में ही ललित-साहित्य की सृष्टि सम्भव है, शर्त है लालित्य अर्थात् सौन्दर्य निष्ठा यह निश्चित है कि ललित साहित्य में कलात्मकता, सौन्दर्य सृष्टि, कल्पना विलास, भावना परिष्कार आदि का महत्व अधिक है और तत्व ज्ञान, इतिहास, समाजशास्त्र और अन्य ज्ञान मूलक साहित्य चेष्टाओं का बोध है। यह शब्द सरस साहित्य के समानार्थ प्रयुक्त होता है।"(16)

इस प्रकार कोशगत अर्थ के अनुसार ललित निबन्ध सरस साहित्यिक विधा है जिसमें भाव पक्ष हृदय स्पर्शी क्षमता, बोध अर्थात् ज्ञान तत्व की अपेक्षा अधिक प्रधान है।

ललित निबन्धकार डॉ. विद्यानिवास मिश्र बतलाते हैं कि ''सुन्दर ललित मनुष्य के द्वारा निर्मित जो सौन्दर्य होता है उसे ललित कहते है। ललित का मूल अर्थ यह है कि एक अनुपात और न्याय जहाँ स्थापित होता है वहाँ ललित होता है। ललित का अर्थ कोमल नहीं होता। ठीक जगह ठीक के साथ। तो इसलिए हम तो समझते है ललित शब्द (BEEL LETTER) का अनुवाद है। हमारे यहाँ यह शब्द द्विवेदी जी के समय से चला।''(17) ललित निबन्ध के सन्दर्भ में रूप

और अर्थ दोनों को अनिवार्य मानते हुए डॉ. मिश्र कहते हैं-" ललित में भी केवल सुकुमारता नहीं है। शिव के तांडव नृत्य में उतना ही लालित्य है जितना पार्वती के लास्य में। लालित्य औचित्य की सहज उत्पत्ति का ही दूसरा नाम है। ललित निसर्ग सुन्दरता में नहीं है, मनुष्य की प्रतिभा से उन्मीलित रमणीयता में है। हमारी पुराण सृष्टि में ललिता देवी और एक शिव शक्ति सामंजस्य की अवस्था है दूसरी और से वे स्वयं श्रीकृष्ण का पूर्व रूप हैं और तीसरी ओर से राधा की दर्पण में। जड़ी वह छवि है जिस पर यह अनुभव करते हुए कि प्रियतम उसे देख रहे हैं राधा मोहित हो जाती है और वह छवि ललिता बन जाती है। इन सभी कथाओं के ललिता और लालित्य का सम्बन्ध समरसता, लीला, लीला की उत्कंठा और स्वरूप विमर्श से है। यह सब एक रचना में मिल जाए यह दुर्लभ है। ललित रचना बिरली ही होती है, पर रंगीन शब्दवली के बल पर या भाव रंजना के बल पर कोई ललित बनना चाहे तो वह अलग बात है।"(18)

इस लम्बे अवतरण में जो सबसे बड़ी बात पुष्ट कर दी गई है, वह है- मोहकता, मंत्रमुग्ध कर देने की क्षमता। यह समरसता में ही सम्भव है। निश्चित अनुपात में नियत स्थान पर का कथन ही ऐसी छवि उत्पन्न कर सकता है जिससे पाठक मंत्र-मुग्ध हो जाते हैं। अतः ललित निबन्ध का 'लालित्य' यही' रमणीयता' या यही औचित्य है।

वस्तुतः ललित निबन्धकार अपनी प्रतिभा के बल पर सामान्य प्रतीत होने वाले विषय से अपनी बात छेड़ते हुए मन की मौज में क्षण-क्षण परिवर्तित विषयों की गहराई में चला जाता है। विचारों के साथ भाव यथार्थ और कल्पना, रंग और राग, सपाट बयानी और उक्ति वैचित्र्य आदि विभिन्न तत्वों को इस प्रकार आकर्षक अभिव्यक्ति शैली में आत्मीयता पूर्ण वार्तालाप करते हुए प्रस्तुत करता है कि पाठक मंत्रमुग्ध हो जाता है।

निबन्धकार के अभिव्यक्त व्यक्तित्व एवं उसकी अनुभूतियों में अपने जीवन और जगत की अनुगूंजों को पाकर पाठक का मन आह्लादित हो उठता है। पाठक कुछ क्षण तक के लिए आत्मविस्मृत होकर निजी क्लेशों, चिंताओं एवं अन्य व्यस्तताओं से मुक्त होकर अलौकिक आनन्द रस का पान करने लगता है।

ललित निबन्धों में इसके आधारभूत तत्वों के सुन्दर संयोग से अनायास उपलब्ध यही मोहक, मुग्धकारी, रमणीयता, आलौकिक आनन्द प्रदायिनी शक्ति

इसका लालित्य है। इसे ही ललित निबन्धों का सौन्दर्य, आह्लादकारी क्षमता या कोई अन्य नाम से अभिहित किया जा सकता है।

ललित निबन्धों में यह लालित्य उत्पन्न करने की क्षमता अन्य निबन्धों की अपेक्षा सर्वाधिक प्राप्त होती है। इसके कई कारण हैं, जिसकी चर्चा आगे होगी इसी क्षमता की विशिष्टता ऐसे निबन्धों को ललित निबन्ध कहने के लिए प्रेरित करती है। यदि लालित्य उभारने वाले तत्वों की और ध्यान केन्द्रित न हो तो इसकी सर्वाधिक प्रंशसनीय उपलब्धि यह लालित्य ही है।

अतः लालित्य उभारने वाले गुणों से सम्पन्न स्वयं ललिता बन गये निबन्धों को ललित निबन्ध कहना सर्वाधिक तर्क संगत है। यह नाम वर्त्तमान साहित्य जगत में प्रचलित है, अपनी ख्याति बनाये हुए और आने वाला भविष्य शायद इसमें हैर-फेर नहीं कर पायेगा। ऐसे निबन्धेां का रूप-रस गन्ध सबका परिचय इस 'ललित निबन्ध' नाम में एक साथ समाहित है। इसे गीतात्मक गद्य, गद्य-गीत, व्यक्ति रंजक, व्यक्ति व्यंजक आदि नाम देना उपयुक्त नहीं है, क्योंकि इससे लालित्य उभारने वाले किसी एक तत्व की प्रधानता का बोध होता है। ऐसे निबन्धों में लालित्य उभारने में इसके कई तत्वों का योगदान होता है। किसी तत्त्व की उपेक्षा करना असंभव है।

(1) ललित निबन्धः विभिन्न परिभाषाएँ एवं स्वरूप निर्धारण

निबन्ध 'विधा को' परिभाषित करने का प्रयास इसके जन्मदाता 'मोन्तेन' के समय से लेकर आज तक होता रहा है। इसके स्वरूप के बदलते' ही दृष्टिकोण बदल जाते हैं। अत; कोई भी एक परिभाषा अपने आप में दीर्धकाल तक पूर्ण नही रह पाती है। ललित निबन्ध इन्हीं निबन्धों का एक प्रकार विशेष है। परंपरा से प्राप्त इसके स्वरूप में भी सतत् परिवर्तन दृष्टि गोचर होता है। संभव है भविष्य में यह वर्त्तमान स्वरूप से कुछ अंशों में भिन्न हो जाय। ऐसी स्थिति में इसे परिभाषा के निश्चित घेरे में बाँध कर रखना उचित नहीं है। यह स्वयं अन्मुक्त मन; स्थिति की रचना है। इसलिए क्षण-क्षण परिवर्तन शील इस विधा का स्वरूप-निर्धारण एवं परिभाषा निश्चित करना और अधिक कठिन है।

इसके बावजूद अबतक उपलब्ध ललित निबन्धों को देखकर कुछ निश्चित स्वरूप का आंकलन करना और परिभाषा दे देना अनुपयुक्त न होगा। यथा सम्भव उचित परिभाषा देने एवं स्वरूप निर्धारित करने के पूर्व अंगरेजी एवं हिन्दी-साहित्य के विभिन्न विद्वानों द्वारा प्रस्तुत परिभाषाओं एवं स्वरूपगत

विचारों को देख लेना उचित होगा।

(क) अंगरेजी में परिभाषाएँ एवं स्वरूप निर्धारण-

मिशल द् मोन्तेन ने स्वरचित निबन्धों के सम्बन्ध में कहा है-''अपने निबन्धों का विषय मैं ही हूँ। ये निबन्ध अपनी आत्मा को दूसरों तक पहुँचाने का प्रयत्न मात्र हैं। इनमें मेरे ही निजी विचार और कल्पनाएँ हैं, कोई नवीन खोज नहीं...।''(19) संसार के मनुष्य एक-दूसरे को देखते हैं, पर मैं अपने में झाँकता हूँ। अन्य लोगों से मुझे कोई प्रयोजन नहीं।''(20)

जयनाथ नलिन ने मोंतेनके इस अनुवादित कथन के समर्थन में दो बात स्पष्ट की है- मोन्तेन के निबन्धों में उसका निजी व्यक्तित्व और अन्य मानव-स्वभाव का चित्रण।

मोन्तेन के विचारोंपर ध्यान देने से स्पष्ट हो जाता है कि उसकी आत्मा अर्थात् उसका व्यक्तित्त्व, दूसरों तक पहुँचाने का प्रयास अर्थात् वार्तालाप, इस क्रम में व्यक्तिगत विचार और स्वाभाविक कल्पनाएँ अवश्य हैं। पाठक वार्तालाप में रूचि ले इसके लिए आत्मीयता भी होगी। चूंकि व्यष्टि में समष्टि समाहित है इसलिए समष्टि का भी चित्रण निसंदेह समाहित है। जयनाथ नलिन ने उचित ही विक्टर ह्यूगो का कथन-" वह बुद्धिहीन है जो यह समझता है कि मैं तुम नहीं।... (और वाल्तेअर का स्पष्टीकरण) अपने को चित्रित करते हुए वह मानव-स्वभाव को ही चित्रित करतो है।''21

मोन्तेन के विचारों में ललित निबन्ध के तत्त्वों एवं विशेषताओं का परिचय मिल जाता है, परन्तु कोई निश्चित परिभाषा या ललित निबन्ध का पूर्ण स्वरूप उद्घाटित नहीं होता है।

जॉनसन महोदय ने निबन्ध को मन की उन्मुक्त कल्पना शक्ति की दौड़ और अनियमित, अपरिपक्व साहित्यिक लेख कहा है, न कि नियमबद्ध और व्यवस्थित रचना।' (''ए लूज शैली ऑफ माइण्ड एण्ड इरेगुलर अण्डाइजेस्टेड पीस नॉट एरेगुलर एण्ड ऑर्डरली परफार्मेंस''(22))

इस परिभाषा में प्रयुक्त 'लूज' शब्द निबन्धकार के स्वाधीन विचरण का, शैली' शब्द कल्पना शक्ति की दौड़ में बार-बार 'स्व' पर लौट आने का और 'ऑफ दि माइण्ड' भाव पक्ष के साथ बोध (ज्ञान) पक्ष का भी संकेत है। 'इरेगुलर' अनियमित रचना होने का और 'अण्डाइजेस्टेड' मन की ऊपरी परत के विचारों का बोधक शब्द है। जानसन के अनुसार पूर्व निर्धारित नियम के

प्रति वचनबद्ध न होकर विचारों को अनियमित रूप में व्यक्त कर देता है। इस क्रम में विषयांतर और कल्पना की उन्मुक्त दौड़ में बार-बार अपने व्यक्तित्त्व की पहचान देते जाना उसकी कला की विशेषताएँ हैं। यदि जॉनसन की परिभाषा को ठीक से समझा जाय तो यह ललित निबन्धों के लिए बहुत अच्छी परिभाषा है। शर्त यह है कि उन्मुक्त का अर्थ स्वाधीन एवं अपरिपक्व का अर्थ संपूर्ण रचना मन की ऊपरी परत के विचार लिए जाएँ उच्छृखलता एवं निम्नस्तरीय विचार नहीं।

जे. बी. प्रीस्टले ने मोन्तेन और जॉनसन से भी अधिक तथ्यों को उभारने वाली परिभाषा प्रस्तुत किया-

'निबन्ध मौलिक व्यक्तित्त्व की निश्छल अभिव्यक्ति और संक्षिप्त कलात्मक वार्ता है '(ऐसे इज ए जेन्यून एक्सप्रेशन ऑफ एन औरीजनल पर्सनाल्टी, एन आर्टफूल इण्डींग काइण्ड ऑफ ए टॉक)'[23] साथ ही यह भी कि 'सच्चा निबन्ध सुहृद संलाप या अंतरंग वार्ता के निकट पड़ता है और निबन्धकार वह दीप्तिमान और आत्मव्यंजक कृतिकार है, (द ट्रू एसे एप्रोक्सीमेट टू फेमिलियर टॉक एण्ड दि एसेइस्ट इज द ब्रिलियन्ट एण्ड सेल्फ रीवियलिंग कन्भरसेसनिष्ट हूज एवरी फ्रेज इज साल्टेड वीथ पर्सनाल्टी)[24] इन्होंने निबन्ध के विषय के सम्बन्ध में कहा-'कोई विषय नहीं या चाहे तो संसार का हर विषय निबन्धकार के अधिकार में होता है, (हैज नो सब्जेक्ट ऑर, इफ यू विल हैज एभरी सब्जेक्ट इन द वर्ल्ड ऐट हीज कमाण्ड)''[25]

प्रिस्टले ने जिस सच्चे निबन्ध की चर्चा की है वह सही अर्थो में ललित निबन्ध के बहुत करीब है। इन्होंने निबन्ध में व्यक्तित्त्व की मौलिकता निश्छल अभिव्यक्ति, कलात्मकता, विषय विविधता एवं व्यापकता के साथ वार्तालाप शैली, का होना बतलाया है। इन्होंने ललित निबन्धों का संक्षिप्त आकार और इसके भीतर की चौंकाने वाली क्षमता (लावण्य) को भी रेखांकित किया है।

इनके अतिरिक्त ए.सी. बेन्सन, रावर्ट लिंड, स्मिथ, लूकस, गार्डनर, जॉनसन आदि के विचार भी अपने-अपने ढंग से उल्लेखनीय हैं।

ए.सी. बेन्सन ने निबन्कार के लिए किसी भी विषय को उत्साहपूर्वक सजीव रूप में अनुभूत यथार्थ के साथ प्रस्तुत हैाने वाला बतलाते हुए निबन्ध को दिवास्वप्न कहा है- ''(द एसे इज द रेवरी, द फ्रेम ऑफ माइण्ड)'' [26] वस्तुतः यह दिवास्वप्न मात्र नहीं होता है। यह स्वगत मात्र भी नहीं है वार्तालाप है।

रावर्ट लिंड 'विज़ूडम इन ए स्माइलिंग मूड'[27] अर्थात् ज्ञान की सुस्मित भाव दशा कहा है।

एलेक्जेंडर स्मिथ मात्र रचना प्रक्रिया पर मत व्यक्त करते हैं- मनः स्थिति उपस्थित होते ही रेशम के कीड़े के चारो और कौया विकसित होने के समान ही निबन्धकार निबन्ध रच डालता है, भाव कोई भी हो। लूकस वार्तालाप का दर्पण' और गार्डनर आत्मनिष्ठता पर बल देकर विषय को विचार-टाँगने की खूंटी मात्र मानते हैं।

इनकी बहुत सी बातें ललित निबन्ध की प्रकृति से मेल अवश्य रखती हैं, परन्तु सच्चे अर्थो में ये सभी विषयीनिष्ठ निबन्धों के लिए प्रयुक्त परिभाषाएँ हैं। मोन्तेन के आत्मपरक सभी निबन्धों एवं उनके वर्ग के निबन्धकारों की रचनाओं के लिए उपयुक्त भले हो जायें, हिन्दी ललित निबन्धों के लिए अपूर्ण ही समझे जायेंगे।

टी. एस. इलियट, बेकन, लाक्स, ब्रोकर आदि द्वारा प्रस्तुत परिभाषाएँ तो विचारात्मक (विषय प्रधान) निबन्धों के लिए ही सार्थक हो सकती हैं।

(ख) हिन्दी में परिभाषाएँ एवं स्वरूप निर्धारण :-

हिन्दी के अनेक विद्वानों ने निबन्ध की परिभाषाएँ दी है जिनमें ललित निबन्ध के स्वरूप का दर्शन होता है। जयनाथ नलिन ने सर्वाधिक उपयुक्त परिभाषा गढ़ने की कोशिश की हैं-

''निबन्ध स्वाधीन चिन्तन और निश्छल अनुभूतियों का सरस सजीव और मर्यादित गद्यात्मक प्रकाशन हैं''[28]

यह परिभाषा सभी साहित्यिक निबन्धों के लिए गढ़ी गई है, परन्तु ललित निबन्ध मात्र के लिए बहुत उपयोगी हैं। मात्र व्याख्या का दृष्टिकोण बदलकर देखा जाय तो ललित निबन्ध की स्वाधीन मनः स्थिति, स्वच्छन्द लेखकीय व्यक्तित्त्व 'स्वाधीन चिन्तन' शब्द में समाहित हैं। निश्छल अनुभूतियों का सरस प्रकाशन कहने से शुद्ध यथार्थ, रागात्मक भाव, हृदय स्पर्शी विचारों के प्रकाशन का बोध होता हैं। सजीव और मर्यादित में सबलता एवं प्रवाहपूर्ण अनर्गल बकवास रहित शिष्ट वार्तालाप का बोध हो जाता हैं। गद्य रूप तो यह है ही।

इसके बावजूद इसे ललित निबन्ध के लिए पूर्ण परिभाषा नहीं कह सकते हैं।

क्योंकि ललित निबन्ध की अनियमितता, कल्पना आदि तत्वों पर स्पष्ट रूप से प्रकाश नहीं डाला गया है। किसी विशेष नियम के प्रति ललित निबन्धकार

बंधा नहीं रहता है। इसलिए यह उतना मर्यादित नहीं हो सकता जितना नलीन जी ने मर्यादा शब्द की व्याख्या करते समय बतलाया है। पूर्णतः, ससीमता, अधिकार गौरव। ये निषेधाज्ञा या बन्धन ललित निबन्धकार के लिए उपयुक्त नही है।

ज्ञानेन्द्र वर्मा का कहना है कि-इस वर्ग के निबन्धों में चिन्तन तत्त्व की अपेक्षा रागवृत्ति का आग्रह मुख्य रहता है। लेखक पाठक के साथ सीधा आत्मीय और मार्मिक तादात्म्य सम्बन्ध स्थापित करके जिज्ञासु प्रवृत्ति को प्रस्फुटित करता है। भावों को उकसाता है अभीष्ट स्थान पर चोट करके अपने लक्ष्य तक पहुँचता है।(29)

इन्होंने अपनी परिभाषा में रागवृत्ति, पाठक के साथ आत्मीयता, मार्मिकता, जिज्ञासा बढ़ाने की प्रवृत्ति, भवोत्पादक क्षमता, आदि समेट लिया है फिर भी यह ललित निबन्ध के सन्दर्भ में व्याख्या मात्र है। परिभाषा के नाम पर बस इतना कहा है-

''आत्मप्रकाशन के उद्याम आवेग की पूर्ति के लिए जब व्यक्तिनिष्ठ प्रतिपादन को गद्यमय लिखित रूप प्रदान किया जाये तब ललित निबन्धों का ... प्रणयन होता हैं।''(30)

परन्तु इनकी दृष्टि शुद्ध ललित निबन्ध मात्र के लिए न होकर भावात्मक, विवरणात्मक आदि निबन्धों की और भी है, इसलिए उद्याम आवेग की और संकेत देते हैं। अतः कुछ तत्वों का परिचय हो पाता है, पूर्ण परिभाषा नहीं मिलती है।

'ललित निबन्ध' का तात्पर्य आत्मपरक, व्यक्तिगत, आत्माभिव्यंजक, साहित्यिक निबन्ध, कलात्मक निबन्ध आदि समझाते-समझते हुए कई विद्वानों ने इसकी व्याख्या की है। जैसे डॉ. त्रिभुवन सिंह- ''इनमें लेखक अपने स्वभाव, मानवीय दुर्बलताओं इच्छा-अनिच्छा इत्यादि का रञ्जनकारी ढंग से प्रकाशन करता है चुना हुआ शीर्षक अथवा विषय लेखक के लिए बन्धनकारी नहीं होता बल्कि वह प्रेरक का काम करता हैं...''(31)

परन्तु ललित निबन्ध की उपयुक्त संक्षिप्त परिभाषा देने की कोशिश इनमें नहीं मिलती हैं।

प्रभाकर माचवे अच्छे सफल निबन्ध की और संकेत करते हैं, जिसमें ललित निबन्ध का स्वरूप झलकता है-''निबन्ध का उद्देश्य ही मन का स्वच्छन्द विचरण,

रसग्रहण, सौन्दर्य शोध और आनन्द बोध है और वही अनुभव गप-शप के ढंग पर या मित्रों के साथ विश्रब्धालाप के ढंग पर निबन्धकार निवेदित करता है। उसकी कल्पना को छूट है कि इस 'बतकही' में या पाठकों के सम्मुख एक प्रकार के सशब्द स्वगत भाषण में या आत्मरहस्योद्घाटन में, वह एक बात से दूसरी बात जो उसे सहज सूझ जाय, उसकी चर्चा करें। उसका हैतु श्रोता या पाठक का मनः प्रसादन मात्र है। उद्बोधन या नित्युपदेश, ज्ञानवर्धन या सव्यंग कशाघात इसके साधन हो सकते हैं, साध्य नहीं।''(32)

प्रभाकर माचवे ने निबन्ध में स्वच्छन्दता, विषयान्तर, रसात्मकता, सौन्दर्य, आह्लाद, वार्तालाप, कल्पना, आत्मपरक्ता आदि तत्त्वों का समावेश होना बतलाया है। इनकी दृष्टि में भाव पक्ष की प्रधानता और ज्ञान चर्चा उपदेशक प्रवृत्ति, तीव्र व्यंग्याघात आदि का निषेध स्वीकृत है।

कन्हैयालाल सहल के सच्चे निबन्ध का अर्थ ललित निबन्ध ही है, जिसे इन्होंने बहुश्रुत, मजेदार व्यक्तित्त्व सम्पन्न, रोचक अभिव्यक्ति-शैली में कुशल निबन्धकार के भोजनोत्तर एकान्त सम्भाषण माना है। इन्होंने कहा है-

''ऐसा व्यक्ति हमें अपनी बातों से मुग्ध कर सकता है-हँसी हँसी में वह इस प्रकार का ज्ञान और अनुभव बाँटता चलता है, जिसको हम स्वीकार करते चले जाते हैं। बात की बात में ही वह हमें जीवन की बड़ी-बड़ी सारगर्भित बातें सुना जाता है, न हम यही जान पाते हैं कि क्यों हमने ये बातें सुनी और क्या हमारे पल्ले पड़ा- ऐसी ही हवा को साथ लेकर सच्चे निबन्ध (ललित निबन्ध) का सौरभ फैलता है।''(33)

इनके कथनानुसार ललित निबन्ध में निबन्धकार का सम्पन्न व्यक्तित्त्व होता है। उसमें मोहकता होती है। ज्ञान और भाव दोनों का समन्वय इतना रोचक होता है कि गम्भीर तथ्य भी सहज होकर उपस्थित हो जाते हैं।

जिस प्रकार मोन्तेन ने अपने निबन्धों के बारे में अपने विचार रख दिया उसी प्रकार हिन्दी ललित निबन्धकारों ने भी कुछ विचार व्यक्त किया है। इन विचारों में ललित निबन्ध के स्वरूप झलकते हैं। अतः प्रस्तुत है-

डॉ. विद्यानिवास मिश्र मानते हैं कि ''अपनी चर्चा नहीं करना चाहिए। नहीं तो आत्मकथा हो जाएगी।''(34) अर्थात् ललित निबन्धकार होने के लिए व्यष्टि में समष्टि को समाहित करना चाहिए। कुबेरनाथ राय जिनके निबन्धों को डॉ. विद्यानिवास मिश्र रसात्मक मानते हैं, अपने सम्बन्ध में कहते हैं-" साहित्य में

मैं सदैव समूहवाचक संज्ञा का अभिनय करता है। मै का एक समूह-संयुक्त से भी बढ़कर समूह-भोगी एवं समूह अद्वैत रूप भी है और यही साहित्य में अवतीर्ण होता है।''(35)

इन्होंने यह भी कहा है कि ''शत-प्रतिशत स्वयंगतता ललित साहित्य में उसी भाँति असम्भव है जिस भाँति शत प्रतिशत वस्तुगतता। स्वयंगत और वस्तुगत देानों तरह की दृष्टियाँ युगनद्ध और परस्पर संयुक्त भाव से चलती है तभी कोई सगुण रचना सम्भव होती है। अवश्य ही इनके आन्तरिक अनुपात में विषय के तथा लेखक के व्यक्तित्त्व के अनुसार भेद होता जायेगा।''(36)

इन विचारों से स्पष्ट हो जाता है कि ललित निबन्धों में व्यक्त निबन्धकार का व्यक्तित्त्व आत्मपरक, व्यक्तिगत मात्र होनेवाले निबन्धों से भिन्न समष्टिमुखी हो जाता है। विषयी प्रधान होकर भी विषय को अपनी दृष्टि से देखता है। पदुमलाल पुन्नालाल बख्शी ने इसकी रचना-प्रक्रिया की और संकेत बहुत पहले ही दिया था-जिसे राम स्वरूप चतुर्वेदी ने उद्धृत किया है- ''ये निबन्ध तो उस मानसिक स्थिति में लिखे जाते हैं, जिनमें न ज्ञान की गरिमा होती है और न कल्पना की महिमा, जिनमें जीवन का गौरव भूलकर हम अपने में लीन हो जाते हैं, जिसमें हम संसार को अपनी ही दृष्टि से देखते हैं और अपने ही भाव से ग्रहण करते है।''(37) यह उदाहरण वास्तव में ललित निबन्ध के हल्केपन को व्यक्त करता है। अपने में लीन होना आत्मपरकता की और संकेत है और संसार की वस्तुओं को देखना व्यष्टि से समष्टि की और प्रस्थान की प्रवृत्ति का द्योतक है। परन्तु लालित्य की और संकेत इस कथन में भी नहीं मिलता है।

इसका एकमात्र कारण यही लगता है कि हिन्दी में जितनी भी परिभाषाएँ गढ़ी गयी हैं। सभी मात्र व्यक्तिगत निबन्ध (पर्सनल ऐसे) को ध्यान में रखकर। जिसमें सोलहवीं शताब्दी की 'निर्बन्धता, उन्मुक्तता, तर्क और ज्ञान' के प्रति मोह का त्याग और मन की बातों 'को खुलकर अभिव्यक्त करने' का लक्ष्य ही प्रधान था। ललित निबन्धों के सन्दर्भ में यही सब कुछ सार्थक है, परन्तु इसमें सबसे बड़ी बात है- 'लालित्य' का होना। ऐसे बहुत से व्यक्तिगत निबन्ध ललित निबन्ध के अन्तर्गत नहीं आयेंगे जिनमे लालित्य की ऊँचाई नहीं होगी।

अतः ललित निबन्ध के लिए एक संक्षिप्त सारगर्भित परिभाषा निश्चित करने की आवश्यकता है। प्रयास कुछ इस प्रकार किया जा सकता है-

''ललित निबन्ध व्यक्तित्व सम्पन्न निबन्धकार की स्वाधीन

भ्रमणशील मनः स्थिति में रचित अनुभूतिमय, लालित्यपूर्ण, सहज, संक्षिप्त गद्यात्मक विधा है। इसमें निबन्धकार वार्तालापीय, संवेगात्मक शैली में विषयान्तरित विभिन्न विषयों को सर्वथा उन्मुक्त भाव से अनियमित रूप में रखते हुए निश्छल आत्माभिव्यक्ति करता है।''

इस परिभाषा में व्यक्तित्व सम्पन्न निबन्धकार का तात्पर्य अध्ययन-अनुभव एवं अभिव्यक्ति शैली में कुशल सम्पन्न लेखक है। इसके अभाव में अच्छे ललित निबन्धों की रचना सम्भव नहीं है।'स्वाधीन भ्रमणशील मनः स्थिति' का तात्पर्य स्पष्ट है कि अपनी रूचि के अनुसार न किसी पूर्व निर्धारित नियम या विषय से बंधा हुआ। ऐसे निबन्धों का आंतरिक स्वरूप भाव और ज्ञान दोनों को समन्वित करते हुए चलता है। लेखक के व्यक्तित्व की प्रधानता होती है। आत्मीयतापूर्ण वार्तालाप होता है। कथा, कविता का रस भरा होता है। भाषा की सहजता और शैली की संवेगात्मकता इसके अनियमित संक्षिप्त रूप में रंग भर देती है। यह सम्पूर्ण तत्वों के सुंदर संयोग से ललित रचना बन जाती है।

(2) ललित निबन्ध के आधारभूत तत्वः—

जिन तत्वों के समन्वय से ललित निबन्ध का सम्पूर्ण स्वरूप निर्मित होता हैं, उन्है भावपरक एवं कलापरक मुख्यतः दो भागों में विभक्त करके देख सकते हैं। भाव परक तत्व आंतरिक स्वरूप का निर्माण करते हैं और कलापरक सामान्यतः बाह्य स्वरूप-निर्माण में सहायक होते हैं।

(अ) भाव परक आधारभूत तत्व :-

ललित निबन्धों में समाहित (1) व्यक्तित्व (2) विषय (3) विचार या बौध्दिक ज्ञान तत्व (4) कल्पना (5) भाव आदि तत्वों की चर्चा भावपरक आधारभूत तत्वोंके अन्तर्गत की जा सकती है।

1. व्यक्तित्व :—

आत्माभिव्यक्ति सभी साहित्यिक विधाओं में होती है क्योंकि साहित्यकार आत्माभिव्यक्ति में ही आत्म संतोष का सुख पाने के लिए साहित्य की रचना करता है। अपनी अपूर्णताओं को पूर्णता में देखने का स्वयं को समाज का और समाज को अपना बना लेने का यही सबसे सहज साधन है। अपने हृदय के भाव एवं विचार विभिन्न रूपों में व्यक्त करके सम्पूर्ण मानव जाति से रागात्मक सम्बन्ध स्थापित कर देने में रचनाकार अपने जीवन को सार्थक समझ लेता है। इस व्यष्टि के समष्टि में विलयन में अद्‌भूत आनन्द की प्राप्ति होती है।

आत्माभिव्यक्ति के सम्बन्ध में डॉ. नगेन्द्र का कहना है कि ''यह आत्माभिव्यक्ति लेखक को चाहे उसमें कैसे ही दुर्गुण क्यों न हो अपने प्रति ईमानदार होने का सुख देती है, और इस प्रकार अनिवार्य रूप से उसके व्यक्तित्त्व का संस्कार करती है।'२[38]

रचनाकार के व्यक्तित्त्व का तात्पर्य क्या है? इस प्रश्न का उत्तर पाने के लिए 'व्यक्तित्त्व' शब्द को समझना जरूरी है जो अंगरेजी 'पर्सनालिटी' का पर्याय है। डॉ. मु. ब. शहा ने संकेत दिया है कि "ईशा के कुछ दिन पूर्व 'पर्सोना' शब्द व्यक्ति के कार्यो को स्पष्ट करने के लिए काम में लाया जाता था, जिसका अर्थ बाहरी नकाब या वेशभूषा था।[39]

परन्तु आज व्यक्तित्त्व के दो रूप स्पष्ट हैं-बाह्य एवं आंतरिक अर्थात् रूप-रंग-आकार, शारीरिक संगठन और आचार-विचार, व्यावहारिक कुशलता आदि।

परन्तु साहित्यिक व्यक्तित्त्व उसके सामान्य व्यक्तित्त्व से भिन्न है। अभिव्यक्ति-क्रम में उसका सारा संचित ज्ञान, सारा अनुभव, उसकी सारी बुद्धि एकत्रित होकर उसे निजी सामान्य व्यक्तित्त्व से ऊपर उठाकर विशिष्टि व्यक्तित्त्व सम्पन्न बना देती है। इस व्यक्तित्त्व को उसकी बौद्धिक, भावात्मक, सौन्दर्यबोधक एवं रचनाशक्ति का सप्राण समुच्चय कह सकते हैं।

ललित निबन्धकार अपने निबन्धों में इसी विशिष्ट व्यक्तित्त्व को अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक शुद्ध रूप में अभिव्यक्त करता है। अधिक शुद्ध इसलिए, क्योंकि इसमें सहजता इतनी आ जाती है कि विशिष्ट ज्ञान और अनुभव भावमय होकर उसके सहज व्यक्तित्त्व में समाहित सा प्रतीत होने लगता है। पाठक को विश्वास होने लगता है कि वास्तव में निबन्धकार का व्यक्तित्त्व इतना आत्मीय, रागात्मक और निश्छल है।

इस व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति को ही'स्व' की अभिव्यक्ति कहते हैं। यह अहं का गज गणेश रुप मे उपस्थित होकर जन कल्याण करता है इसकी अभिव्यक्ति दो रूपों में होती है-

1. 'स्व' को मुख्य कथ्य बनाकर अन्य विषयों को सहयोगी रूप में रखना। ये अन्य विषय प्रासंगिक होते हैं तो इसके व्यक्तित्त्व को पुष्ट करते हैं। ऐसे निबन्धों में निबन्धकार प्रायः मैं, मेरा, आदि से निबन्ध की शुरूआत करता है और विभिन्न विषयों की चर्चा करते हुए भी सर्वत्र अपने व्यक्तित्त्व

का प्रभाव जमाये रखता है। ऐसे निबन्धों के उदाहरण विद्यानिवास मिश्र के निबन्ध-'बेचिरागी गाँव,'मुरली की टेर,'तुम चन्दन हम पानी' आदि हैं।'मुरली की टेर' में निबन्धकार-''कल रात मैं सुख से सो न सका। कारण बहुत से हो सकते हैं।''(40) कहते हुए आगे बढ़ता है और स्वप्नलोक में ही विचरण नहीं करता है बल्कि कृष्ण की मुरली की कथा में डूबने लगता है, परन्तु पुनः अंत में अपने वर्त्तमान जीवन के धरातल पर आकर 'स्व' की स्थिति की पहचान करता है।

2. स्व के अतिरिक्त किसी सामान्य विषय को कथ्य बनाकर उसमें अपने सम्पूर्ण व्यक्तित्त्व को आरोपित कर देना अथवा उस विषय का अपने व्यक्तित्त्व से इस प्रकार आच्छादित कर देना कि सर्वत्र लेखक का व्यक्तित्त्व ही झलकने लगे। ऐसे निबन्धों के उदाहरण हैं-आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध 'अशोक के फूल ',' वसन्त आ गया है', 'शिरीष के फूल' इत्यादि। 'अशोक के फूल' निबन्ध में आ. द्विवेदी प्रारम्भ करते हैं-" अशोक में फिर फूल आ गये हैं।(41) वाक्य से और सम्पूर्ण निबन्ध में अपना व्यक्तित्त्व (अध्ययन अनुभव) करते हुए मानव-जीवन दर्शन का पूरा इतिहास बतलाते हुए वर्त्तमान तक आकर महसूस करते हैं कि इस बदलती मनोवृत्ति में जीवन का रस अपने ढंग से ले सकते हैं।

दोनों विधियों में अंतर मात्र प्रस्तुति भेद का है कार्य तो व्यक्तित्त्व की अभिव्यक्ति ही हैं। चूंकि सम्पूर्ण निबन्ध में निबन्धकार का व्यक्तित्त्व छाया रहता है इसलिए निबन्ध की सफलता निबन्धकार के व्यक्तित्त्व की संपन्नता एवं विफलता पर आश्रित होती है। यही कारण है कि सामान्य अध्ययन-अनुभव और ज्ञान वाले निबन्धकार अच्छे ललित निबन्ध प्रदान नहीं कर पाते हैं। ललित निबन्धकार होने के लिए साहित्यिक व्यक्तित्त्व की सभरता आवश्यक है।

2. **विषय**:-

ललित निबन्धों में विषय की प्रधानता नहीं होते हुए भी विभिन्न विषयों के प्रति रूझान आवश्यक है। विषय-शून्य स्थिति में ललित निबन्धकार विचार गुम्फन का कोई अवलम्ब नहीं पाकर नितान्त आत्मरत प्राणी हो जायेगा। भाव प्रस्फुटन का मार्ग अवरूद्ध होगा। अतः सामान्य प्रतीत होने वाले 'शीर्षक' और विभिन्न 'विषय' उसके लिए आवश्यक हो जाते हैं।

ललित निबन्धकारों के लिए विषय की कोई सीमा नहीं रहती है। वह संसार के सारे विषयों में से मनोनुकूल विषय चुन लेता है। वह विषय तुच्छ हो सकता

है या विशेष भी हो सकता है। आ. देवेन्द्रनाथ शर्मा 'साइकिल; 'ताला' तक को नही छोड़ते हैं। अर्थात् मनः स्थिति के उपस्थित होते ही विचार प्रकट करने के लिए ललित निबन्धकार दृष्टि पथ पर प्राप्त कुछ भी विषय उठा लेता है और विषयान्तर में जाकर क्षण-क्षण परिवर्तित अनेक विषयों को समेटता जाता है। उदाहरण के लिए आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' में अपनी छोटी बच्ची के इस प्रश्न को ही विषय बनाकर मानव सभ्यता के विभिन्न पहलुओं का उद्घाटन करते जाते हैं। इतिहास, दर्शन संस्कृति से सम्बद्ध विषय एक साथ समुपस्थित हो गये हैं।

शर्त यह है कि कोई एक विषय इतना प्रभावशील न हो जाय कि लेखक का व्यक्तित्त्व और निबन्ध का सारा लालित्य उसमें खो जाय। विषय को प्रधानता कहीं नही मिल पाती है। ये मात्र निबन्धकार के निजी विचारों के संवाहक बनते हैं।

3. विचार या बौद्धिक ज्ञान तत्त्वः—

विषय की भाँति ही ये तत्त्व भी ललित निबन्धों में प्रधान नहीं होते हैं। ये निबन्धकार के मन के अन्तः चिन्तन अथवा सहज ऊपरी चेतना से प्रस्फूटित होकर निबन्धों में आते रहते हैं। ये उनके अपने विचार होते हैं जो किसी विषय से सम्बद्ध रहते हैं। इन विचारों की प्रकृति विचारात्मक निबन्धों में भरे विचारों से भिन्न सहज सुपाच्य होते हैं। बौद्धिकता का प्रदर्शन नहीं होता है। गम्भीर तथ्य भी सरल रूप में उपस्थित हो जाते हैं। विचार अथवा बौद्धिक ज्ञान के अभाव में ललित निबन्ध'प्रलाप' मात्र बन जायेंगे। हाँ इतना निश्चित है कि इनका संयोजन व्यक्तिगत विशेषताओं के अनुरूप प्रत्येक निबन्धकार अपने-अपने ढंग से करता है। इस संदर्भ में आ. रामचन्द्र शुक्ल का कथन बहुत उपयुक्त प्रतीत होता है-

''व्यक्तिगत विशेषता का यह मतलब नहीं हैं कि उसके प्रदर्शन के लिए विचारों की श्रृंखला रखी ही न जाय या जान बूझकर जगह-जगह से तोड़ दी जाय।(42)

ललित निबन्धों में विषय परिवर्तन होता जाता है। एक विषय को छेड़ते ही कई विषय सामने आने लगते हैं और उनके अनुकूल विचार भी बदलते जाते हैं। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसी बात को बहुत सही ढंग से व्यक्त किया है- ''जिस प्रकार वीणा के एक तार को छेड़ने से बाकी सभी तार झंकृत हो

उठते हैं, उसी प्रकार उस एक विषय को छूते ही लेखक की चित्तभूमि पर बँधे सैकड़ों विचार बज उठते हैं।(43)

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध 'ठाकुरजी की बटोर(44) में हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायों के बीच भेद-भाव एवं समन्वय-सम्बन्धी विचार,'आम फिर बौरा गये(45) में संस्कृति सम्बन्धी विचार,'शिरीष के फूल(46) में वर्त्तमान समस्याएँ सवं मानव-संस्कृति-सम्बन्धी विचार देखे जा सकते हैं। ललित निबन्धकारों के विचार कुछ तो ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन से प्राप्त परन्तु संश्लिष्ट होकर निज के बने हुए होते हैं। कुछ अनुभव जनित भी होते हैं। कुछ कल्पना की उन्मुक्त उड़ान की उपज भी। कुछ विचार यथार्थ-धरातल के होते हैं। विचारों की अभिव्यक्ति सहज, सुपाच्य और स्वाभाविक रूप में होती है। यही सबसे बड़ी विशेषता है। जैनेन्द्र कुमार और कुबेरनाथ राय के निबन्धों में ज्ञान और विचारतत्त्व अधिक मिलेंगे, परन्तु इतना गम्भीर या इतना विद्वतापूर्ण नहीं कि अध्ययनशील पाठक उन्हें समझ न सके।

वर्त्तमान तीव्र परिवर्तनशील मानव जीवन की आवश्यकता भी यही है कि प्रत्येक प्रबुद्ध व्यक्ति का व्यक्तित्त्व विभिन्न विषयों से सम्बद्ध विचारों का धनी हो। आज परम्परागत आदर्शों से नवीन समस्याएँ टकराती रहती हैं। ऐसे क्षण में कोई भी साहित्यकार किसी भी विधा में अपने विचार ही रखने के लिए लेखनी उठाता है। ललित निबन्धकार विचार-ज्ञान अर्थात् बौद्धिक तत्वों को सम्प्रेषित करने में इसलिए सर्वाधिक सफल माना जायगा क्योंकि वह इन तत्वों को राग तत्व में लपेट कर सुस्वाद पूर्ण बना देता है। रोचकता की गंध भीतरी रहस्य की जटिलता हँसते-हँसते पचा लेने की अतिरिक्त क्षमता प्रदान करती है। इसीसे जटिल से जटिल दर्शन-विज्ञान-इतिहास के भाव भीने संदर्भ भी आसान हो जाते हैं।

अपने विचारों की अभिव्यक्ति-क्रम में ललित निबन्धकार कोई उपदेश नहीं देता है। तर्क-वितर्क का भारी बोझ नहीं डालता है। आदर्शों के प्रति वचनबद्ध नहीं रहता है। पाठक के मस्तिष्क पर किसी मत को जबर्दस्ती थोपना नहीं चाहता है। अपना पांडित्य प्रदर्शित करने के लिए कोई विशेष तरीका नहीं अपनाता है। इसके बावजूद ललित निबन्ध स्वयं उपदेश बन जाते हैं। ऐसे सहज तर्क प्रस्तुत कर जाते हैं कि पाठक निबन्धकार की विपरीत मान्यताओं पर विश्वास करने लगता है। ऐसे आदर्शो से टकराता है कि मन की विसंगतियाँ

टूट-टूट कर बिखरने लगती हैं। कहीं विचित्र तो कहीं सामान्य मत आकर पाठक को सोचने के लिए मजबूर कर जाते हैं। विभिन्न शास्त्रों का ज्ञान, शब्द चिन्तन, उद्धरण आदि की प्रस्तुति-क्रम में निबन्धकर का पांडित्य सहज रूप में प्रदर्शित हो जाता है।

तात्पर्य यह है कि सम्पूर्ण साहित्यिक तत्वों का समावेश कुछ इस प्रकार हो जाता है कि पाठक रूचि पूर्वक सहज ढंग से सबका रसास्वादन करने लगता है। रसानुभूति का प्रबल गुण सबमें रस भरता जाता है। लालित्य की छटा में मुग्ध पाठक गम्भीर से गम्भीर तत्वों को सहज रूप में पाकर सहर्ष स्वीकार करता जाता है।

4. **कल्पना** :—

ललित निबन्धकार सर्वत्र कोरी कल्पना का आग्रही नहीं होता है, बल्कि यथार्थ की ठोस भूमि में अपनी कल्पना की उड़ान कौशल का सामंजस्य कर लेता है। ललित निबन्धकार कहीं स्वप्न-कल्पना में तो कहीं वर्त्तमान को देखकर भविष्य की कल्पना में खोये हुए मिलते हैं। ऐसे काल्पनिक संदर्भ बीच-बीच में अलग अनुच्छेदों में या कुछ पंक्तियो में भी मिलते हैं। ये इसका सहारा आत्माभिव्यक्ति एवं रहस्योद्‌घाटन के लिए लेते हैं। स्वप्निल तर्कों एवं कल्पित संदर्भों की क्षणिक एवं खण्डित प्रस्तुति से गूढ़ रहस्य और विचार प्रस्तुत करने में काफी सहायता मिलती है। ज्ञानेन्द्र वर्मा ने उचित ही लिखा है-

''इस वर्ग के निबन्धकार को अपेक्षाकृत अधिक छूट मिलती है। वह कल्पना का सहारा ले सकता है और प्राकृतिक दृश्यों, रमणीय स्थलों आदि के वर्णन में विवरणात्मक गतिशीलता ला सकता है।[47]

पं. रादहिन मिश्र ने कहा है-''अनुपस्थित वस्त्र की मानस-प्रतिमा खड़ी करने की शक्ति का नाम कल्पना है।[48] इस दृष्टि से ललित निबन्धों में कल्पना तत्व कुछ-न-कुछ सर्वत्र मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी 'देवदारू' निबन्ध में महादेव की आँख खुलते ही सबकुछ गड़बड़ हुई स्थिति में देवदारू की स्थिति की कल्पना करते हैं- "सोचता हूँ-उस समय देवदारू की क्या हालत हुई होगी। क्या इतनी ही फक्कड़ाना मस्ती में झूम रहा होगा? क्या ऐसा ही शायद हाँ, क्योंकि शिव की समाधि टूटी थी, देवदारू का ताण्डव-रसभावविवर्जित महानृत्त- नहीं टूटा था''।[49]

5. **भावतत्व**:—

ललित निबन्धकार अपनी आत्माभिव्यक्ति करते समय हृदय पक्ष को भी उतना ही महत्व देता है, जितना मस्तिष्क को। इसलिए ललित निबन्धों को भावों और विचारों का सुन्दर संयोग कहते हैं।

भाव का तात्पर्य सहृदयता, उत्साह, रसात्मकता, आदि चित्तवृत्तियाँ हैं जो पाठक के हृदय को भावित कर दे। यह भावित या वासित करने की क्षमता ललित निबन्धों में कभी-कभी कुछ अधिक हो जाती है। इसी भाव प्रधानता के कारण इन्हें भावात्मक वर्ग में रखने का प्रचलन है। इसी भ्रम में भावात्मक निबन्ध के भाव-साम्य को देखकर कई आलोचक भावात्मक निबन्धों को भी ललित निबन्ध के अंतर्गत रखते हैं।

ललित निबन्धों में भाव सर्वत्र उमड़ता हुआ नहीं मिलता है। शेष सृष्टि के प्रति अपनी प्रतिक्रिया का भावन कराने, पाठक से आत्मीयता बनाने और उसे भावों के साथ बहाते हुए अपने विचारों से अवगत कराने के लिए ही इसका सहारा लिया जाता है। हिन्दी ललित निबन्धों में से किसी भी निबन्ध में भावात्मक प्रवृत्ति कुछ न कुछ अवश्य मिलेगी। इनमें कविता-कहानी-गीत आदि के समान आनन्द रस पाकर कभी-कभी इन्हें गद्यगीत कहते हैं।

उदाहरण के लिए डॉ. विद्यानिवास मिश्र का ललित निबन्ध'धान पान और नीली लपटें'(50) देखा जा सकता है, जहाँ प्रवासी निबन्धकार गाँव-घर की याद में भाव-विभोर होता रहता है। चैता के गीत-'अउर दिने बोले कोइली ...।' बातूनी मिनी के प्रश्न'बाबूजी ललका में उड़ि के कहाँ गइले।' आदि हृदय को विह्वल कर देते हैं।

(आ) कलागत आधारभूत तत्व :-

ललित निबन्धों में निबन्धकार के भावों एवं विभिन्न विचारों को संप्रेषणीय बनाकर लालित्य उभारने में सहयोगी तत्व कलागत आधारभूत तत्व के अंतर्गत आते हैं। ये प्रभावोत्पादक तत्व साधन हैं, साध्य नहीं परन्तु शैलीगत विशेषताओं के आधार पर ऐसी रचनाएँ ललित निबन्ध कहलाती हैं। इसलिए प्रायः सभी तत्वों का संक्षिप्त परिचय अपेक्षित है।

1. **भाषा** :—

ललित निबन्धकार अपनी आत्माभिव्यक्ति के लिए सहज भाषा को महत्व देता है। उसके द्वारा प्रयुक्त प्रत्येक शब्द सार्थक होकर संगीतात्मक लय उत्पन्न कर देता है कोमलकांत पदावलियाँ कविता और कहानी की तरह रसात्मक

हो उठती हैं। कहावतों और मुहावरों के प्रयोग से भाषा का आकर्षण और अधिक बढ़ जाता है। विभिन्न भाषाओं-संस्कृत, अंगरेजी, उर्दू आदि के सामान्य प्रचलित शब्द आकर हिन्दी भाषा के अनुकूल संयोजित हो जाते हैं और सतरंगी इन्द्रधनुष की तरह मनोहर आभा बिखरने लगते हैं। तीनों शब्द शक्तियों से युक्त इसकी सहज-बोधगम्य भाषा ललित हो उठती हैं। क्योंकि इसमें संदर्भ के अनुरूप भाषा का तेवर बदलकर कभी विचार अभिव्यक्तिर्कम में कुछ सतर्क तो कभी भावाभिव्यक्तिर्कम में प्रवाह पूर्ण रूप धारण कर लेती हुई भाषा मिलती है। लोकभाषा का भी प्रयोग करने में निबन्धकार बहुत कुशल सिद्ध हो जाता है।

विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्ध 'दिये बाती का मेल' से एक उदाहरण लेकर लयबद्ध, संतुलित, सहज बोधगम्य भाषा का प्रयोग देख सकते हैं-

''सत्रह वसन्त बीते, एक बाती मैंने भी मिलायी थी और अत्यन्त मधुर कण्ठों से यह उलाहना सुना था 'ललन तुम्हें आवेला मेरवै न बाती।'-प्यारे तुम्हें बाती मिलानी नहीं आती। मैं उस समय झुँझला उठा था।(51)

हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध 'कुटज' में मुहावरों कहावतों की सम्पन्नता द्रष्टव्य है-"कुटज क्या जी रहा है? वह दूसरों के द्वार पर भीख माँगने नहीं जाता, कोई निकट आ गया तो भय के मारे अधमरा नहीं हो जाता, नीति और धर्म का उपदेश नहीं देता फिरता, अपनी उन्नति के लिए अफसरों का जूता नहीं चाटता फिरता, दूसरों को अपमानित करने के लिए ग्रहों की खुशामद नहीं करता, आत्मोन्नति के हैतु नीलम धारण नहीं करता, अंगूठियों की लड़ी नहीं पहनता दाँत नहीं निपोरता, बंगलें नहीं झाँकता।(52)

इस उद्धरण में 'भीख माँगना','जूते चाटना' दाँत निपोरना' आदि कई मुहावरे एवं लाकोक्तियाँ एक साथ आ गयी हैं।

संक्षेप में ललित निबन्धों की जीवन्त भाषा तरल अनूभूतियों से लेकर गम्भीर तथ्यों तक, शहरी शिक्षित वर्ग ग्रामीण परिवेश तक के जीवन की कलई खोलने में सफल होती है।

2. **शैली** :-

ललित निबन्धकार की 'आत्माभिव्यक्ति' जब लोक संपर्क के लिए आकुल होकर किसी पथ को ढूँढने लगती है तब अपने व्यक्तित्व के अनुरूप शैली का निर्माण स्वयं कर लेती है। कोई भी ललित निबन्धकार किसी पूर्व निर्धारित शैली के प्रति वचनबद्ध नहीं होता है, भले ही उसकी अपनी शैली किसी अन्य की

शैली से कुछ अर्थों में समानता रखती है। इसके साथ एक ही निबन्ध में एक ही निबन्धकार प्रसंग विविधता के साथ कई शैलियों का प्रयोग करते हुए भी मिलता है। मुख्य रूप से ऐसी शैलियों का प्रयोग किया जाता है, जिससे निबन्ध को सहज ग्राह्य, लालित्य पूर्ण बनाया जा सके।

ललित निबन्धों की शैली मिश्रित शैली होती है। इसमें भावात्मक, वर्णनात्मक, विवरणात्मक, विचारात्मक, विनोदात्मक, प्रवाह, विक्षेप लाक्षणिक, तार्किक आदि भेदोपभेद में गिनाये जानेवाली प्रायः ऐसी सभी शैलियाँ कहीं-न-कहीं मिल जायेंगी। विभिन्न शैलियों के मिश्रित रूप से बनी इस शैली को ललित शैली कहना उचित होगा। कारण स्पष्ट है-ललित निबन्धों में क्षण-क्षण परिवर्तित शैली नवीनता का बोध कराती चलती है। सौन्दर्य इसी शैली में उभार पाता है। इसमें वार्तालाप, कलात्मकता आदि सभी के दर्शन होते हैं। सभी शैलियाँ इसे सहज आनन्द से भरती हैं, अनावश्यक बोझ नहीं आने देती। अतः ललित निबन्धों की मिश्रित शैली स्वयं ललित है। इसे अन्य किसी एक नाम से अभिहित करना शैलीगत परिचय की अपूर्णता होगी। इस ललित शैली में सहयोग देनेवाली कुछ शैलियों का प्रयोग संक्षेप में देखा जा सकता है।

(क) आत्मीयतापूर्ण वार्तालाप शैली :-

ललित निबन्धकार अपरिचित होकर भी पाठक को अपने पथ का साथी बनाकर अपनी कुशल सम्भाषण शैली में या वार्तालाप का ढंग अपनाकर अपने विचार-भाव आदि सुनाने लगता है। पाठक सुहृद मित्र की तरह उन चित्ताकर्षक बातों को ग्रहण करने लगता है। उस पर पूरा विश्वास भी करता है क्योंकि उसके आत्मनिवेदन में निष्कपटता होती है। निबन्धकार माधूर्य, अपनत्व, सरलता आदि का सहारा लेकर रागात्मक अभिव्यक्ति से पाठक की आत्मा तक अपनी आत्मा को पहुँचाने में सफल हो जाता है।

इस शैली का सफल उदाहरण विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्ध'धने नीम तरू तले' में द्रष्टव्य है-

''अब सोचिए, नीम में क्या मिलता है,... मुझे इतनी विरक्ति इसमें आज क्यों है, बताऊँ? इसलिए नहीं कि मैं मधुराई में डूबा रहना चाहता हूँ... अब जरा सपाट ढंग से बात करूँ। मैं बहुत ही एकाकी व्यक्ति हूँ।(53)

(ख) उन्मुक्त अथवा स्वाधीन चिन्तन शैली :-

ललित निबन्धकार मात्र 'स्व' के बंधन में रहकर अपनी मर्यादाओं का मनोनुकूल पालन करता है। वह अन्य नियमों या आदर्शों के बन्धनों के प्रति कोई

विशेष आसक्ति नहीं रखते हुए आगे बढ़ता है। अपनी दृष्टि को किसी बन्धन से परे रखकर भाव एवं कला का सुन्दर संयोजन कर लेता है। कोई भी विषय, कोई भी विचार निबन्ध के प्रारम्भ, मध्य या अन्त कहीं भी रख देने की यह शैली उन्मुक्त अथवा स्वाधीन शैली है। इसी से ललित निबन्धों में अनियमितता अथवा विश्रृंखलता आ जाती है।

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के 'कल्पलता[54] संग्रह के निबन्ध 'नाखून क्यों बढ़ते हैं,'शिरीष के फूल' और विद्यानिवास मिश्र के 'गाँव का मन[55] संग्रह के 'मेरा गाँव घर','गाँव का मन' आदि निबन्धों में इस शैली का दर्शन होता है। इन निबन्धों में निबन्धकार मन की मौज में घर-आँगन से बातें शुरू कर देश-विदेश घूमता है। सभ्यता-संस्कृति की चर्चाओं में डूबता-उतरता है और फिर सामान्य सी बातों में लौट आता है।

(ग) धारा-विक्षेप शैली :-

ललित निबन्धकार भावाभिव्यक्ति-क्रम में कहीं तीव्र-कहीं शिथिल, कहीं सपाट-कहीं खण्डित, कहीं उठते-गिरते तरंगों के समान ही विचारों एवं भावों को व्यक्त करता है। वह कभी कहानी कहने लगता है तो कभी संवादों को नाटकीय ढंग से व्यक्त करने लगता है। कहीं सीधे विचार रखने लगता है।

तात्पर्य यह कि इसकी शैली एक समान गतिशील नहीं होती है। सदर्भ के बदलते ही शैली बदल जाती है। इसलिए धारा-विक्षेप शैली कहना ही उचित होगा। प्रायः सभी ललित निबन्धों में ऐसी शैली मिलती है।

(घ) हास-परिहास युक्त विनोदात्मक शैली :-

ललित निबन्धों में लालित्य की वृद्धि की दृष्टि से यह शैली सर्वाधिक कारगर है। हास-परिहास युक्त विनोदात्मक शैली एक और गम्भीर, विचारों और भावों से थके मन में पुनः उर्जा का संचार करती है तो दूसरी और अनेक अर्थों का विस्तार भी करती है। बहुत से ऐसे कार्य सधते जाते हैं जो सीधे वक्तव्यों द्वारा असम्भव होते हैं।

डॉ. रास्वरूप चतुर्वेदी लिखते हैं कि "यह विनोद का तत्व वस्तुतः किसी भी साहित्य की निबन्धकला का प्राण तत्व है।"[56]

हिन्दी ललित निबन्धों में प्रायः शिष्ट विनोद ही सर्वाधिक प्रयुक्त हुए हैं। व्यंग्य का तीखापन कहीं-कहीं अवश्य मिलता है, परन्तु किसी भी निबन्ध मे सर्वत्र वयंग्य ही वयंग्य होने से वह व्यंग्य साहित्य के क्षेत्र में चला जायेगा।

अच्छे निबन्धकार आत्मव्यंग्य करते हुए दूसरों पर कहीं-कहीं तीखा बाण छोड़ते हैं। यह व्यंग्य-विनोद कुछ ही स्थलों में मिल सकता है सर्वत्र नहीं। उदाहरण के लिए हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध'आपने मेरी रचना पढ़ी है? में व्यक्त आत्म-व्यंग्य का संदर्भ लिया जा सकता है" आसमान में निरन्तर मुक्का मारने में कम परिश्रम नहीं है और मैं निश्चित जानता हूँ कि रहस्यवादी आलोचना लिखना कुछ हँसी-खेल नहीं है। पुस्तक को छुआ तक नहीं और आलोचना ऐसी लिखी कि त्रैलोक्य विकम्पित। यह क्या कम साधना है।(57)

इस शैली का प्रयोग कुछ निबन्धकार मात्र मनोविनोद के लिए करते हैं तो कुछ सामाजिक विसंगतियों को दूर करने के लिए।

(ई) अन्य विशेषताएँ-

(क) उपदेशक वृत्ति का निषेध एवं विचित्र मान्यताओं की स्थापना के प्रयास-रसानुभूति का लक्ष्य लेकर चलने वाला ललित निबन्धकार उपदेश या किसी पारम्परिक मत का बोझ पाठक पर नहीं डालता है, भले ही पूरा निबन्ध स्वयं उपदेशक बन जाता है। कहीं-कहीं निबन्धकार प्रचलित मान्यताओं के विपरीत विचित्र परन्तु विश्वसनीय मतों को भी रख देता है। जैसे-देवेन्द्रनाथ शर्मा साधारण सवारी साईकिल को रेल और हवाई जहाज से भी श्रेष्ठ, अनुपम, अद्वितीय सवारी बतलाते हैं।

(ख) शब्द चिन्तन-ललित निबन्धों में प्रयुक्त कुछ शब्दों के विषय में उसका अर्थ, उसका ऐतिहासिक महत्व, उसकी प्रासंगिकता आदि पर विचार करने वाले ललित निबन्धकार आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र आदि हैं। ये कई बार एक-एक अनुच्छेद तक शब्द- चिन्तन कर जाते हैं।

(ग) उद्धरणप्रियता-अधिकांश ललित निबन्धकार विभिन्न शास्त्रों-धर्मग्रन्थों-साहित्य संगीत-लोकजीवन के गीत आदि से उद्धरण प्रस्तुत करते हुए देखे जाते हैं। मन की मौज में जो कुछ उपलब्ध प्रिय एवं प्रासंगिक लग जाता है उसे मूल रूप में ही रख देने की परम्परा मिलती है। ये उद्धरण संयत ढंग से उचित मात्रा में उपस्थित होकर ललित निबन्धों को अधिक समृद्ध करते हैं। इसके विपरीत इसकी अधिकता ऊब पैदा करती है।

(घ) संक्षिप्त गद्य रचना- हिन्दी ललित निबन्धों का आकार प्रायः इतना ही लम्बा होता है कि एक बैठक में या थोड़े से समय में इसे पढ़ लिया जा सके। अर्थात् अधिक से अधिक 10-12 पृष्ठ।

इसमें रागतत्त्व उपस्थित होता हैं। संगीत का स्वर मुखरित होता हैं। पद्यात्मक उद्धरण, लोकगीत आदि के संदर्भ उधृत होते हैं। इसके बावजूद यह गद्यात्मक ललित रचना है। कथा-वार्ता के गुणों से युक्त इन रचनाओं की अपनी अलग पहचान है। सर्वत्र लालित्य उभारने वाली विशेषताएँ भरी होती हैं। निबन्धकार का 'मैं' 'हम' बनकर व्यष्टि में समाहित समष्टि का विराट् विभिन्न रंग-रूपों का आकर्षण बिखेरने लगता है। यही इस गद्य की सबसे बड़ी विशेषता है।

3. निबन्ध, कहानी, गद्यगीत, संस्मरण, आत्मकथा, जीवनी तथा डायरी, रेखाचित्र, रिपोर्ताज, यात्रावर्णन, पत्रसाहित्य आदि से ललित निबन्ध का साम्य-वैषम्य।

ललित निबन्धकार अपनी रूचि के अनुसार विभिन्न विधाओं के अनेक तत्वों को कुछ इस प्रकार आत्मसात् कर लेता है कि ललित निबन्धों को' संस्मरण, आत्मकथा, रेखाचित्र, रिपोर्ताज आदि अन्य विधाओं से भिन्न रूप में देखकर पृथक कर पाना अत्यन्त कठिन हो जाता है। आलोचकों के समक्ष एक उहापोह की स्थिति बन जाती है। अतः इस संदर्भ में कुछ आलोचकों की स्थिति से परिचित हो लेना उपयुक्त होगा।

श्री वल्लभ शुक्ल कहते है कि 'निबन्ध, गीत, गद्यकाव्य, कथा, गीतिकाव्य कुछ भी नहीं है, परन्तु यह सब कुछ है। यह सब कुछ हो जाने के बाद भी वह स्वतंत्र वस्तु है जो अपने नियामक तत्वों से विलग है।(58)

प्रभाकर माचवे इसे केवल सालीलाकी, रिपोर्ताज, संस्मरणात्मक रेखाचित्र यात्र वर्णन न होकर सबका सम्मिश्रित रूप मानने के पक्ष में है-'वह यहसबकुछ सम्मिश्रित रूप मे होने पर भी उससे ऊपर एक सुंदर रसायन सा है।(59)

अतः विभिन्न विधाओं की शैलियों के सम्मिश्रण से रचित ललित निबन्धों को स्वतंत्र विधा के रूप में देखने के लिए आवश्यक है कि उन समानताओं को स्पष्ट किया जाय जो इनके बीच के वैषम्य को ओझल कर देते हैं। फिर उन सुक्ष्म तथ्यों को ढूँढ़नें का प्रयास हो जो वैषम्य की स्पष्ट लकीर बन सके। यहाँ यथासम्भव यही प्रयास किया जा रहा है-

1. निबन्ध (अन्य सभी हिन्दी निबन्ध) से ललित निबन्ध का साम्य–वैशम्य:–

हिन्दी निबन्ध के अन्य सभी प्रकार के निबन्धों को एक और तथा

ललित निबन्धों को दूसरी और रखकर देखने पर निम्नांकित समानताएँ और असमानताएँ दिखती हैं-

विषय चयन की दृष्टि से प्रायः सभी निबन्ध किसी सीमा में बंधे नही होते हैं, परन्तु ललित निबन्धकार कुछ अधिक व्यापक,क्षेत्र में जाकर तुच्छ से तुच्छ विषयों का भी चयन कर लेता है। व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति भी प्रायः सभी निबन्धों में होती है, परन्तु ललित निबन्धों में निज को रखने का अर्थात् अपने साहित्यिक व्यक्तित्व को प्रदर्शित करने का अवसर अधिक होता है।

विचारात्मक निबन्ध विचार प्रधान होते हैं, भावात्मक भाव प्रधान, व्यंग्यात्मक व्यंग्यप्रधान, व्यक्तिगत,व्यक्ति प्रधान परन्तु ललित निबन्ध इन सबका समिश्रण तैयार करके अपना जो स्वरूप संगठित करता है उसमें सौन्दर्य की आभा अर्थात् लालित्य की ही प्रधानता रहती है। ये सभी तत्व इसे ललित बनाने में सहयोगी बनते हैं,कोई एक तत्व प्रधान नहीं हो पाता है।

विचारात्मक निबन्ध गम्भीर चिन्तन, तर्क-वितर्क या सिद्धान्त प्रतिपादक बोझिल वातावरण में रचित होने के कारण ललित निबन्धों की हल्की, सरस, सजीव, रोचक वातावरण से सहज ही भिन्न हो जाते हैं।

भावात्मक निबन्धों में भाव ही भाव सर्वत्र उमड़ता जाता है। कल्पना, रोदन, राग-विराग युक्त हृदय पक्ष ही प्रबल होता है। अतः इसे निबन्धकार के अंतस्थ भावनाओं की मंजूषा कहना उपयुक्त होगा जबकि ललित निबन्ध भावों के साथ विचार, व्यक्तित्व आदि सबको अंगीकार करता है। मात्र भावनालोक में विचरण करना उसका लक्ष्य नहीं होता है।

व्यक्तिगत या आत्मपरक निबन्धों से ललित निबन्धों का सूक्ष्म अंतर प्रारम्भ में ही देखा गया है। यहाँ इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि ललित निबन्ध में जो लालित्य उभरता है वह व्यक्तित्व प्रधान होकर भी आत्मपरक निबन्धों में नहीं मिलता है। आत्मपरक निबन्धों में लालित्य हो सकता है,परन्तु सभी आत्मपरक निबन्ध ललित नहीं हो सकते हैं। सभी ललित निबन्ध विषयीनिष्ठ, व्यक्तिव्यंजक होते हैं। उनमें विचार-भाव, कल्पना-यथार्थ सबकुछ मिल सकता है परन्तु ललित निबन्धों में लालित्य जितनी प्रधानता के साथ उपस्थित होता है उतना महत्व किसी अन्य को देना सम्भव नहीं है।

2. कहानी से ललित निबन्ध का साम्य–वैषम्य :–

कहानी और ललित निबन्ध में कथातत्व, वार्तालापीय शैली, सरसता, प्रभाव

एवं विस्तार की दृष्टि से काफी समानताएँ हैं। ये दोनों एक समान आनन्द प्रदान करनेवाली स्वतंत्र गद्य विधाएँ हैं। इनमें जीवन के खण्ड मात्र ही मनोरंजक एवं चित्ताकर्षक रूप में चित्रित होते हैं। ये दोनों ही एकांगी अपूर्ण अथवा स्वतः पूर्ण रचनाएँ हैं।

इसके बावजूद व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति एवं विषय संयोजन की दृष्टि से इनमें पर्याप्त अन्तर है। ललित निबन्धकार अनिवार्यतः आत्माभिव्यक्ति को प्रधानता देता है जबकि कहानी कार निजी व्यक्तित्व का आभासमात्र प्रस्तुत करते हुए विषय या शीर्षक को ही प्रमुखता प्रदान करता है। अतः हम कह सकते हैं कि ललित निबन्ध में निबन्धकार का व्यक्तित्व अधिक स्पष्ट और प्रत्यक्ष होकर प्रधान हो जाता है जबकि कहानीकार का निजी व्यक्तित्व अपेक्षाकृत कम प्रकाशित हो पाता है।

ललित निबन्धों में विषयांतर की विशेषता होती है। निबन्धकार स्वतंत्र भाव से एक विषय से दूसरे विषय में छलाँग लगाता रहता है, परन्तु कहानीकार शायद ही कहीं-कहीं प्रासंगिक कथाओं की और गमन करता है। विशृंखलता जहाँ ललित निबन्धों की विशेषता है, वहीं कहानी के लिए अभिशाप बन सकती है। कहानीकार कहानी के स्वरूप का पूर्वानुमान कर लेता है। इसके प्रारम्भ, चरमोत्कर्ष एवं अंत का ढाँचा पूर्व निश्चित करके ही प्रायः कहानी लिखता है इसलिए एक तारतम्यता बनती है। ललित निबन्धकार ऐसी किसी भी पूर्व-योजना के लिए वचन-बद्ध नहीं होता है।

ललित निबन्धों में कल्पना के साथ यथार्थ आ जाने से विश्वसनीयता अधिक बढ़ जाती है। पाठक और निबन्धकार के बीच की दूरी प्रायः समाप्त हो जाती है। कहानी में इतनी विश्वसनीयता और आत्मीयता सम्भव नहीं है। कहानी केवल कल्पित हो सकती है या केवल यथार्थवादी। ललित निबन्ध में दोनों का समन्वय होता है।

3. गद्यगीत से ललित निबन्ध का साम्य–वैषम्य–

गद्यगीत और ललित निबन्ध परस्पर इतना साम्य रखते हैं कि श्री वल्लभ शुक्ल के अनुसार गद्यगीत ''व्यक्तिव्यंजक एवं कृतिकार की उद्‌घाटक होने से ललित निबन्ध की सीमा में आ गई।[60] इस दृष्टि से गद्यगीत भी कवि की निश्छल आत्मानुभूति की वैयक्तिक अभिव्यक्ति है। भाव को महत्व देने पर गद्यगीत भावात्मक लघु निबन्ध ही स्वीकार किये जाते हैं। जयनाथ नलिन लिखते

हैं कि" विषय, मर्यादा, भावमयता की दृष्टि से भावात्मक निबन्ध तो गद्य में लिखे गये गीत ही हैं। अनेक समीक्षक तो भावात्मक लघु निबन्धों को 'गद्यगीत' नाम से साहित्य की एक विधा भी मान बैठे हैं।(61)

भले ही गद्यगीत को भावात्मक लघु निबन्ध कह दिया जाय या इसे ललित निबन्ध का स्थान दे दिया जाय, परन्तु यह समीक्षकों की उदारता ही समझी जाएगी। काव्य के रूप की दृष्टि से ललित निबन्ध को मैंने स्वतंत्र एक भिन्न विधा स्वीकार किया है। इनके बीच के अन्तर की लकीर यह है कि गद्यगीत में मात्र गीतकार का हृदय पक्ष ही अधिक सबल होता है, जब कि ललित निबन्ध में विचार, हल्के-फूल्के तर्क, हास्यव्यंग्य आदि का समायोजन होता है। गीतकार एक गीत में प्रायः एक ही विषय पर हँसता-रोता है जबकि ललित निबन्धकार अनेक विषयों को विषयांतरित रूप में समेट लेता है। गद्यगीतकार ललित निबन्धकार की भाँति पाठक के साथ सुहृद वार्ता नहीं करता है। गद्यगीत में भावात्मक अनुभूति की बाढ़ भावात्मक निबन्धों के समान उमड़ती है, जबकि ललित निबन्ध में भाव का प्रवाह भावात्मक निबन्धों की भावगत प्रकृति से अलग होता है। इस दृष्टि को महत्व देकर इसे भावात्मक निबन्ध के वर्ग में कोई रख सकता है, जैसा कि' डॉ. ओंकारनाथ शर्मा भावात्मक निबन्ध की कोटि में ही वैयक्तिक निबन्ध, गद्यगीत या गद्य काव्य आदि को रख देते हैं।(62)

परन्तु ललित निबन्ध गद्यगीत की अपेक्षा अधिक सामान्य बुद्धि के घरेलू यथार्थ जीवन के पहलुओं पर अपने पाठकों से बातचीत या कानाफूँसी करने वाली विधा है। गद्यगीतकार को ललित निबन्धकार की अपेक्षा अधिक काल्पनिक भावनाओं की उड़ान भरने की सुभीता है।

4. संस्मरण से ललित निबन्ध का साम्य–वैषम्य–

लेखक की आत्माभिव्यक्ति के आधार पर संस्मरण एवं ललित निबन्ध दोनों एक ही तरह की विधा है। दोनों में विषय या वस्तु आत्मीयता पूर्ण वातावरण में रोचक ढंग से प्रस्तुत किये जाते हैं। इनमें एक समान सहजता एवं स्वाभाविकता होती है। इसी कारण कुछ समीक्षक संस्मरण को ललित निबन्धों के अन्तर्गत रख देते हैं या फिर 'डॉ. मालती रस्तौगी की भाँति आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के'अशोक के फूल','वसंत आ गया','नाखून क्यों बढ़ते हैं' आदि, प्रभाकर माचवे के 'खरगोश के सींग' आदि ललित निबन्धों को संस्मरणात्मक निबन्ध की श्रेणी में रखते है।''(63) वस्तुतः लेखक की वैयक्तिकता, भावुकता,

अनुभूति, यथार्थता सबकुछ संस्मरण और ललित निबन्ध में होती हैं, परन्तु इस साम्य के होते हुए भी दोनों में पर्याप्त सूक्ष्म भेद हैं। ये दोनों भिन्न-भिन्न स्वतंत्र विधाएँ हैं।

संस्मरण में लेखक की निजी आन्तरिक अनुभूतियाँ उतनी स्वतंत्रता से अभिव्यक्त नहीं हो पाती हैं, जितनी ललित निबन्धों में। संस्मरणकार किसी प्रसिद्ध व्यक्ति, पात्र आदि की विशेषताओं को व्यक्त करने या उसके साहचर्य में भोगे हुए यथार्थ को ही व्यक्त करने में व्यस्त रहता है। अतः कहना चाहिए कि संस्मरण में चयनित विषय प्रधान होता है। वह शीर्षक पर बैठे पात्र के इर्द-गिर्द ही मंडराता है। उसके व्यक्तित्व एवं अपने पर पड़े उसी के प्रभाव को व्यक्त करता है। पाठक भी लेखक के व्यक्तित्व की खोज नहीं करता है, बल्कि चित्रित पात्रों को ही ढूँढता है। लेखक के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति उस पात्र को सजींव बनाये रखने से अधिक महत्व की नहीं होती है। भले ही लेखक का व्यक्तित्व सम्पूर्ण संस्मरण में हो।

जबकि ललित निबन्ध प्रधानतः निबन्धकार की आत्मानुभूतियों एवं सबल व्यक्तित्व की ही अभिव्यक्ति है। इसमें शीर्षक एक बहाना मात्र होता है। पाठक लेखक के सम्पन्न व्यक्तित्व को ही पाकर सम्पूर्ण आनन्द प्राप्त कर लेता है। इसमें विषय का स्थान व्यक्तित्व को मिल जाता है। भले ही बीच-बीच में निबन्धकार का व्यक्तित्व ओझल सा दिखार्द दे लेकिन वही महत्व की वस्तु है। अपनी आकस्मिक एवं क्षणिक झलक होने के बावजूद भी वही ललित निबन्ध का सौन्दर्य है।

इस प्रकार ललित निबन्धों में संस्मरण से साम्य रखने वाले तत्वों की निहिति से इन्कार नहीं किया जा सकता है। फिर भी यह ध्यातव्य है कि निबन्धकार अपनी रूचि, अरूचि से सम्बद्ध होकर ही संस्मरण की विधि अपनाकर किसी विशेष तथ्य को उद्‌घाटित करता है। प्रधानता सर्वत्र ललित निबन्धकार के व्यक्तित्व को ही मिलती है, पात्र, विषय या शीर्षक को नहीं।

5. आत्मकथा, जीवनी, डायरी से ललित निबन्ध का साम्य–वैषम्य

आत्मकथा और ललित निबन्ध दोनों में लेखक अपनी ही बातें कहता है। आत्मनिवेदन या आत्माभिव्यक्ति की दृष्टि से ये दोनों समान रचनाएँ हैं।

परन्तु भाव निवेदन के आधारों एवं विषयचयन की दृष्टि में भेद हो जाता है। आत्मकथा में लेखक अपने व्यतीत क्षणों की वास्तविक घटनाओं को ही

सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करता है। वह बहुत कुछ संस्मरण के अधिक निकट की रचना है।

परन्तु ललित निबन्ध आत्मनिवेदन का ढंग अपनाकर भी पूर्णतः आत्मकथा नहीं है। उदाहरण के लिए आत्मनिवेदन की शैली अपनाते हुए देवेन्द्रनाथ शर्मा' ये दो आँखे[64] निबन्ध की रचना करते हैं। यदि ठीक से देखा जाय तो इसमें कोई जीवन-वृत्त, आत्मकथा या कोई संस्मरण नहीं है। यह तो अंतः मन की भावनाओं और विचारों का ललित ढंग से प्रकाशन हैं। विषय वस्तु की प्रकृति वहीं एक दूसरे से भिन्न हो जाती है। आत्मकथ्य का ढंग बदल जाता है।

आत्मकथाकार जीवन-सत्यों का यथार्थ प्रस्तुत करने के लिए वचनबद्ध होता है। वह कल्पना का सहारा लेकर अपने कथ्य को कलंकित कर लेगा। अतीत का स्मरण करने का अधिकार उसे है। वह मन गढन्त झूठ बतलाकर पाठक से प्रशंसा नहीं पा सकता है। अतिशयोक्ति पूर्ण बातों की ओर बढ़ते ही पाठक का विश्वास खोने लगता है। इसके विपरित ललित निबन्धकार यथार्थ को कल्पना-रस में लपेट कर रोचक बना लेता है और पाठक की वाह-वाही लूटता है। ललित निबन्धकार को कल्पना की ऊँची उड़ान भरने की छूट है। सिर्फ शर्त यह है कि वह यथार्थ के धरातल पर बार-बार लौट जाय। मात्र कल्पना में ही डूबा न रहे।

जीवनी किसी लेखक के अध्ययन, अनुभव एवं साहचर्य क्षेत्र में नैकट्य प्राप्त किसी व्यक्ति-विशेष का जीवन वृतान्त प्रस्तुत करने की एक कला है। प्रायः प्रतिष्ठित व्यक्तियों की विशेषताओं से परिचय प्राप्त कराने के उधेश्य से ये रचनाएँ प्रस्तुत की जाती हैं। लेखक उस विशिष्टि व्यक्ति के व्यक्तित्व को प्रधानता देते हुए अपने व्यक्तित्व के कुछ अंशों को भी सुरूचिपूर्ण बनाकर रखने लगता है, परन्तु ध्यान उस व्यक्ति पर ही केन्द्रित होता है। यह कला ललित निबन्धों के विषयान्तर से मेल नहीं रखती है।

डायरी किसी लेखक के दैनिक जीवन की घटनाओं एवं अनुभूतियों का वास्तविक ब्योरा मात्र है। विभिन्न विषयों का ज्ञान बधारना अपनी विद्वतासिद्ध करना है। इसमें अपने जीवन की दैनिकी प्रस्तुत करना ही प्रधान लक्ष्य है। सम्पूर्ण साहित्य है आत्माभिव्यक्ति के लक्ष्य से सृजित होने मात्र से ललित निबन्ध नहीं हो जायेगा। ललित निबन्ध अपने स्वरूप संगठन में अन्य सभी साहित्यिक विधाओं से भिन्न है। भले ही ललित निबन्ध इन्हीं अनेक विधाओं के कुछ तत्वों

के समान रूचि के कारण इतना रोचक एवं ललित विधा बन गई है। ललित निबन्धकार अपने निबन्ध में कहीं आत्मकथा कहता हुआ, कहीं किसी सज्जन के जीवन वृतांत का कोई खण्ड सुनाता हुआ फिर अपनी डायरी के ब्योरे बतलाता हुआ भी देखा जा सकता है, परन्तु वह इन विभिन्न विधाओं का रचनाकार न होकर मूलतः ललित निबन्धकार है।

6. रेखाचित्र से ललित निबन्ध का साम्य–वैषम्य–

रेखाचित्र अथवा स्कैच एक प्रकार का शब्दचित्र है। अर्थात् इसमें शब्दों का प्रयोग करके किसी वस्तु या व्यक्ति का चित्र प्रस्तुत किया जाता है। स्कैच में लेखक की निजी भावात्मकता और अनुभूति प्रधान हो जाने पर यह ललित निबन्ध के अधिक समीप की रचना प्रतीत होती है। इसमें लेखक एवं पात्र दोनों के व्यक्तित्व साकार हो उठते हैं। जबकि मूलतः लेखक का व्यक्तित्व ही प्रधान होता है, क्योंकि वही पात्र के व्यक्तित्व का आधार है। ललित निबन्धों में भी कहीं-कहीं चित्रात्मक शैली अपनायी जाती है। ये दोनों विधाएँ संक्षिप्त आकार की होती है।

परन्तु इस साम्य के बावजूद रेखाचित्र की विषय-वस्तु सीमित होती है जबकि ललित निबन्ध में विषय की सीमा पर कोई बन्धन नहीं रहता। रेखाचित्रकार अनिवार्य रूप से विषय वस्तु से सर्वत्र जुड़ा रहता है, जबकि ललित निबन्धकार उससे विच्छिन्न होकर स्वतंत्रता पूर्वक भी चल सकता है। रेखाचित्रकार शब्दों के अर्थ उनमें रंग भरकर उभारता है जबकि ललित निबन्धकार नाद-लहरों का सहारा लेता है। रेखाचित्र में दृश्य-विधान है जबकि ललित निबन्ध में वार्तालाप-विधान एवं पाठक से आत्मीयता बनाने की विधि है। इन दोनों में पर्याप्त अन्तर है और दोनों भिन्न स्वतंत्र विधाएँ हैं।

7. रिपोर्ताज से ललित निबन्ध का साम्य–वैषम्य–

रिपोर्ताज या सूचनिका साहित्यिक कलात्मक शैली में रचित सरस, सजीव, मर्मस्पर्शी भावपूर्ण गद्य रचना है। इसमें भी ललित निबन्ध के समान लेखक के संवेदनशील मन की अभिव्यक्ति होती है। अर्थात् उसके व्यक्तित्व से ही घटनाएँ पगी होती है। कथातत्व एवं कल्पना का लेश इसमें भी होता है। शैली की दृष्टि से इसमें भी थोड़ा'लूज' होने का गुण है। इतने साम्य होने के बावजूद रिपोर्ताज और ललित निबन्ध में पर्याप्त अन्तर है।

ललित निबन्ध में लेखक के अपने भाव और अपने विचार ही प्रधान होते

हैं, जबकि रिपोर्ताज में लेखक घटना विशेष के प्रति अपनी दृष्टि एवं संवेदना व्यक्त करता है। उसकी कल्पना, सहृदयता एवं कलागत शक्तियाँ उस घटना को सजीवता प्रदान करने में सहायक मात्र हैं। प्रधानता घटना की होती है लेखक के व्यक्तित्व के स्पर्श से घटना ही अधिक स्पष्ट एवं मनोरम होती है। लेखक का व्यक्तित्व कहीं भी प्रधानता नहीं पाता है

ललित निबन्धों में मानसिक भाव तरंगों के कारण बिखराव होता है, परन्तु रिपोर्ताज में वस्तु स्थिति के प्रवाह एवं उसकी अबाद्यता के कारण बिखराव होता है। ललित निबन्धकार पूर्णतः स्वतंत्र भाव से भटकता है जबकि रिपोर्ताज लेखक सतर्कता पूर्वक विभिन्न तथ्यों की छानबीन करता है और विश्वास के साथ सूचनाएँ देता है। विषय के चुनाव की प्रक्रिया भी दोनों में भिन्न है। ललित निबन्धकार अपनी रूचि से किसी विषय का चुनाव कर सकता है परन्तु रिपोर्ताज लेखक सामने घटित घटना में ही रूचि लेने के लिए बाध्य है। ललित निबन्ध में तुच्छ पदार्थ भी स्थान पाकर चमक जाते हैं, परन्तु रिपोर्ताज में ऐसे विषय या पदार्थ महत्वहीन होते हैं। इनसे रिपोर्ताज का स्तर ही निम्न हो जाता है। रिपोर्ताज जहाँ संघर्ष के क्षणों की तत्काल सूचना देने वाली विधा है, वहाँ ललित निबन्ध निबन्धकार के स्वाधीन मन की उपज है। रिपोर्ताज लेखक घटना-सूत्र के पीछे-पीछे भागता हुआ दिखता है, जबकि ललित निबन्धकार मनोनुकूल मनोरम वातावरण में मौज के साथ भ्रमण करता है।

8. यात्रा–वर्णन से ललित निबन्ध का साम्य–वैषम्य–

यात्रा-वर्णन और ललित निबन्ध में साम्य होने का कारण यह है कि ललित निबन्धकार की प्रवृत्ति भी स्वच्छन्द विचरण की होती है। अपने स्वाधीन मन के भ्रमण में वह किसी यात्री या यायावर की भाँति विभिन्न विषय क्षेत्रों में भ्रमण करता है। यात्रा-वर्णन और ललित निबन्ध दोनों में लेखक अपने व्यक्तित्व का प्रकाशन रोचक ढंग से करता है। कथात्मक शैली का सहारा दोनों ले सकते हैं। भावावेश दोनों के लिए अनुकरणीय है। फिर भी दोनों की दृष्टि इन तत्वों के समायोजन में भिन्न होती है। इन दोनों रचनाओं के बीच भेद की रेखाएँ स्पष्ट हैं-

यात्रा-साहित्य का लेखक अपनी यात्रा में आए हुए स्थलों एवं उन स्थलों को देखने पर प्राप्त अनुभव का तथ्यात्मक वर्णन अधिक करता है। वह उस स्थल विशेष से दूसरे किसी स्थल की तुलना कर सकता है, परन्तु प्रधानता

उसी स्थल को देता है इस प्रकार उसमें अपने भ्रमण स्थल से इतर भटकने की गुंजाइश बहुत कम रहती है। ललित निबन्धकार अपनी मनोभूमि में प्राप्त अनुभूति एवं सर्जनात्मक शक्ति का प्रयोग करते हुए विषय से विच्छिन्न अन्य तथ्यों की और एक डाल से दूसरी डाल पर छलाँग लगाते बन्दर की भाँति स्वतंत्र उछल-कूद करता है।

यात्रा-वर्णन में विषय प्रधान होता है और लेखक का व्यक्तित्व अप्रधान, जबकि ललित निबन्ध में लेखक का व्यक्तित्व अपनी प्रधानता सर्वत्र बनाये रखता है। यात्रा-साहित्यकार भ्रमण स्थल को रोचक ढंग से उभारने में सचेष्ट रहता है जबकि ललित निबन्धकार अपने सबल व्यक्तित्व उभारने में। कहीं-कहीं ललित निबन्ध में यात्रा का भान होता है, जबकि यात्रा-साहित्य में लेखक पूरी तरह एक यात्री लगता है। आकार-प्रकार की दृष्टि से समान दिखने वाली ये दोनों विधाएँ परस्पर भिन्न साहित्यिक विधाएँ हैं।

9. पत्र से ललित निबन्ध का साम्य–वैषम्य–

पत्र और ललित निबन्ध दोनों में व्यक्तित्व एवं निजी पन प्रधान हैं। दोनों में लेखक पाठक के सामने अपना हृदय खोलकर रख देता है। वर्णन, विवरण, विचार और भाव दोनों में होते हैं। परन्तु इनमें पर्याप्त अंतर है, जिससे ये दोनों विधाएँ परस्पर भिन्न हो जाती हैं-

पत्र की रूप रेखा (प्रारम्भ में संबोधन, तिथि, स्थान एवं अंत में आशीर्वचन, हस्ताक्षर आदि का उल्लेख) ललित निबन्धों में नहीं होती है। पत्र लेखक अपने एक या एक ही परिवार के कुछ आत्मीय जनों से हार्दिक सम्बन्ध रखता है जबकि ललित निबन्धकार एक बड़े पाठक समुदाय से सम्बन्ध रखता है। पत्र लेखक के पाठक पूर्व परिचित हो सकते हैं या अंशतः पूर्व परिचित होते ही हैं, परन्तु ललित निबन्धकार अपरिचित पाठकों से सुहृद सम्बन्ध रखता है।

विषय की दृष्टि से पत्र अधिक व्यक्तिगत होने के कारण प्रेम, विवाह, हर्ष-विषाद जनित घरेलू एवं दैनंदिन जीवन के सीमित क्षेत्र तक ही सीमित होता है जबकि ललित निबन्ध सामाजिक होने के कारण अधिक लगभग किसी भी क्षेत्र तक विभिन्न विषयों को समेट सकता है।

पत्र में दो या दो से अधिक आत्मीय जन गोपनीय तथ्यों पर भी निश्छल या छल पूर्वक किसी भी दृष्टि से वार्ता कर सकते हैं। उन्हें सामाजिक मर्यादाओं की उतनी चिंता नहीं होती है जबकि ललित निबन्धकार समाज के शुभ-अशुभ

को अर्थात् मानवता को सुरक्षित रखने की सीमा का उल्लंघन नहीं करता है।

ललित निबन्धों में पत्र की विधा का अनुकरण होता है या हो सकता है, परन्तु यह पत्र नहीं है और न पत्र ही ललित निबन्ध है। विशाल मानवता की समस्याओं और भावनाओं का कद्र करते हुए भी पत्र लेखन की प्रक्रिया इसे ललित निबन्ध की सीमा में नहीं आने देगी।

इस प्रकार ललित निबन्ध से साम्य रखने वाली विभिन्न विधाएँ अपनी अलग विशेषताओं, लेखन प्रक्रियाओं एवं आधारभूत तत्वों के संयोजन भेदों के कारण ललित निबन्ध से भिन्न हैं। ललित निबन्धों के वर्ग में उन्हें स्थान देना उचित नहीं है।

साहित्य की अनेक विधाओं जैसे- नाटक, उपन्यास, रचना, लेख आदि से ललित निबन्धों का साम्य-वैषम्य दिखलाया जा' सकता हैं। इन स्वतंत्र विधाओं से तुलना करना यहाँ अनावश्यक विस्तार अथवा अनअपेक्षित प्रतीत होता है। जहाँ तक प्रबन्ध से ललित निबन्ध की तुलना करने की आवश्यकता पड़े तो संक्षेप में यही होगा कि ललित निबन्ध में व्यक्तित्व का संपन्न उभरा रूप होता है जबकि प्रबन्ध में लेखक परोक्ष रूप से अपने ज्ञान एवं अपनी शैलीगत योग्यताओं का प्रदर्शन करता है। प्रबन्ध लेखक के शास्त्रीय ज्ञान, लोक संग्रह अथवा अन्य अनुभव जनित तर्क-वितर्क, आलोचना आदि से ही भरा होता है। इसमें ललित निबन्ध की निजी आत्मीय अनुभूति की सरसता एव व्यक्तिनिष्ठता नहीं मिलती है। रचना और लेख में भी ऐसी ही बातें हैं। प्रबन्ध, लेख अथवा रचना विचारात्मक, वस्तुनिष्ठ प्रकार की कृतियाँ हैं जबकि ललित निबन्ध निजात्मक, विषयीनिष्ठ प्रकार की कृति है।

इनसभी विधाओं में साम्य दिखने का कारण यह है कि सम्पूर्ण साहित्य साहित्यकार की आत्माभिव्यक्ति ही है। किसी भी साहित्य में विभिन्न कलाओं, सौन्दर्य बोधों, विभिन्न शास्त्रों-इतिहास-दर्शन, विज्ञान आदि का समावेश हो जाता है। लेखक अपने विचारों की अभिव्यक्ति किसी भी साहित्यिक विधा जैसे-कहानी,नाटक,महाकाव्य आदि की लेखन शैली के प्रभाव से ही करता है। कोई भी निबन्धकार किसी विशिष्ट वर्ग या उपवर्ग के निबन्धों की विशेषताओं अथवा स्वरूप को ध्यान में रखकर शायद ही लिखता होगा। वह स्वयं साहित्यिक बन्धनों से मुक्त होता है। इसलिए उसके किसी एक ही निबन्ध में अनेक वर्गों या उपवर्गों के लक्षण मिल जाना स्वाभाविक है। यदि साम्य को अधिक और वैषम्य

को कम महत्व मिला तो किसी भी साहित्यिक विधा को भिन्न एवं स्वतंत्र रूप में देख पाना कठिन होगा। अतः भेदक तत्वों को लक्षित करके ही हम ललित निबन्ध को अन्य निबन्धों तथा प्रायः समान प्रतीत होने वाली अन्य विधाओं से भिन्न स्वतंत्र विधा कह सकते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ. मु.ब.शहा की शैली सिद्धान्त और विवेचन शीर्षक के अन्तर्गत दी गयी मान्यता एक उचित मार्ग दिखला देती है-

'हम रेखाचित्र, रिपोर्ताज, गद्यगीत, संस्मरण आदि को निबन्ध की शैलियाँ नहीं मानते। वे निबन्ध के विभिन्न प्रकार भी नहीं हैं। वे स्वतन्त्र साहित्य- रूप हैं। उनका निबन्ध की विधा के साथ कुछ स्थलों पर साम्य होगा, पर भेद भी काफी है। इसे हमें नहीं भूलना चाहिये।'(65)

ललित निबन्ध निश्चय ही उल्लिखित विभिन्न विधाओं के साथ कई दृष्टियों से साम्य रखता है परन्तु अपनी 'स्वतंत्रता, अपनी रूचि और व्यक्तित्व की महत्ता को कायम रखने की प्रवृत्तित के कारण ललित निबन्धकार इन सबसे भिन्न ललित कृति प्रदान करता है। वह अपने आपको सबसे अधिक इसी विधा में खुलकर अभिव्यक्त कर पाता है। पाठक से सीधा निश्च्छल सम्बन्ध बनाने में ललित निबन्धकार जितना समर्थ है उतना और कोई रचनाकार नहीं।

(4) हिन्दी का ललित निबन्ध–साहित्य

(क) उन्नीसवीं शताब्दी का ललित निबन्ध-साहित्य

आधुनिक हिन्दी ललित निबन्ध साहित्य का जन्म बालकृष्ण भट्ट के निबन्धों से होता है। हिन्दी निबन्धों का जन्म भारतेन्दु से अवश्य हुआ, परन्तु उनके निबन्ध विषयनिष्ठ अधिक हैं। ललित निबन्ध का स्वरुप उनमें नहीं मिलता है।

डॉ. धीरेन्द्र वर्मा एवं लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय आदि आलोचक बालकृष्ण भट्ट को हिन्दी का प्रथम निबन्धकार मानते हैं।*(66) श्री जयनाथ नलिन श्यामसुन्दर दास की मान्यता के विपक्ष में तर्क देते हैं कि प्रतापनारायण मिश्र नहीं बल्कि' भट्टजी को ही हिन्दी का मोनतैङ कहना अधिक सार्थक है।*(67)

वस्तुत हिन्दी ललित निबन्ध का प्रारम्भ 1873 ई. के लगभग हुआ।*(68) उधर मोंतेन के निबन्ध संग्रह 1580 ई. में प्रकाशित हो चुके थे।*(69) अतः स्पष्ट है कि पाश्चात्य-साहित्य में आज ललित निबन्धों का चार सौं वर्षों का इतिहास उपलब्ध है, परन्तु हिन्दी में मात्र सवा सौ वर्षों का इतिहास है।

उन्नीसवीं शताब्दी का ललित निबन्ध-साहित्य प्रारम्भिक अवस्था में बहुत

उन्नत नहीं मिलता है। इस और ध्यान देनेवाले निबन्धकारों की कमी थी। भारतेन्दु का ध्यान इस और गया ही नहीं बालकृष्ण भट्ट ने प्रयास तो किया, परन्तु बहुत अच्छे किस्म के निबन्ध नहीं लिख पाया। उनमें कुछ बीज मात्र मिल जाते हैं। इनके कुछ ललित निबन्धों में प्राप्त लालित्य पर ही संतोष करना पड़ता है। प्रारम्भिक प्रयास होने के नाते इनकी मर्यादा है।

प्रतापनारायण मिश्र की उपलब्धि भी आज के ललित निबन्धों को देखकर कुछ विशेष आकर्षण पैदा नहीं कर पाती है। कारण यह है कि मात्र रोचकता ही मापदण्ड नहीं है। ललित निबन्ध का पूरा स्वरुप झलकना चाहिए। इन्होंने कई ऐसे निबन्धों की रचना की है, जिनमें ललित निबन्धों के तत्व मिलते हैं। यही इनकी उपलब्धि है। कुछ त्रुटियों के साथ विशेषताएँ रखने वाले इनके निबन्धों का परिचय प्राप्त कर लेना चाहिए।

इस प्रकार उन्नीसवीं शताब्दी के दो प्रमुख निबन्धकार हैं, जिनके कुछ निबन्ध ललित निबन्ध की दृष्टि से विचारणीय हैं। इनकी निबन्ध कला की विशेषताओं का संक्षिप्त परिचय ललित निबन्धों का अनुशीलन करने में पर्याप्त सहायक हो सकता है। अतः इनका सामान्य परिचय यथास्थान क्रमशः प्रस्तुत है।

1. बालकृष्ण भट्ट (सन् 1844-1914)

अपने युग के लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार बालकृष्ण भट्ट ने प्रायः सभी प्रकारों के 300 से अधिक निबन्धों की रचना की। इनमें ललित निबन्ध की दृष्टि से निम्नलिखित निबन्ध उल्लेखनीय हैं। ये सभी निबन्ध' हिन्दी प्रदीप' (सन् 1877) में छपे थे।

क) भट्ट निबन्धावली भाग-1' संग्रह के 1. ईश्वर भी क्या ही ठठोल है। 2. दिल बहलाव के जुदे-जुदे तरीके 3. उपदेशों की अलग-अलग बानगी 4. जबान 5. रुचि 6. लौ लगी रहे 7. ढोल के भीतर पोल 8. चढ़ती उमर 9. नये तरह का जनून 10. लोक एषणा 11. खटका

ख)' भट्ट निबन्धावली भाग-2' संग्रह के 1. चढ़ती जवानी की उमंग 2. आदि मध्य अवसान 3. नई वस्तु की खोज

4. बातचीत 5. सोना

ग)' साहित्य-सुमन' संग्रह के- 1. पुरुष अहैरी की स्त्रियाँ अहैर हैं 2. जवानी की उमंगें 3. आँसू

इन निबन्धों के अतिरिक्त अन्य निबन्धों में भी रोचक शैली का स्वाद मिल

सकता है, परन्तु उनमें भाव या विचार प्रधान होते हुए दिखने लगते हैं। शीर्षक से हटकर विषयान्तर में जाने की प्रवृत्ति नहीं मिलती है। कल्पना और यथार्थ, भाव और विचारों विभिन्न विषय और विषयी की प्रमुखता आदि सबकुछ उचित समायोजन से अद्‌भूत आहलाद उत्पन्न करे, ऐसा कोई एक भी निबन्ध हो, सम्भव नहीं हुआ है। उल्लिखित निबन्धों में भी आज के सम्पन्न ललित निबन्धों के बीज मात्र ही मिल सकते हैं। इनका मूल्यांकन प्रारम्भिक प्रयास की दृष्टि से ही हो सकता है। अतः ललित निबन्ध के कुछ आधारभूत तत्वों के समायोजन पर विचार करते हुए किसी निष्कर्ष तक शमन जा सकता है। इनके निबन्धों में व्यक्त विभिन्न विचार सहज आत्मीयता पूर्ण वातावरण में इनकी निजी अंतर्मन की अभिव्यक्ति हैं। कोई गम्भीर दर्शन अथवा ज्ञान का लबादा नहीं है। चयनित तथ्य शुष्क न रहकर रोचक हास-परिहास का सृजन करते हैं। उपदेश या तर्क-वितर्क के जाल में उलझने की प्रवृत्ति कहीं नहीं मिलती है। सामाजिक कुरीतियों का यथार्थ मनोरंजक शैली में लिपटकर पाठक के गले से नीचे उतर आता है। मनोवैज्ञानिक सत्य का उद्‌घाटन करना हो या सामाजिक असंगतियों पर प्रकाश डालने की मनः स्थिति हो निबन्धकार बालकृष्ण भट्ट बहुत निश्छल भाव से उपस्थित हो जाते हैं। मनोभावों की अभिव्यक्ति में कोई संकोच नहीं, यथार्थ में कोई अशिष्टता नहीं, हास्य-व्यंग्य-साथ सम्प्रेषित करना इनकी कला की विशेषता है। उदाहरण के लिए 'पुरूष अहैरी की स्त्रियाँ अहैर हैं' निबन्ध लें-"और शिकारों से इस शिकार में यह बड़ा ही अनूठापन है कि तरूणीजन पहले एक बार दूसरे का अहेर बन जन्म पर्यन्त उस अहैर करने वाले को उलटा अपना शिकार बना लेती हैं और उसके तन, मन, धन, सबका अहैर कर पुरूष-पशु को घरेलू जानवर, क्रीड़ामृग, खेलौना, क्रीतदास या वशंवद तथा ताबेदार कर लेती हैं। नूरजहाँ ने जहाँगीर को जो नाच नचाया, वह मदारी अपने बंदर को क्या नचावेगा। एक बार जहाँगीर का शिकार बन उसने जन्म-भर के लिए दिल्ली के नामी बादशाह को बिल्ली बनाकर रख छोड़ा।"(70)

आडम्बरी व्यक्तित्व वाले निर्दयी मक्कारों के आँसू का यथार्थ यह हैं कि मात्र सहानुभूति प्रदर्शन ही उनका ध्येय होता हैं। बनावटीपन आँसू निबन्ध में द्रष्टव्य है। इन्होंने व्यक्ति और समाज की वास्तविकता प्रस्तुत करते हुए लिखा है-

"कितने ऐसे लोग भी हैं, जिन्हें आँसू नहीं आता। इसलिए जहाँ पर बड़ी

जरूरत आँसू गिराने की हो, तो उनके लिए प्याज का गट्ठा पास रखना बड़ी सहज तरकीब निकाली गई।*(71)

दो पीढ़ियों के बीच का मतभेद चढ़ती उमर 'में तीखा स्वाद लेकर आया है-' नयों की अपनी और अश्रद्धा देख पूराने जो उन्हें अशालीन धृष्ट और गुस्ताख कह बदनाम करें तो यह पुरानों की पूरानी अकिल की खूबी है, यद्यपि वे खुद भी अपनी चढ़ती उमर में ऐसे ही था। लोहै-ताँबे उतर अब बड़े संजीदा और बुजुर्ग बन बैठे, तो अब चढ़ती उमरवालों में नुक्ताचीनी करते सब दोष ही देख झुँझलाते हैं।*(72)

अपने विचारों को रखते हुए पाठक पर उपदेश का बोझ नहीं डालना बल्कि एक आदर्श प्रस्तुत कर देना इनका स्वभाव है। इस सत्य में भी परिहास वृति का परिचय दे देना और मन की जड़ता को जड़ से उखाड़ फेंकना अधिक महत्वपूर्ण एवं उपयोगी कला का परिचायक हो जाता है-

'जो नये वय में शान्त है उसी को शान्त कहना चाहिए। चालीस वर्ष के उपरान्त जब इन्द्रियाँ शिथिल होने लगी और अपने अपने विषयों की और से उपराम को प्राप्त होने लगीं तब तो शान्ति अपने आप हमारा दामन पकड़ लेती हैं। घी ढरक गया, हमें रुखी ही भाती है। बुढ़ापे की शान्ति इसी भाँति है।*(73)

ललित निबन्धों में तुच्छ से तुच्छ विषयों का चयन होता है। यह सत्य भट्ट जी के विषय-चयन की दृष्टि में उद्धाटित है। इन्होंने जिन शीर्षकों का चयन किया है वे सामान्य इतने हैं कि सहज ही किसी का ध्यान चला जाना संभव नहीं है।

उद्धरण प्रियता इनके निबन्धों की विशेषता है। चढ़ती उमर' निबन्ध में ही' प्राप्ते च शोडशेवर्ष सूकरीच अप्सरायते', नवे वयसि यः शान्तः...।' आदि कई उद्धरण संयोजित हैं।

सरस बतकही इनके ललित निबन्धों की जान है। दिल खोलकर पाठक से बातें कर लेना इन्हें खूब आता है। पते की बातें रखते हुए कथा का सा आनन्द प्रदान करना इनके निबन्धों की विशेषता है। उदाहरण के लिए' सोना' निबन्ध द्रष्टव्य हैं।-

'मै समझता हूँ, सोने के समान दूसरा सुख कदाचित न होगा।... इस सोने को आप चाहे जिस अर्थ में लीजिये निद्रा या धन बात वही है फर्क सिर्फ इतना ही है कि रात का सोना मन को मनमाना मिल सकता है धातु वाला

सोना सबके पास उतने ही अन्दाजे से नहीं आता।... हम अपने विचारशील पढ़नेवालों से पुछते हैं सोने के इन दो अर्थों में आप किसे अच्छा समझते हैं। क्यों साहब रातवाला सोना तो अच्छा है न? इसलिए कि यह कंगाल या धनी सबको एक सा मयस्सर है। धनी को मखमली कोच पर जो निद्रा आवेगी कंगाल को वही कंकड़ों पर।*(74)

विषयान्तर में जाकर बात से बात खोलते जाने में इन्हें बहुत अधिक सफलता नहीं मिल पायी है। शीर्षक से एकदम हटकर भटकने की विशेषता कम है। इसके बावजुद' चढ़ती उमर' में हम पाते हैं कि निबन्धकार' उम्र' को लेकर युवा वर्ग की चर्चा करते हुए बुजुर्गों की ढलती उम्र तक गमन करता है।' सोना' निबन्ध में वैद्यशास्त्र, प्राकृतिक वातावरण, राजा-रंक में इसके प्रभाव धातु वाला सोना और' नीद में सोना', मन की पवित्रता, भारतीय शासकों की निष्क्रियता, भारत की लुटाई हुई दैन्य स्थिति तक विचरण करते हैं।

अतः ललित निबन्ध की शैषवावस्था में इसे ही विषयान्तर में जाना समझा जा सकता है। आगे चलकर प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा के ललित निबन्ध' साइकिल' खिलौना' आदि में ऐसा ही विषयान्तर मिलता है।

इनकी शैली में प्रवाह है। विनोद प्रिय व्यंग्य विधान करने वाले भट्ट जी ने विषय पर ही व्यक्तित्व को आच्छादित किया है। इनके निश्छल लेखकीय व्यक्तित्व मे स्पष्टवादिता है। सरल सहज जीवन दर्शन के अनुरागी, राष्ट्र एवं समाज के प्रेमी ह्रदय में धन और मन दोनों का समादर है। सुधार-परिष्कार के लेखक होने के कारण सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं वैयक्तिक विसंगतियों को ढूँढ़कर व्यंग्याघात करना इनके व्यक्तित्व की विशेषताएँ हैं।

इनके ललित निबन्धों की भाषा में अनेकरुपता एवं परिवर्तन देखी जाती है। भाषा सम्बन्धी अनेक त्रुटियाँ हैं। जैसे-शब्दों एवं वाक्यों के अशुद्ध प्रयोग, विरामादि चिन्हों के प्रयोग के प्रति लापरवाही इत्यादि।

परन्तु जिस युग में हिन्दी ने एक नई चाल में चलना प्रारम्भ किया था, उस युग के संघर्ष को झेलते हुए भट्टजी ने जन-सामान्य की शब्दावली से शब्द ग्रहण करके जिस सहजबोधगम्य, प्रवाह पूर्ण आत्मीयता स्थापित करने में सक्षम भाषा प्रयोग का परिचय दिया है। वह वर्त्तमान त्रुटियों के बावजूद प्रशंसनीय है। यह इसलिए कि किसी उपलब्धि का मूल्यांकन उसकी गुणवत्ता एवं मात्रा की अपेक्षा उसकी प्राप्ति हैतु कृत संधर्षों पर आधारित होतो अधिक उचित होगा।

निश्चय ही भट्टजी के ललित निबन्धों में शीर्षक अपना प्रभाव आध्यान्त बनाये रखते हैं। विचार एवं उपदेशक तत्वों का पूरा लोप नहीं हो पाता है। विश्रृंखलता के स्थान पर व्यवस्था ही अधिक है। इनमें सम्पन्न ललित निबन्धों के जनक की सृजन कला, इनमें प्राप्त आधारभूत तत्वों'- व्यक्तित्व, आत्मीयता, सरसता, यथार्थ हास-परिहास आदि के समन्वय ही वरदान है कि आज हमें अदभुत आनन्द प्रदान करनेवाले, लालित्य से भरे उच्च कोटि के ललित निबन्धों का रसास्वादन कर पाने का अवसर मिला है।

इस संदर्भ में डॉ. रामस्वरुप चतुर्वेदी ने संकेत दिया है कि निबन्धों मे बालकृष्ण भट्ट के पांडित और मुहल्ले टोले में प्रचलित भाषा की भंगिमा का एक-दूसरे से मिलाप होता है। ललित निबन्ध की यह खास प्रीतिकर बनावट हजारी प्रसाद द्विवेदी से होती हुई विद्यानिवास मिश्र तक आती है।*(75)

इनके प्रायः सभी ललित निबन्ध उन्नीसवीं शताब्दीं में ही रचे गये हैं। कुछ एक दो वर्षों बाद भी रचे गये होंगे क्योंकि इनकी रचनशीलता 1908 तक ललित निबन्ध के क्षेत्र में देखी जाती है। जो भी हो इन्होंने जो कुछ भी दे सका अभूतपूर्व साहित्य है। ये बीज ही आज हिन्दी ललित निबन्ध-साहित्य को हरा-भरा रखने का श्रेय प्राप्त करते हैं। इनकी महत्ता और इनका मूल्य आंकना असम्भव है।

2. प्रतापनारायण मिश्र (सन् 1856–1894)

प्रतापनारायण मिश्र जी ने अपनी मासिक पत्रिका ब्राह्मण (सन् 1983) के माध्यम से दो सौ से भी अधिक लेख प्रकाशित कराये उनके निबन्ध अब 'प्रतापनारायण ग्रंन्थावली में दिये गये वक्तव्य के अनुसार कुछ लेख ही शेष रह गये हैं, जिन्हें खण्ड दो में प्रकाशित करने की योजना है। खण्ड एक में उपलब्ध निबन्धों में ही लेखक की निबन्ध कला की सारी विशेषताएँ देखी जा सकती हैं। अतः इस ग्रंन्थावली से पूर्व के संकलनों-निबन्धनवनीत' (अब दुष्प्राप्य), प्रताप पीयूष-संपादक श्री रमाकांत त्रिपाठी, प्रताप समीक्षा-संपादक श्री प्रेम नारायण टंडन आदि को देखने की आवश्यकता महसूस नहीं की जाती है।

'प्रतापनारायण ग्रंथावली' भाग एक के निबन्धों मे से ललित निबन्ध की दृष्टि से महत्वपूर्ण रचनाएँ हैं-1. हो ओ ओ ली है। 2. मार 2 कहै जाओ नामर्द तो खुदा ही ने बनाया है। 3. फूटी सहैं आँजी न सहै। 4. घुरे के लत्ता बिनै कनातन का डौल बाँधे 5. टेंढ़ जानि शंका सबकाहू 6. समझदार की मौत

है 7. मुच्छ 8. सोना 9. मुक्ति के भागी 10. भौं 11. नारी 12. ऊँच निवास नीच करतूती 13. खुशामद 14. दाँत 15) लत 16. वृद्ध 17. बात 18. चिंता 19 आप 20. होली है 21. धोखा, इत्यादि।

प्रतापनारायण मिश्र ने इन विभिन्न विषयों को लेकर अपने मन की मौंज में हास-परिहास पूर्ण व्यंग्य विनोदमय वातावरण बनाते हुए अनेक सार्थक बातें प्रस्तुत की है। इन ललित निबन्धों में आत्मीयतापूर्ण वार्तालाप शैली, उछलता हुआ उमंग भरा व्यक्तित्व, जवानी का फक्कड़ और तेज, उक्ति चमत्कार और व्यंग्य की बौछार देखे जा सकते हैं। इन्होंने नित्य प्रति के जीवन से सम्बद्ध सामान्य एवं सर्व परिचित विषयों के बहाने निष्कपट भाव से समाज और राष्ट्र की विसंगतियों का भंड़ा फोड़ किया है।

'हो ओ ओ ली है, ललित निबन्ध में होली के बहाने कहा है-' पर उत्तम तो यह था कि ऐसे 2 कामों में सहाय देते जिन से सचमुच की सुर्खरुई होती। बाल विवाह की कुरीति उठाई होती-ब्रह्मचर्य की फिर से प्रथा चलाई होती, तो देखते कि कैसा रंग आता है। क्या एक दिन अबीर लगवा के हनोमान जी के भाईबन्द बन गए। जहाँ मुंह पर पानी पड़ा कि वही मोची के मोची। आए क्या सब ही और से गए, यह कौन किससे कहै?*(76)

भारतीय नागरिकों की कर्महीनता एवं ऐतिहासिक महान पूर्वजों को स्मरण करें गर्व करनेवाली पीढ़ी पर करारा व्यंग्य करते हुए मिश्रजी ने मार 2 कहै जाओ नामर्द तो खुदा ने ही बनाया है निबन्ध में कहा बस वही बाबा आदम के आगे की बातें लिए बैठे रहो। मेरे बाप ने घी खाया था न मानो मेरा हाथ सूंध लेव'। सो तुम्हारे हाथ में रहा क्या है? वही ढेंखुली के तीन पात। सो भी जो यही लच्छन रहे तो कुछ दिन में देखना कि घर के घान पयार में मिल गये। फिर वही पूरानी शेखी निबुआ लोन लगा के चाटना, सो उससे होना क्या है?*(77)

'फुटी सहैं आंजी न सहैं' ललित निबन्ध में जाति एवं धर्म परिवर्त्तन करनेवाले हिन्दुओं को प्रायश्चित करके पुनः अपना धर्म मानने तथा फिजूलखर्ची से बचने की बात की गई है। इन्होंने श्रीमद् भागवत के द्वितीय स्कंध का उद्ध रण प्रस्तुत करते हुए कहा है।-समझने की बात है, जब असली यवनादिक शुद्ध हो सकते हैं तो नकलियों का तो कहना ही क्या है।

कहने सुनने की जाति बच रही है। सो भी जानते ही हो कि धर्म्म ग्रंथों की तकिया बनाय के देश निद्रा में कुम्भकरण की भाँति खरेहटे भर रहा है और

उधर वाले कमर बाँधे अपनी गाथा बढ़ा रहें हैं। एक दिन होगा कि हिन्दू गूलर के फूल हो जायेंगे तब बड़ा धर्म्म रह जायगा।

(आगे फिजूल खर्चों का विरोध करते हुए)-हाँ. हाँ, तीन दिन की धूम के लिए लाख का घर लीख न करेंगे तो पुरखों की नाक कट जायगी, पर जब लहन दार दुवारे पर पिटवावैंगे, खलक खुदा का मुलक बास्सा का ... तब पुरखों की नाक ऐसी बढ़ैगी कि सरग छू लेगी।*(78)

इस प्रकार अपने निराले आकर्षक मनमौजी व्यक्तित्व की छाप छोड़ते जाना, ि, मिश्रजी की निबन्ध कला की सबसे बड़ी विशेषता है। राष्ट्र प्रेमी प्रतानारायण मिश्र की धारणा (मुक्ति के भागी ललित निबन्ध में विचित्र है-'रहे स्वर्ग के सच्चे पात्र, वह यह हैं-किसी हिन्दी समाचार पत्र के सहायक, बशर्ते कि वार्षिक मूल्य में घुकुर पुकुर न करते हों और पढ़ भी लेते हों। उनको जीते ही जी स्वर्ग न हो तो हम जिम्मेदार। दूसरे देशोपकारी कामों में एक पैसा तथा एक मिनट भी लगावेंगे वे निस्संदेह बैकुण्ठ पावेंगे। इसमें पाव रत्ती का फरक न पड़ेगा। हम से तथा बड़े-2 विद्वानों से तांबै के पत्र पर लिखा लीजिए। तीसरे गौ रक्षा के लिए तन मन धन से उधोग करनेवाले-- मोझ का मजा न उठावें तो वेद शास्त्र पुराण और हम सबको झूठा समझ लेना। चौथे, परमेश्वर के प्रेमानन्द में मस्त रहनेवाले तथा भारत भूमि को सच्चे चित्त से प्यार करनेवाले, एक ऐसा अलौकिक अपरिमित एवं अकथ आनन्द लूटैंगे कि उसके आगे भुक्ति और मुक्ति तृण से भी तुच्छ है।*(79)

ध्यातव्य है कि विद्वानों, धर्मात्माओं, साघु संतों आदि तत्वज्ञानियों की धारणा है कि आध्यात्मिक विकास से ही सच्चे आनन्द एवं मोक्ष की प्राप्ति होती है, परन्तु हिन्दी भाषा के प्रति प्रेम एवं राष्ट्रहित को ही मोक्ष प्राप्ति का साघन बतलाने वाले मिश्र जी ने विचित्रता, रोचकता एवं आश्चर्य उपस्थित कर दिया है। यह विचित्रता आगे के ललित निबन्धकारों में भी देखी जाती है।

अपने ललित निबन्धों में प्रारम्भ में ही कोतूहल उत्पन्न कर देना इनकी निबन्ध-कला की बहुत बड़ी विशेषता है। सर्व सामान्य धारणा है कि समझदार व्यक्ति जीवन को सही ढंग से जीता है। परन्तु ये कहते हैं-'समझदार को मौत है' (पृ0 68) से उद्धरण देते हैं सच है' सब ते भले हैं मूढ जिन्हें न व्यापै जगत गति'। मुच्छ (पृ0 78) में कहते हैं-इस दो अच्छर के शब्द में संसार भर की ऊंच नीच देख पड़ती हैं।'भौं शीर्षक निबन्ध (पृ0 138) की शुरुआत

आत्म व्यंग्य पर करते हैं-'कार्तिक का मास है, चारो और कुत्ते तथा जुवारी भौं भौं भौंकते फिरते हैं, संपादकी की सनक में शीघ्रता के मारे कोई और विषय न सुझा तो यही 'भौं' अर्थात् भूंकने के शब्द को लिख मारा। पर बात ऐसी नहीं है।'लत' शीर्षक (285) में प्रारम्भिक वाक्य का आकर्षण है- 'अहा ! इन दै अखरानऊ में सवाद है कै कुछ बोलते चालत नाय बने। 'वृद्ध' (पृ. 330) में बूढ़ों पर व्यंग्य-' इन महापुरुष का वर्णन करना सहज काम नहीं हैं। और 'आप' शीर्षक निबन्ध (पृ0 569) में- 'तो भला बतलाइए तो आप क्या हैं? आप कहते होंगे, वाह आप तो आप ही हैं। यह कहाँ की आपदा आई? यह भी कोई पूछने का ढंग है?'

संक्षेप में कहना चाहिए कि मिश्र जी के सभी ललित निबन्ध प्रारम्भ में ही जिज्ञासा और कौतूहल उत्पन्न कर देते हैं। पाठकों के साथ आत्मीयता बनाये रखना और सामान्य सी बातों से बात छेड़कर अपने विचारों को सम्प्रेषित करने में वे स्वयं अनायास ही लग जाते हैं। बतकही की यह बानगी तो शायद प्रताप नारायण मिश्र में ही सर्वाधिक मिलती है।

डॉ. कुंवरचन्द्र प्रकाश सिंह एवं डॉ. राजेन्द्र कुमार द्वारा सम्पादित 'निबन्ध श्री' पुस्तक में उचित ही लिखा गया है कि'वास्तव में मिश्रजी हिन्दी के चार्ल्स लैंब हैं। भट्टजी के युग्म के रुप में वे स्टील की याद दिलाते हैं। शैलीगत स्वच्छंदता, हास्य-विनोद प्रियता, आत्मीयता, ग्राम्यता, सजीवता, शैथिल्य एवं भद्दापन और कहीं-कहीं अशिष्टता भी उनके निबन्धों के निजी गुण हैं। निश्चिंत मन से कल्पना की सहज उड़ान भरकर मिश्रजी ने निबन्ध-साहित्य के उस स्थान की पूर्ति की है, जहाँ कम ही निबन्धकार पहुँच सके हैं।[80]

इन विशेषताओं के बावजूद मिश्रजी के ललित निबन्धों में अश्लील व्यंग्य एवं मौज में आकर आपे से बाहर हो जाने जैसे दोष देखे जाते हैं। भले ही ये इनका प्रयोग यथार्थवादी दृष्टि से करते हों, परन्तु यह अच्छे साहित्य के लिए सबसे बड़ा खतरा है। बार-बार वेश्या, रंडी, धर्म पत्नी का हक वेश्याओं को झोंकना, साधु संतों के पर स्त्रीगमन के व्यभिचार को, ढोंग को दर्शाना हो-ओ-ओली है-पृ.5) इनकी ऐसी प्रवृत्ति है जो मन में धृणा ही पैदा करती है। गंगा में चूतड़ धो आना, पराई बहु बेटियां ताकना, आहार निद्रा, भय मैथुन की चर्चा करना : पाठक के मन में अच्छे संस्कार के भाव को आहत करता है। ('समझदार की मौत है : शीर्षक पृ. 68) इनकी गाली-गलौज भरी भाषा-शैली

में भी दुर्गंध आती है।-' लत' शीर्षक ललित निंबध में कोई रीझौ तो वाह 2 खी झौ तोवाह 2, पै कलम राड़ चले बिना मार्नई नाय।' 81 कलम' तक को राड़ कहकर गाली देना भद्दा लगता है। ऐसे कथन प्रायः सीमित हैं अन्यथा हास्य-व्यंग्य के स्थान पर अरुचिकर ही लगते।

प्रताप नारायण मिश्र के ललित निबन्ध विभिन्न विषयों को लेकर लिखे गये हैं। स्वच्छंद मनः स्थिति, संवेदन शीलता, विनोदमयता, आत्मीयता, को कौतूहल, कल्पना, विचार आदि सभी विशेषताएँ है, परन्तु विषयान्तर में कहीं-कहीं थोड़ी कमी खटक सकती है। ऐसे इनकी उद्धरण प्रियता इस कमी को पूरी कर देती है।

बालकृष्ण भट्ट के ललित निबन्धों में जहाँ व्यक्तिगत विचार ही अधिक प्रस्फुटित हुए हैं और खीझ भरा व्यंग्य ही अधिक मिलता है, वहीं प्रतापनारायण मिश्र अधिक गुदगुदी पैदा करने वाली हास्य-व्यंग्य तत्व के धनी हैं। इनमें अंत में उपदेशक विचार देने की या प्रेरणा भरने की प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति आज ललित निबन्धों के लिए मान्य नहीं है। फिर भी अवगुणों की अपेक्षा गुण ही अधिक होने के कारण प्रतापनारायण मिश्र के ललित निबन्ध भारतेन्दु युग के अच्छे ललित निबन्ध बन पड़े हैं।

ख) बीसवीं शताब्दी का ललित निबन्ध-साहित्य

उन्नीसवीं शताब्दी का हिन्दी ललित निबन्ध-साहित्य बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही कुछ त्रुटियों के बावजूद विकास पथ पर अग्रसर होता हुआ मिलता है। इस शताब्दी में स्वतंत्रता से पूर्व कुछ निबन्धकारों ने अल्प संख्या में ललित निबन्ध की कुछ विशेषताओं की कमी होते हुए भी महत्वपूर्ण रचनाएँ प्रस्तुत ही है। काल के संपन्न वैभव के समक्ष इनका अस्तित्व इस अर्थ में है कि ये निबन्ध विकास का पथ प्रशस्त करते हैं। वस्तुत सम्पूर्ण बीसवीं शताब्दी ही ललित निबन्ध को सम्पन्न करती हैं।

अतः ललित निबन्ध साहित्य का अनुशीलन करने के लिए इसे दो उपखण्डों में विभक्त करना सुविधाजनक है।-

अ) स्वतंत्रता पूर्व का हिन्दी ललित निबन्ध-साहित्य

आ) हिन्दी ललित निबन्ध-साहित्य।

अ) स्वतंत्रतापूर्व का हिन्दी ललित निबन्ध साहित्य-प्रस्तुत काल खण्ड के प्रमुख ललित निबन्धकार हैं-

1) बाल मुकुन्द गुप्त-इन्होंने' भारत मित्र' पत्र के माध्यम से अपने चिट्टे और खत दिए जिनमें' एक दुराशा' और' आशीर्वाद' जैसे ललित निबन्ध मिलते हैं।

2) सियाराम शरण गुप्त-इन्होंने 'झूठ-सच' संग्रह के 'घोड़ाशाही' अपूर्ण, निजकवित्त आदि निबन्धों को प्रस्तुत किया।

3) शिवपूजन सहाय-इनके निबन्ध' प्रोपगण्डा-प्रभु का प्रताप' और' मेरी राम कहानी' के अतिरिक्त कई प्रतीकात्मक शैली के निबन्ध' मैं धोबी हूँ' आदि आकर्षण के केन्द्र बनते हैं।

4) गुलाब राय-इनके वैयक्तिक निबन्धों में से' मार्शल लॉ, आधी छोड, एक को धावे,' खट्टे अंगूर' आदि कुछ कमी के बावजूद सामान्य स्तर के ललित निबन्ध हैं।

यहाँ इन निबन्धकारों का सामान्य परिचय देना अपेक्षित जान पड़ता है, क्योंकि आगे अवसर की संभावना नहीं है। अत : संक्षेप में गुणों एवं अवगुणों के साथ परिचय प्रस्तुत है।

1. बालमुकुन्द गुप्त (सन् 1865–1907)

बीसवीं शताब्दी में स्वतंत्रता पूर्व के ललित निबन्धकारों की श्रेणी में प्रथमतः बालमुकुन्दगुप्त के' चिट्टे और शिवशंभू के चिट्टे के निबन्ध और खत' नाम से विख्यात् खुले पत्रों में' एक दुराशा' (1905 ई.) एवं' आशीर्वाद (1907 ई.) विचारनीय हैं।

इन निबन्धों में विचार एवं भाव, कल्पना तथा यथार्थ का सुन्दर समन्वय मिलता है। इनके विचार निजी हैं जो प्रशासक लार्ड कर्जन को सम्बोधित किये गये हैं। भंगेडी-रुप में जहाँ भी अभिव्यक्ति मिलती है, वहीं कल्पना और यथार्थ रागात्मक हो जाती है। उदाहरण के लिए' एक दुराशा' में भंगेड़ी

शिवशम्भु खटिया पर पड़े मौजों के आनन्द में निमग्न हैं और तभी-

कानों में यह मधुर गीत बार-बार अमृत ढालने लगा-चलो चलो आज खेलें होली कन्हैया घर।^(82) परन्तु वसंत में वर्षा की झड़ी देखकर अफसोस होता है। प्रशासन की नयी शोषक प्रवृत्ति में पूरानी प्रिय प्रशासनिक व्यवस्था की याद आ जाती है। ब्रज के राजकुमार एवं ग्वाल बालों की साथ-साथ खेलनेवाली होली और माईलार्ड तथा जनता के बीच की खाई यथार्थ को सामने रखने के लिए विवश करती हैं। इसी यथार्थ पर प्रकाश डाला गया है।

अब राजा प्रजा के मिलकर होली खेलने का समय गया। जो बाकी था, वह काश्मीर नरेश महाराज रणबीर सिंह के साथ समाप्त हो गया। इस देश में उस समय के फिर लौटने की जल्द आशा नहीं।(83)

ऐसे उद्धरणों में ही प्रशासक लार्ड कर्जन की व्यवस्था पर व्यंग्याधात भी मिलता है। बालमुकुन्द गुप्त आक्रोश से भर जाते हैं। इनके लिए जनता का दुख असह्य हो जाता है। इसलिए व्यंग्य के तीर चलाकर जनविरोधी शासक का हदय परिवर्तन करना चाहते हैं।

इनके निबन्धों में विषय से परे जाकर भटकने की स्थिति कम ही बनी है फिर भी विषयान्तर अवश्य हैं। ऐतिहासिक उद्धरण एवं कल्पना के सहारे पर्याप्त रोचकता आ जाती है।

सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिस्थितियों से सम्बद्ध व्यक्तिगत विचार स्वतः स्फुर्त हैं। इन विचारों को नशे की रंगीनी देने की कोशिश है परन्तु विवेक प्रदर्शन के कारण इन निबन्धों में लगता है, शिवशम्भु नशे में कम और होश में अधिक है। इसलिए इन निबन्धों को अच्छे ललित निबन्ध बनने में थोड़ी कसर रह गयी है।

'आशीर्वाद' में भी वही शिवशम्भु शर्मा भंगेडी रुप में आता है। बम भोला' कहकर एक लोटा भर चढ़ा लेने के बावजूद मात्र चारपाई पर लम्बायमान होता है। विचार होश में रहने वाले विद्वान अनुभवी के ही हैं। इसलिए रोचकता बहुत सराहनीय नहीं है। हाँ ! इस नशे में विषयान्तर है। भांग के नशे में शरीर तो स्थिर था परन्तु मस्तिष्क दौड़ रहा था। कभी वायु के झोंके, ओलों की बौछारें, कमी महानगर की अट्टालिकाओं की शून्य पड़ी स्थिति तो कभी सड़क के किनारे मैले चिथड़े लपेटे वायु वर्षा और ओलों का सामना करते हुए लोगों की बदहाली पर 'इसके बाद जेल की बात और प्रसंग पर' वासुदेव व कृष्ण के कष्टों का उद्धरण।(84)

इस निबन्ध में ललित निबन्ध की विशेषताएँ आत्मीयता, निश्छल अभिव्यक्ति, कल्पना, आदि देखने के लिए मिलती हैं, परन्तु वह रोचकता या सरलता'स्व' की अभिव्यक्ति की अपेक्षा राष्ट्रप्रेम में ही अधिक व्यस्त है।

'आशीर्वाद' निबन्ध के अंतिम एक पृष्ठ में उपदेशक प्रवृत्ति है। भाग्य के भरोसे जीवन जीने की बातें हैं। भावुकता के प्रवाह की और संकेत है। उपदेश ललित निबन्धों के लिए स्वीकार्य नहीं है और विचार की बोझिलता तो लालित्य

को ही नष्ट कर देती है। प्रस्तुत निबन्ध में भी बाल मुकुन्द गुप्त की विचार शीलता को कहीं स्थान नहीं मिल सका है। अपने देश की जनता की विवशता उन्हें घेर लेती है। फिर भी इस विचार शीलता में कृष्णावतार का प्रसंग आ जाने के कारण रोचकता आ गयी है।उद्धरण प्रियता और विषयान्तर से बोझिलता कम हुई, क्योंकि क्षण-क्षण परिवर्त्तन लालित्य-वृद्धि का कारण बनता है।

इसमें तत्कालीन गवर्नर जनरल लार्ड कर्जन की शासन-व्यवस्था की विसंगतियों के विरुद्ध ओजपूर्ण व्यंग्य है। यह बाहर से हँसता-हँसाता भले ही दिखे भीतर तो असह्य पीड़ा समझता है। इसमें भारतीय नागरिकों के प्रति उपेक्षा और विरोधी कारनामा करनेवाले माई लार्ड के हृदय परिवर्त्तन के लिए गुप्तजी ने अकबर इलाहाबादी के निर्देश- 'जब तोप मुकाबिल हो तो अखबार निकालो' का अच्छी तरह से पालन किया है।

इन निबन्धों में पाठक इनकी आकर्षक कथन शैली, सहज भाषा और सुहृद मित्र की भाँति एक-दूसरे के शुभचिन्तक होने जैसे विचारों के कारण निबन्धकार से आत्मीय सम्बन्ध बना लेते हैं। निबन्धों का प्रारम्भ भंग की मस्ती में डूबाकर आत्मविस्मृति का आनन्द देने लगता है। भले ही आगे चलकर राष्ट्र की चिन्ता जग जाती है और आत्म विस्मृति भंग हो जाती है।

शिल्प की दृष्टि से कहीं किसी प्रकार का पूर्वाग्रह नहीं मिलता है। स्वच्छन्द मनः स्थिति में व्यक्त निजी विचार भावों से लिपटे हैं। ये एक-दूसरे से असम्बद्ध और अंततः अपूर्ण रचनाएँ हैं। विषय निहायत सामान्य और स्वाभाविक रुप से विभिन्न प्रतिक्रियाओं की उपज हैं। इन निबन्धों के स्वरुप को देखकर डॉ. दयानन्द श्रीवास्तव ने 'इनकी तुलना' मोंतेन' के निबन्धों से की हैं।*(85) डॉ. रामस्वरुप चतुर्वेदी ने तो कहा है कि'बालमुकुन्द गुप्त के अतिरिक्त इस युग के अन्य निबन्धकारों में व्यक्तित्व का वैसा उन्मुक्त स्वरुप देखने को नहीं मिलता।*(86)

अतः उचित ही है कि भारतेन्दु एवं द्विवेदी युग के बीच की कड़ी के रुप में उपस्थित बालमुकुन्द गुप्त ने इन ललित निबन्धों को प्रस्तुत करके ललित निबन्धों से शून्य होते इस काल खण्ड को बचा लिया। आज भी ये निबन्ध' बालमुकुन्द गुप्त निबन्धावली' के अतिरिक्त राजकमल पेपर बैक्स के पॉकेट बुक्स के रुप में भी लोकप्रियता कायम रखे हैं, जिनकी रचना 1903 से 1907 ई. के बीच हुई थी।

2. सियाराम शरण गुप्त (सन् 1895–1963)

बीसवीं शताब्दी में स्वतंत्रता पूर्व के हिन्दी ललित निबन्ध के क्षेत्र में 'झूठ-सच' निबन्ध संग्रह के साथ सियाराम शरण गुप्त का प्रवेश अभूत पूर्व संयोग माना जा सकता है।

कुल अट्ठाइस निबन्धों वाले' झूठ-सच' संग्रह में 1. बहस की बात (सन् 1934) 2. ऋणी (सन् 1934) 3. अपूर्ण (सन् 1934) 4. घोड़ाशाही (सन् 1938) 5. निज कवित्त (सन् 1938) 6. वर की बात (सन्-1938) और 7. कवि की वेश भूषा (सन्-1939) अपनी सरसता, आत्मीयता, निश्छलता एवं स्वाधीन मनः स्थिति की रचना होने के कारण प्रशंसनीय ललित निबन्ध बन पड़े हैं।

इन निबन्धों में निबन्धकार पैना हास्य-व्यंग्य को स्थान न देकर यत्र-तत्र संयत, शालीन एवं मृदु मुस्कान भरे-विनोद भाव भरता है। इनमें प्रतापनारायण की फुहड़ता एवं अश्लीलता से कोसों दूर बालकृष्ण भट्ट की झिझक और बालमुकुन्द गुप्त के ओजपूर्ण विरोधी स्वर से अलग हटकर सियारामशरण गुप्त का व्यक्तित्व निखार पाया है। सादगी, संतोष जैसे आनन्द दायक तत्वों एवं स्थितियों पर विचार करता हुआ इनका निहायत भोलापन, सहज ही अपनत्व बनाने और आकर्षित करने में सफल हुआ है।

इनके ललित निबन्धों में विचार, भाव, कल्पना, सहृदयता, आत्मीयता जैसे ललित निबन्ध के गुण मिलकर मनमोहक एवं आह्लादकारी सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं।

'बहस की बात' ललित निबन्ध में' बहस' को दो व्यक्तियों के बीच से खींचते हुए संसार के अनेक युद्धों तक शमन देना। 'बहस' और 'वाणी' की स्तुति करना आदि विषयान्तर के द्योतक हैं। साथ ही' जीभ की स्तुति जीभ चलाकर ही की जा सकती है, लेखनी चलाकर नहीं।' में शालीन व्यंग्य-विनोद का दर्शन होता है। बहस के विषय में निबन्धकार कहता है-

'संसार के अधिकांश युद्धों का उद्गम इसी के भीतर मिलेगा वे होते ही रहते है। वहाँ आरम्भ में एक कहता है- 'ऐसा' दूसरा तुरन्त उत्तर देता है- ऐसा हर्गिज नहीं। बस तोप और गोले। संसार के इतिहास का सबसे रोचक अध्याय यही है।*(87)

मनुष्य की 'वाणी को ही सबसे बड़ा वैभव बतलाते हुए निबन्धकार ने कहा

है-' मनुष्य में वाणी ही उसका सबसे बड़ा वैभव है। आँख? वह हमसे अधिक गीध में है। कान घोड़े और गधे के भी हमसे बहुत बड़े हैं। कुत्ते की ध्राण-शक्ति की बराबरी तो हम कर ही नहीं सकते। दौड़ने की बात आती है, तब मृग का पशुत्व भूलकर, उसी की काल्पनिक समता में गौरव का अनुभव करना पड़ता है। जो बात कहीं दूसरे ने नहीं मिलती, वह है हमारी वाणी।*(88)

इन पंक्तियों में तथ्य का सम्प्रेषण इस प्रकार किया गया है कि सहज आनन्ददायक छवि बन जाती है। प्रस्तुत निबन्ध में कथा का सा आनन्द भी मिलता है।

'ऋणी' घोड़ाशाही, 'निज कवित्त वर की बात और 'कवि की वेशभूषा' में विषय गौण है मन की तरंग ही प्रधान है। निबन्धकार ने इन निबन्धों में वाकूविलासी प्रवृत्ति का ही परिचय दिया है, परन्तु विचार और भाव भी समानान्तर चलते हैं।

'ऋणी' में विभिन्न प्रकार के ऋणों की चर्चा करते हुए बहुत आत्मीयता पूर्वक कहते हैं कि' कौन चाहता है कि दूसरे का ऋणी न हो? वैसा व्यक्ति अरण्य का तपस्वी हो सकता है, हमारे संसार का नागरिक नहीं।*(89) और विचित्र तर्क प्रस्तुत करते हुए चमड़े का सिक्का चलाने वाले बादशाह, 'ऋण कृत्वा धृतं पिबेत',कहने वाले दार्शनिक को भी अपनी चपेट में ले आते हैं। इनका भ्रमणशील मन पुनः स्वयं पर मुड़कर कहता है कि अकेला-अकेला 'घी' मैं नहीं पी सकता हूँ। इसके बाद बहुत ही सूक्ष्म विचार देते हैं।-

'अतिथि का यथोचित आदर करना चाहिए शास्त्र की इस आशा का आशय यह है कि किसी तरह उसे अपना ऋणी कर लो।*(90)

यहाँ अतिथि सत्कार में भी व्यंग्याधात करके पुनः स्वयं की अनेक गुरुजनों एवं अनुत्तरित पत्रों के प्रेषकों का ऋणी बतलाया है। निबन्धकार के ऋणी होने में भी आत्म परिष्कार की भावना से अधिक आत्मव्यंग्य ही है।

'घोड़ाशाही' इस धोर मशीनी युग की यांत्रिकता, बर्बरता और ह्रदयहीनता पर पैना व्यंग्य कसता हुआ ललित निबन्ध है। लेखक की दृष्टि चौंका देनेवाली बात पर जाती है। आधुनिक यंत्रों से पीसते हुए मानव की स्थिति का भावपूर्ण चित्रण करते हैं। इनके अनुसार हम सभी इन यंत्र रुपी घोड़ों पर सवार नहीं हैं, बल्कि एक-एक घोड़े की शक्ति के लिए हजार-हजार नर-नारी जोत दिये जाते हैं। इन्होंने इंजन को नया घोड़ा और घोड़ेशाही को नया युग बतलाते हुए

लिखा है।'पहले आदमी उसे चलाता था, अब आदमी को स्वयं वही चलाता है। पहले जो सवारी थी, अब वह सवार हो गयी, जो सवार था, वह सवारी हो गया हैं।*(91)

'घोड़ाशाही' में अभिव्यक्त विचार कुछ इस प्रकार के हैं कि यह विचारात्मक निबन्ध लग सकता है, परन्तु ध्यातव्य है, कि अनोखे दृष्टिकोण एवं एक चौंका देने वाली विलक्षणता के कारण इसे ललित निबन्धों की श्रेणी में रखना अनुचित नहीं है। इस निबन्ध में निबन्धकार के हृदय और मस्तिष्क दोनों का समन्वय हुआ है। साथ ही व्यंग्य और कल्पना को भी स्थान मिला है। निबन्धकार विषयान्तर में भी चला जाता है।'

'निज कवित्त' शीर्षक से निहायत आत्मपरक ललित निबन्ध लगता है। निबन्धकार अपनी रचना को हृदय से प्यार करता है, चाहे अन्य आलोचकों की दृष्टि में वह सफल अथवा असफल जैसी भी हो। निबन्धकार की यह वैयक्तिक दृष्टि समष्टिगत दृष्टि बन जाती है क्योंकि इन्होंने कालिदास, भवभूति और तुलसीदास जैसे महाकवियों को भी अपनी रचना से प्रेम करता हुआ दिखलाया है।

सियाराम शरण गुप्तजी ने इस ललित निबन्ध में अपनी रचना मात्र से अपनत्व व्यक्त करते हुए अपने निवास स्थल (अपनी कुटी), अपने गुरुजन, अपनी कुटीर निवासिनी आदि के प्रति अपने मन में भरे श्रद्धाभाव को व्यक्त किया है। अतः कहना चाहिए कि इस निबन्ध में निबन्धकार शीर्षक से बन्धा हुआ नहीं है।

निबन्धकार बहुत ही निश्छलता पूर्वक अपने हृदय की बात कहता है-'हाँ मुझे अपनी रचना अच्छी लगती है। बहुत अच्छी। मैं उसे प्यार करता हूँ, प्रेम करता हूँ। आप इसे दम्भ समझें तो समझ सकते हैं। आपको अधिकार है।*(92)

यथार्थवादी दृष्टिकोण अपनाते हुए कहते हैं-'सब अपने आपको चाहते हैं, इसीलिए संसार में जीवन है। ऐसा न होता तो जलाशय सूख जाते, नीचे के स्रोत् से जल लेकर वे निरन्तर लहराते न रहते। वनस्पतियाँ मुरझा जाती, मिट्टी की खाद से उन्हें अरुचि हो उठती।*(93)

इस प्रकार'निज कवित्त के बहाने जीवों के भीतर अपनी वस्तुओं के प्रति प्रेम भाव रहने के सत्य को उभारने में इन्हें सफलता मिली है। ये इतनी बातें मन की मौज में ही लिखते गये हैं। इनकी अन्तरात्मा की स्वच्छता और सहृदय

मित्र से वार्तालाप करने की शैली में उपस्थित आकर्षण प्रशंसनीय है।

यह निबन्ध उनकी आपबीती नहीं है, बल्कि अपनी रचनाओं के प्रति प्रेमभाव की अभिव्यक्ति है। इनके विचारों में यथार्थ की रोचक अभिव्यक्ति है।

'वर की बात' (सन् 1938) निबन्ध भी भावों के उच्छवास और विचारों के झीने सूत्र के साथ मन मौजी ढंग से रचित निबन्ध है।'वर की बात' में वर को ढाई दिन का बादशाह बतलाते हुए बड़े-बड़े साम्राज्य की अल्पकालिक स्थिति, भोजन में नमक की थोड़ी सी मात्रा को ही महत्वपूर्ण बतलाना, थोड़ा समय होने के कारण ही उत्सव की शोभा बरकरार रहने की बात कहना आदि विषयान्तर के संकेत हैं, जो ललित निबन्ध की खास विशेषता है। शीर्षक के बहाने इन्होंने अनेक विषयों पर भ्रमण कर यह सिद्ध कर दिया है कि अल्पता भी अनेक स्थलों पर अपनी महन्ता रखती है, यदि इस अल्पता का विस्तार हो गया तो यह गुण की अपेक्षा दोष, हितकारी की अपेक्षा अहितकारी ही अधिक होगा।

वर की बात में कथा की सी रोचकता और उत्सुकता बढ़ाने की क्षमता है। मित्रवत वार्तालाप शैली में लिखे इस निबन्ध में सामान्य सी बात को लेकर तुच्छ से तुच्छ विषय पर भी महत्वपूर्ण बातें पिरोने की विलक्षण कला का दर्शन होता है। वर को ढाई दिन का बादशाह बतलाते हुए कितनी सार्थक बात कह दी गई है-

'वे ढाई दिन उसके नवजीवन के बेठन हैं।

इन्हें हटा देने पर ही असली चीज मिल सकेगी।*(94)

'कवि की वेशभूषा' (सन् 1939) में कवि की वेश भूषा निर्धारित करने की निबन्धकार की आकांक्षा तो प्रधान है, परन्तु इस कृत हैतु उनके मन की भटकन विशेष रोचक बन पड़ी है। अपनी आकर्षक रचना शैली एवं कवित्वपूर्ण विवरणों को यत्र-तत्र रखकर चित्त को रमाने में अद्‌भूत सफलता मिली है। सामान्य जन को किसी की वेशभूषा पर सोचना सम्भव नहीं है। परन्तु गुप्तजी ने कवि की वेशभूषा के बहाने अनेक की वेश भूषा पर दृष्टि डाली है- सम्राट, दरबारी, वकील, डाक्टर, अदालत आदि। साथ ही कवि तुलसीदास, सूरदास कालिदास, केशवदास, हरिश्चन्द्र, रत्नाकर, प्रसाद महादेवी तक से उनकी वेश भूषा चीनांशुक के सम्बन्ध में निर्णय लेने चल पड़ते हैं अथवा उनके मत का अनुमान लगाते हैं।

इस निबन्धों में काल्पनिक विचार भी हैं और यथार्थ भी। बुद्धि के साथ

विचार, निच्छलता के साथ आनन्द दायक कथातत्त्व का रस टपकता है। अपने आप को गड़ेरिये वाली पोशाक से भूषित कर देने में उनका आत्म व्यंग्य भी छिपा है।

इस निबन्ध में यत्र-तत्र जो तर्क प्रस्तुत हुए हैं वे भी बोझिल नहीं है, बल्कि निबन्ध को आगे बढ़ाते हैं। हास-परिहास उत्पन्न करते हुए गुप्त जी ने कितना अच्छा लिखा है कि पुरुष और स्त्री कवि दोनों के लिए एक सी वेश भूषा निर्धारित करना कठिन है-

'पहले जमाने में यह समस्या इस रुप में जटिल न थी। उस समय कवियों में स्त्रियाँ दिखाई तो देती है, पर बहुत नहीं। कवि होने की अपेक्षा कविता का विषय होना ही उन्हैं अधिक रुचिकर था। इसी से कवि शब्द का स्त्रीलिंग मुझे एक विख्यात कोष तक में नहीं मिला। कवयित्री शब्द, जान पड़ता है, आज की आवश्यकता की ही पूर्ति है।*(95)

सम्पूर्ण निबन्ध में बतकही चलती है। तुलसीदास जी से मिलने की कल्पना और वार्तालाप अत्यन्त रोचक बन पड़े हैं। सम्पूर्ण निबन्ध रोचक तत्वों से परिपूर्ण है।

एक दिन (1934) प्रारम्भ में मनमौजी किस्मत का लगता है परन्तु इसमें वह लालित्य नहीं है जो एक ललित निबन्ध के लिए अपेक्षित होता है। अतः इसे निर्बन्ध निबन्ध ही कह सकते है। 'छत पर' (सन् 1938), घूँघट में (सन् 1938) मात्र धटना प्रधान निबन्ध ही प्रतीत होते हैं। शुष्कों वृक्ष : (सन् 1938) में निबन्धकार के शुष्क विचार ही हैं।

अपूर्ण (सन् 1934) निसंदेह सरस, रोचक, सौहार्द पूर्ण वातावरण में निबन्धकार के अपूर्ण व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ समझौतावादी दृष्टिकोण के यथार्थ को व्यक्त करता है। अपनी आशावादी जीवन दृष्टि से पाठक को अभिभूत कर देने वाला उनका सभर व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षक है। सरल, निश्च्छल एवं स्वाधीन मनः स्थिति में रचित प्रस्तुत ललित निबन्ध हमारी रागात्मक वृत्ति को स्पन्दित करती है। यह व्यंग्य-विनोद से चमत्कृत करते हुए, मनोमुग्धकारी दृश्यों को दिखलाकर हमारे भीतर की विभिन्न अनुभूतियों को जगा देती है।

वृक्षों में आई नयी कोंपलें, बौराये आम और कोयल की कूक का दृश्य उपस्थित करते हुए गुप्तजी का कविह्रदय जाग उठा है। पक्की सड़क छोड़कर

खेतों के टेढे मेढे रास्ते से गुजरते हुए उनका मन साँझ के मटमैलपन में अर्द्धचन्द्र की फैली चाँदनी की प्रतीक्षा भी नहीं करते हैं। उनकी निजी सोच है।

'यह पूरा विकसित नहीं है तो क्या हुआ, इस अधूरे के भीतर भी उस पूरे का ही प्रकाश है। अधूरे और अधखिले में भी अपना कुछ स्वाद है, इसे कोई अस्वीकार नहीं करता। जिन नववयस्कों की रसना और दन्तपंक्ति में बुढ़ापें का कीट नहीं लग गया, उन्हें कच्चे आम में भी पके रसाल की अपेक्षा अधिक रस मिलता है।*(96)

उपलब्ध का उपभोग करके आनन्दित होने की उनकी निजी सोच विशिष्ट है। वे कवियों की पूर्ण चन्द्र की लालसा पर तीखा व्यंग्य करते हैं। समालोचकों की भी पूर्णचन्द्र की इच्छा पर अंसतोष प्रकट करते हैं। कवि वाल्मीकि के प्रसंग में पहुँचकर समयुग त्रेता तक चले जाते हैं। कृष्ण काव्य से उद्धरण लेते हुए-शोभित कर नवनीत लिए,

घुटरुन चलत, रेनु तन मंडित, मुख दधि लेप किये।^(97) अधपकी फसलों की और नजर डालते हैं। वृक्षों के छोटे झुरमुटों के नीचे हिल मिलकर खेलते लोट-पोट होते बच्चे भरत मिलाप का समाँ बाँधते हैं।

इस प्रकार निबन्धकार का भ्रमणशील मन अपूर्ण की सार्थकता पा लेता है और पूर्ण के प्रति किसी प्रकार कर क्षोभ नहीं प्रकट करता है। यही विलक्षण प्रतिभा विचित्रता उत्पन्न करती है। चूँकि सामान्य धारणा है कि सभी पूर्णता प्राप्त करने के लिए ही प्रयत्नशील होते हैं, अधूरे पन को कोई स्वीकार नहीं करता है, इस अधूरे में किसी को संतोष नहीं, जबकि निबन्धकार कहता है-

'वसन्त का कोई सन्देश सुनने के लिए मैं घर से निकला था। कह नहीं सकता कितना उसने अपने में छिपा रक्खा और कितना मुझे दिया। कुछ हो, जितना मुझे मिल गया है, वह भी मेरे लिए कम नहीं।*(98)

ऐसे ही ललित निबन्धों को देखकर कहा जाता है कि ललित निबन्ध में उपदेश नहीं दिया जाता है, बल्कि ललित निबन्ध में स्वयं उपदेश बन जाता है। अपूर्ण ललित निबन्ध में संतों का सा संतोष, अपूर्णता में भी पूर्णता का आनन्द, जीवन के सार तत्व की प्राप्ति का मार्ग दिखलाया गया है।' पूर्णता' की चाह में भटकते मानव मन को विश्राम मिल जाता है और अद्‌भुत अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती है। क्योंकि इसमें कथा का सा आनन्द है। आत्मीयता, विलक्षणता, विषयान्तर, कल्पना, भाव और विचारों का अनोखा संयोग है। सामान्य सा

शीर्षक के बहाने जीवन के गूढ़ रहस्य का उद्‌घाटन है।

सियाराम शरण गुप्त के ललित निबन्ध कहीं पतों से कानाफूसी करती हुई हवा की तरह कभी तेज तो कभी धीमी गति से वार्तालाप करते चलते हैं। अपनी सरल भाषा-शैली में, व्यंग्य-विनोद से गुदगुदाते हुए चलना, विचारों को भावों के साथ मिश्रित करते जाना उनकी निबन्ध कला की विशेषता है।

सियाराम शरण गुप्त के साहित्य का मूल्यांकन करते हुए परमलाल गुप्त ने उचित ही लिखा है कि उनके निबन्धों में-

'लेखक की आत्मा झाँकती है इसलिए वे आत्मीय सुरस से परिपूर्ण हैं।.. .. उनमें एक हल्कापन है। पाठक शीघ्र ही उनकी और आकृष्ट हो जाता है।.. .. मीठे रस के साथ वह पाठकों को बुद्धि का टॉनिक भी पिलाता जाता है। वह अपने विचारों को इस प्रकार पिरोता चलता है जैसे कोई बाला अपने मृदुल करों से अंतः प्रवृत्ति द्वारा पुष्पों को एक सूत्र में गूँथ देती है।*(99)

निश्चय ही गुप्तजी के ललित निबन्ध आत्मीयता पूर्ण वातावरण की, आनन्ददायक कृति की, आकर्षक समर व्यक्ति से वार्तालाप की, स्वाधीन चिंतन और विचार के रोचक प्रसंगों की सहज प्रवाहमय अभिव्यक्ति पाने की हमारी लालसा पूरी करने में सक्षम हैं। इनका सम्पूर्ण ललित निबन्ध साहित्य बीसवीं शताब्दी के स्वतंत्रता पूर्व के ललित निबन्धों के बीच खिले हुए दिखते हैं। इनके इन ललित निबन्धों में इनकी कला के पारस के स्पर्श से लोहै का यह संसार सोने ही सोने में बदलकर अनमोल हो उठा है।

3. शिवपूजन सहाय (सन् 1893–1963)

द्विवेदी युगीन शिवपूजन सहाय ने सामान्य विषयों को लेकर अनेक रोचक निबन्धों की रचना की। इनके निबन्ध साप्ताहिक' समाज' (काशी), मासिक' आर्यमहिला' (काशी) आदि पत्र-पत्रिकाओं में छपते थे। निबन्ध' कुछ' दो घड़ी' आदि संग्रहों में भी हैं। अब उनके ये निबन्ध' शिवपूजन रचनावली' में उपलब्ध हैं।

शिवपूजन रचनावली (दूसरा खण्ड) में संकलित' दो घड़ी' संग्रह के निबन्ध ललित निबन्ध की दृष्टि से विचारणीय हैं। शेष निबन्ध मनोवैज्ञानिक, उपदेश प्रधान साहित्यिक लेख जीवनी या संस्मरण (खण्ड 4) हैं। इन्होंने अपनी रोचक परिहासपूर्ण शैली में प्रायः सभी निबन्धों को आकर्षक बनाया है, परन्तु विषय प्रधान निबन्धों या मात्र परिहासपूर्ण निबन्धों को ललित निबन्ध की कोटि में

स्थान नहीं दिया जा सकता है।

इस प्रकार शिवपूजन रचनावली' (दूसरा खण्ड) में संकलित' दो घड़ी' संग्रह के निबन्ध-' प्रोपगण्डा-प्रभु का प्रताप और मेरी राम कहानी' अच्छे ललित निबन्ध हैं। यदि प्रतीकात्मकता को दोष न माना जाय तो' मैं हजाम हूँ, मैं धोबी हूँ, मैं रानी हूँ और मैं अन्धी हूँ भी रोचक निबन्ध हैं। परन्तु इन चारो निबन्धों में लेखक अपना आत्मवृत्त काल्पनिक व्यक्तित्व के सहारे ही नहीं बल्कि उसी आधार पर व्यक्त कर दिया है। अतः लेखक की वैयक्तिकता की वास्तविकता इनमें नष्ट हो जाती है। इसलिए उन्हें ललित निबन्ध की कोटि में रखना उचित नहीं है। इनमें हास- परिहास, काल्पनिकता एवं व्यंग्य ही प्रधान है, लेखक का वास्तविक व्यक्तित्व दब गया है।

प्रोपगण्डा-प्रभु का प्रताप (1943 ई.) और मेरी रामकहानी (1943 ई.) ललित निबन्ध माने जा सकते हैं।

प्रोपगंडा'-प्रभु का प्रताप' प्रचार' जैसे सामान्य विषय को शीर्षक बनाकर लिखा गया निबन्ध है। इनमें रोचकता पर्याप्त है। भाषा-शैली की बानगी देखते ही बनती है। बहुत आत्मीयता पूर्वक' प्रचार' के महत्व पर प्रकाश डालते हुए' प्रोपगंडा (प्रचार) करनेवालों पर व्यंग्यबाण छोड़ा गया है।

प्रोपगंडा को सभी क्षेत्रों में दिखलाते हुए शिवपूजन सहाय जी ने लिखा है।-

व्यापारिक क्षेत्र में, इन्ही प्रभुजी की छत्र-छाया में, कुछ लोग जवानी की खैरात बाँट रहे हैं, नपुंसक को साँड़ बना रहे हैं, बाँझ की कोख आबाद कर रहे हैं, सन्तानों की बाढ़ रोकने का बीमा लेकर घुड़दौड़ का मुफ़्त टिकट काट रहे हैं, 'ययाति' को यौवन दान देते हैं और' सम्पाति के पंख उगाते हैं।*(100)

इन्होंने बतलाया है कि 'प्रोपगंडा' का भक्त हुए बिना न कोई चाँदी काट सकता है, न मुँछ पर ताव दे सकता है। हार में जीत का सपना देखना किसी को उलटे छुरे से मूँड़ना, दुनिया की आँखों में धूल झोंकना इसी से सम्भव है। जिसे इसके प्रताप का ज्ञान हो गया, वह दुनिया को अंगुलियों पर नचा सकता है।

इस प्रकार इन्होंने व्यंग्यपूर्ण उक्तियों एवं बातचीत की निजी विशेषताओं से अपने निबन्ध को गरिमामय एवं रोचक बना दिया है।

वस्तुतः किसी विषय या वस्तु के सम्बन्ध में प्रचारकार्य जनता को उस वस्तु से परिचित कराना होता है उस वस्तु के गुण और महत्व पर प्रकाश डालना

ही प्रचारक का काम है। परन्तु वर्त्तमान वाक्प्रपंची युग में प्रचारक किस प्रकार' प्रोपगंडा' का उपयोग करके अपना स्वार्थ सिद्ध करता है।

इस यथार्थ को सहायजी ने व्यक्त कर दिया है। यहाँ व्यक्त निबन्धकार के अपने विचार विलक्षण हैं। इन विचारों में चमत्कृत कर देने की शक्ति है। विचित्रता उत्पन्न हो जाती है। यदि ऐसा नहीं होता तो यह निबन्ध विषयनिष्ठ निबन्ध के वर्ग में चला जाता।

निबन्धकार राजनीतिक, साहित्यिक, धार्मिक, सामाजिक व्यापारिक क्षेत्रों में 'प्रोपगंडा' के बहाने प्रवेश कर जाता है और ढोल के पोल खोल देता है। तुलसीदास के रामचरित मानस के प्रसंग को रखकर परम प्रतापी पुरुषोत्तम श्रीराम से भी अधिक प्रतापी 'प्रोपगंडा' को सिद्ध किया है। रावण से भी अधिक प्रतापी प्रोपगंडा-प्रभु को बतलाकर प्रोपगंडा प्रभु का मन्त्र जपना ही सफलता का मूल मंत्र बतलाया है। इस प्रकार कुछ हद तक विषयांतर में जाने की प्रवृत्ति भी है। साथ ही बढ़-चढ़कर बातें करने में काल्पनिक विचार धारा भी समाहित हो गयी है।

'प्रोगंडा-प्रभु का प्रताप' में जो तथ्य उभारे गये हैं वे मन की मौज में व्यक्त सहाय जी के मौलिक एवं वैयक्तिक विचार हैं।

'मेरी रामकहानी' शीर्षक निबन्ध शीर्षक से मात्र 'आत्मकथा' प्रतीत होता है, परन्तु यह निबन्धकार की आत्मकथा नहीं है। इस ललित निबन्ध में शहरी जीवन की अपेक्षा और ग्रामीण जीवन की उपेक्षा से उपजी मानव जीवन की वर्त्तमान विकट स्थिति का चित्रण है। रुपये-पैसे सुख-सुविधा के सामान, शहर की चकाचौंध, आडम्बरी जीवन शैली पर पैना व्यंग्य है।

'अब सम्पति में वह शक्ति नहीं कि अन्न को क्रीत दास बना रखे। नोटों के गड्ड आँखे बिछाये हुए हैं, अन्त फूटी निगाहों से भी नही ताकता। (101)

शिवपूजन सहाय जी अपनी रामकहानी बतलाते हुए कहते हैं कि उनकी अच्छी कमाई है। सुख-सुविधा की सारी व्यवस्थायें हैं। फिर भी अनाज और दूध जैसे खाद्य पदार्थ अब पर्याप्त प्राप्त नहीं हो पाते हैं, जिससे स्वास्थ्य की हानि हो रही है। तात्पर्य यह कि आज अन्न आदि का अभाव इस शहरी जीवन

के मोह के कारण ही हो रहा है। उनका आत्म व्यंग्य इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है।-

'लोग समझते हैं, नवाब का नाती है। मगर इमान से पूछिए तो अब कंगाल

का काका कहलाने योग्य भी न रह गया। बाहरी टीमटाम चाहे जो हो, भीतरी दशा तो' गज मुक्त कपित्थ' की ही है। पेट में कदन्न है, चेहरा प्रसन्न है। मुखड़े पर हिमानी का लेप है, आँखों में अभावों की झेंप है। ओठों पर पान की लाली है, मगर पेट घी-दूध से खाली है। आँत में सत्तू, दाँत में कलाबत्तू।*(102)

प्रस्तुत निबन्ध में शिवपूजन जी की वक्तृत्व कला की विशेषताएँ, चमत्कार, विचित्र आकर्षण एवं प्रभाव देखा जाता है। इन्होंने वर्त्तमान जीवन शैली की भीतर कमजोरी को अपने भीतर झाँक कर देखा है और अपनी देवीजी की दो वर्षों के अतंराल में ही नवोढ़ा से प्रौढ़ा हुई दुखद स्थिति पर प्रकाश डाला है। उनका यह कहना कितना यथार्थ है कि पाउडर सिर्फ चमडे, को रंग सकता है, जवानी का रंग नहीं निखार सकता। अंगों की कान्ति दिव्य अन्न में है, बाहरी आडम्बर में नहीं।

परन्तु शिवपूजन जी के ये दोनों ललित निबन्ध मनोरंजक एवं व्यंग्यात्मक व्यक्तित्व से सम्पन्न सामान्य ललित निबन्ध ही कहे जायेंगे। इनमें विषयान्तर और मनमौजी पन की अपेक्षा विषय अथवा शीर्षक से जुड़ाव ही अधिक है। अतः उत्कृष्ट ललित निबन्ध कहने में थोड़ा संकोच होता है।

उनके इन निबन्धों की महत्वपूर्ण विशेषता है। उनकी मस्ती और जिंदादिली, जिससे सामान्य विषय भी विशेष मोहक हो उठा है। निजता एवं आत्माभिव्यंजकता इनके निबन्धों में मिलती है।

गुलाबराय—(सन् 1888—1963**)**

अपने युग के प्रतिष्ठित निबन्धकार गुलाबराय के विभिन्न प्रकार के अनेक निबन्धों में से कुछ निबन्ध ललित निबन्ध की दृष्टि से विचारणीय हैं। मेरी असफलताएँ' (सं. प्रथम 1941, पंचम-1960) संग्रह में आत्मकथात्मक तेवर वाले 27 निबन्धों में से 1. मार्शल लॉ, 2-' आधी छोड़ एक को धावे 3खट्टे अंगूर (मेरा जीवन बीमा),हाथ झारि के चले जुआरी' 4 और 5.' मेरी दैनिकी का एक पृष्ठ' मात्र निबन्ध अन्य से कुछ भिन्नता अवश्य रखते हैं। इन निबन्धों में निबन्धकार बीच-बीच में विषयांतर में जाकर बहुत कुछ रोचक ज्ञानवर्द्धक सामग्रियाँ लाता है। हास्य-व्यंग्य का सहारा लेकर मन को आकर्षित करता है। और जिज्ञासा बढ़ाता जाता है। कहीं कथा की तो कहीं आपबीती घटना की ही प्रस्तुति आनन्द प्रदायिनी हो जाती है।

'मार्शल लॉ' निबन्ध निबन्धकार की प्रारम्भिक शिक्षा से जुड़ी हुई घटनाओं

पर आधारित है, परन्तु इसमें कई अन्य बातें भी जरुरी है पढे लिखे घरों मे तो शायद विधारम्भ-संस्कार उतना ही जरुरी है जितना कि विवाह, शायद उससे भी ज्यादा क्योंकि विवाह का बन्धन कुछ दिन टल भी जाता है लेकिन शिक्षालय का जेलखाना तो बच्चे के खेलने खाने के दिनों में ही तैयार कर दिया जाता है। विधानिधि भगवान रामचन्द्र और कलानिधि भगवान कृष्ण को भी गुरु गृह जाकर विधाओं और कलाओं के अध्ययन की खानापुरी करनी पड़ी थी।*(103)

आधी छोड़ एक को धावै' में कृषि, व्यापार और नौकरी आदि अपनाने वाले निबन्धकार की कई भूलों का रोचक वर्णन है। इसमें भी इन विभिन्न व्यवसायों से सम्बन्धित कई रोचक एवं चौंक उत्पन्न कर देने वाली बातें आयी हैं जैसे'जो आज्ञा शब्द जिसकी जिह्वा पर सदा नृत्य करे, जो स्वामि-कार्य को सम्पादन करने में आलस्य न करे, जो अपने दोषों की स्वीकृति में...

उदार से भी कुछ अधिक हो, जो मानापमान के द्वन्द्वों से परे हो, जो विधार्थियों की भाँति स्नान-निद्रा और बकोध्यानी भी रह कर गृहत्यागी भी हो, जो स्वामी के हित के लिए अपने हित की तिलांजली दे सके, जो मार खाने पर रोये नहीं-ऐसे नवगुणों से सम्पन्न महापुरुष ही नौकार का अधिकारी हो सकता है।*(104)

'खट्टे अंगूर' में अपनी जीवन बीमा से सम्बद्ध बातों का जिक्र करते हुए बीमा पॉलिसी की जिन रोचक सैद्धांतिक बातों को बतलाया है वे यथार्थ से हटकर व्यंग्य का रुप ले लेती हैं।

जैसे- 'जहाँ अड़ोस-पड़ोस के लोगों को मेरी परिस्थिति मालूम हुई वहाँ एजेन्टों ने पीछा करना शुरु किया। करीब-करीब उसी लगन से जिससे कि क्वारे ग्रेजुएट को अविवाहित लड़कियों के पिता भाई आदि।... जान का बीमा क्या था, जी का जंजाल हो गया।*(105) जीवन बीमा को जान का बीमा' कहकर चौंक भी उत्पन्न कर देते हैं। जीवन बीमा न होने पर चैन महसुस करना विपरीत धारणा को जन्म देता है। सभी को धन इकट्ठा करने की ललक होती है परन्तु निबन्धकार ने पूत सपूत तो क्यों धन संचय, पूत कपूत तो क्यों धन संचय की धारणा को महत्व देकर जीवन बीमा को खट्टे अंगूर कहा है।

'हाथ झारि के चले जुआरी' में जुआ में ठगे जाने की घटना का ही वर्णन है परन्तु इस यथार्थ के साथ कथा का सरस प्रदान करने और कई ज्ञानवर्द्धक बातें विषयान्तर में जाकर कर देने की क्षमता है।

'मेरी दैनिकी का एक पृष्ठ' एक डायरी ही है परन्तु रोचकता बढ़ाने की दृष्टि से अनेक अपनी मान्यताएँ और विनोदी स्वभाव का परिचय इस प्रकार प्रस्तुत है कि अन्य भी इसमें उसी प्रकार रुचि ले सकते हैं जिस प्रकार ललित निबन्धों में। इसी निबन्ध में अपनी निबन्ध लेखन-कला का परिचय देते हुए इन्होंने कहा है मै उन लोगों मे से हूँ जो अपने निजी निबन्धों के लिए बिना कुछ पढ़े नहीं लिख सकता, वास्तव में मेरे लेखन में एक तिहाई दूसरे से पढ़ा होता है, एक बटा छह उसके आधार से स्वयं प्रकाशित और ध्वनित विचार होते हैं, एक बटा छह सप्रयत्न सोचे हुये विचार रहते हैं और एक तिहाई मलाई के लडडू की बर्फी बना चोरी की छिपानेवाली अभिव्यक्ति की कला रहती है।*(106)

कुछ विषयान्तर में जाकर कुछ बातें कह जाने की ललित निबन्ध की इस विशेषता के साथ सबसे बड़ी चीजें हैं-निबन्धकार का उभरा हुआ व्यक्तित्व और उसकी आत्मपरकता। इन निबन्धों में ये दोनों बातें प्रत्यक्ष हैं। निबन्धकार गुलाब राय संस्कृत और हिन्दी के अध्ययन शील व्यक्तित्व का परिचय देते हैं। ये कुछ अंगरेजी शब्दों को रखकर इस भाषा के ज्ञान का परिचय भी देते हैं। आत्मपरकता तो इतनी है कि इन्हें आत्मकथा की और ही सरक जाने का भय होने लगता है। स्वयं निबन्धकार ने ये दोनों बातें स्पष्ट कर दी हैं।'इस पुस्तक में मेरा आत्मचरित है। इसमें चाहे मेरी असफलताएँ ही क्यों न हों। इसका सम्बन्ध मेरे अहं से है। आत्मन : कामाय सर्वे पिय भवति इस न्याय से इसके महत्व की अधिक उपेक्षा न की जा सकी।^(107) साथ ही इसे वैयक्तिक निबन्धों का संग्रह भी कहा है और माना है कि इस पुस्तक के निबन्ध इनकी शैली का पूर्ण प्रतिनिधित्व करते हैं। साथ ही' दो शब्दों' में यह भी कि'इसमें साहित्यिक हास्य का काफी मसाला मिलेगा। जो लोग इसमें धौल-धप्पे का और हू-हक का हास्य देखना चाहेंगे, उनको शायद निराश होना पड़े।

मैंने आप लोगों के मनोरंजन के लिए स्वयं अपने को ही बलि का बकरा बनाया है। यदि मेरे साथ दो एक सज्जन भी लपेटे में आ गये हों तो उनसे मैं हार्दिक क्षमा चाहता हूँ।*(108)

इनकी बातें इन पाँच निबन्धों में सटीक सिद्ध होती हैं। शेष निबन्धों के विषय में यही कहूँगा कि यह सारा कुछ होते हुए भी विशेष रुप से आत्मचरित अथवा आत्मसंस्मरण हैं जिनमें रोचकता आयी है। मनकी मौज में बहकने की प्रवृत्ति नहीं है। अर्थात् ललित निबन्ध का एक विशेष गुण छूट जाता है।

इतिहास पुराण, तुलसी साहित्य, महाभारत आदि से उद्धरण लेकर कबीर की पंक्ति-'कहैं कबीर अन्त की बारी, हाथ झारि कै चले जुआरी [109] तक उक्त निबन्धों में मिलते हैं जो ललित निबन्धों की उद्धरण प्रियता दर्शाती हैं।

'मेरा जीवन बीमा' में बीमा के विषय में निबन्धकार का मन कल्पना लोक में विचरण करता देखा जाता है तो इस निबन्ध के साथ'मार्शल लॉ' में भी भावभीनी पंक्तियाँ मिल जायेंगी।

शिष्ट व्यंग्य इनकी प्रवृत्ति है विनोदी प्रकृति का दर्शन सर्वत्र होता है। जैसे-'अपनी संस्कृत के पीछे मैंने दो पण्डितों में शास्त्रार्थ करा दिया... जिन पण्डित ने मेरा प्रयोग अशुद्ध बताया था, उन विचारों का स्वर्गवास हो गया है। (हालांकि इस मामले में मेरा जरा भी हाथ नहीं) और जिन्होंने मेरा प्रयोग ठीक बतलाया वे जीवित हैं।*[110]

इस प्रकार स्पष्ट है कि बाबू गुलाबराय के ये निबन्ध ललित निबन्ध ही माने जायेंगे। इनमें प्राप्त ललित निबन्ध की विशेषताएँ आगे चलकर कामता प्रसाद सिंह काम की आत्मपरकता और प्रभाकर माचवे, इन्द्रनाथ मदान आदि के निबन्धों के व्यंग्य विनोद में मिलेंगे। इस प्रकार के निबन्धों में व्यक्तित्व की उपस्थिति होते हुए भी अच्छी सभरता का अभाव रहता है। अतः सामान्य स्तर के ललित निबन्ध ही माने जायेंगे।

इनमें आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र आदि के उत्कृष्ट ललित निबन्धों की ऊँचाई ढूँढना उचित नहीं है। साथ ही यह भी कि इन्हें ललित निबन्ध के घेरे से निकालकर बाहर रखना भी अनुचित ही होगा। अतः ऐसे निबन्धों को सामान्य स्तर के ललित निबन्धों की कोटि में रख देना उपयुक्त है।

बाबु गुलाब राय ने अपने समय में ऐसी सरल रोचक भाषा शैली में सहृदयता पूर्वक पाठकों को आकर्षित किया यही बहुत बड़ी बात है।' स्व' के साथ जुड़ी बहुत सी बातें पाठकों को विश्वास पूर्वक बतलाया है और ऐसी रचनाओं की और आनेवाले कल को प्रेरित किया यह इनका महत्वपूर्ण योगदान है। ऐसे ही निबन्धकारों के प्रयासों का फल है कि आज हमारे समक्ष गुणवत्ता में श्रेष्ठ, विश्व के ललित निबन्धों के समक्ष स्वाभिमान से खड़े होने वाले हिन्दी निबन्ध मिलते हैं।

आ) हिन्दी ललित निबन्ध साहित्य

भारत की स्वतंत्रता के तुरत बाद से ही कई निबन्धकार हिन्दी ललित निबन्धों की रचना करते हुए मिलने लगे। 1947 से लेकर बींसवी सदी के इस अंतिम चरण तक ललित निबन्ध की विशेषताओं से युक्त जो साहित्य संपदा प्राप्त हो सकी है। वह अन्य विधाओं की तुलना में अल्प अवश्य है। इसकी श्री वृद्धि की शुभकामनाएँ और अपेक्षित प्रयास की आवश्यकता है। इसके बावजूद यह प्राप्त उपलब्धि आज हिन्दी ललित निबन्ध के उस प्रभाव की पूर्ति करती है जिसका रोना रोया जाता था। इस प्रशंसनीय प्रयास को देखकर हिन्दी साहित्य के अध्येता, आलोचक आदि सहृदयीजन गर्व कर सकते हैं। सामग्री की मात्रा या संख्या की भूख भले ही बनी रहे गुणवत्ता की प्यास अवश्य तृप्त होगी।

ललित निबन्धों के क्षेत्र में योगदान देनेवाले इस काल खण्ड के निबन्धकारों में प्रमुख हैं-

1. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, जिन्होनें' अशोक के फूल शिरीष के फूल', वसन्त आ गया है,' नाखून क्यों बढ़ते है? आदि कई अच्छे ललित निबन्धों की रचना की है।

2. प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने भी' साईकिल' खिलौना', ताला, कहाँ आ गया,' आदि विविध विषयों पर अच्छे ललित निबन्धों की कई रचनाएँ प्रस्तुत की है।

3. डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने तो इस विधा को अपनाकर आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की ललित निबन्ध कला का मार्ग और अधिक प्रशस्त कर दिया। इन्होंने' छितवन की छाँह',' तुम चंदन हम पानी' मैंने सिल पहुँचाई' भोर का आवाहन',' तमाल के झरोखे से', गाँव का मन' आदि अनेक ललित निबन्धों की रचना की है।

4. धर्मवीर भारती-इनकी टिप्पणियाँ और इनके पत्र ही ललित निबन्ध बनकर' फूल पाती' कैक्टस' ये ठग हटें तो मुसाफिर को रास्ता मिल जाय' आदि शीर्षकों से ललित साहित्य की श्री वृद्धि करते हैं।

5. कुबेरनाथ-इन्होंने भी हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं विद्यानिवास मिश्र की भाँति ललित निबन्ध की रचना करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी है। सनाततननीम'चण्डीथान' रस आखेटक', चित्र-विचित्र,' राधवः करुणों रसः जीव हंस की रात्रि प्रार्थना' निषाद बाँसुरी' आदि कई अच्छे ललित निबन्धों की रचना की है।

6. कामता प्रसाद सिंह' काम' ने निजी अनुभूतियों एवं जीवन की सामान्य

संदर्भों को अपनाकर' मेरा परिचय', मेरी पत्नी' मेरा चुनाव आदि कुछ सामान्य स्तर के ललित निबन्ध प्रदान किये।

7. जैनेन्द्र कुमार निजी विचारों में ही भटकते हुए' आप क्या करते हैं। हरे राम' मेढक आदि कुछ निबन्ध दे सके हैं।

8. प्रभाकर माचवे भी व्यंग्य विनोद पूर्ण अपने साहित्य में ही विषयान्तर में जाकर कुछ पते की बात आत्मीयता पूर्वक बतलाकर' एक कुत्ते की डायरी' छाता', खरगोश के सिंग आदि कुछ ललित निबन्ध प्रदान कर गये हैं।

9. शिव प्रसाद सिंह विषयान्तर में जाकर भी भावात्मक या विचारक और चिन्तक की शैली ही अधिक अपनाते हैं। अतः ललित निबन्ध की ऊँचाई तक नहीं पहुँच पाते हैं।

10. अज्ञेय की रचनाएँ भी प्रभाकर माचवे की रचनाओं की भाँति व्यंग्य को प्रधानता देने के कारण अच्छे ललित निबन्ध की श्रेणी में नहीं आ पाते हैं। इन्हें सामान्य ललित निबन्धों की श्रेणी में रख दिया जा सकता है। ऐसे ही निबन्धकार हैं–

11. डॉ. इन्द्रनाथ मदान और 12. कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर जो अपने आत्मपरक निबन्धों में सभर व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति नहीं करने के कारण ललित निबन्ध की कुछ विशेषताओं के रहते हुए भी अच्छे ललित निबन्ध नहीं दे सके हैं।

इनके अतिरिक्त ठाकुर प्रसाद सिंह कृष्णविहारी मिश्र, विवेकी राय, रमेशचन्द्र, रामेश्वर प्रसाद सिंह श्री कपिल देव नारायण सिंह कपिल आदि कई निबन्धकारों की रचनाओं की और संकेत मिलते हैं, परन्तु व्यंग्य की अधिकता, विषय से जुड़े रहकर रोचक अभिव्यक्ति देने या विचारों में भटकने के साथ कहीं-कहीं प्रतीक के सहारे चलकर मनोरंजन करने की प्रवृत्ति के कारण कोई विशेष उपलब्धि मिलने की संभावना नहीं दिखती है। यादि ऐसे निबन्धकारों की कोई उत्कृष्ट ललित निबन्ध रचना होगी भी तो मेरी दृष्टि से ओझल ही होगी। अतः अवसर मिले तो अन्य ललित निबन्धों के देखने का प्रयास जारी रहना चाहिए। इस क्षेत्र में आज भी प्रयास हो रहे हैं। स्वयं डॉ. विद्यानिवास मिश्र अपने द्वारा सम्पादित होनेवाली मासिक पत्रिका' साहित्य अमृत*(111)* में ललित निबन्धों के लिए एक स्तम्भ सुरक्षित रखते हैं।अक्षत*(112)* जैसी कुछ पत्रिकाएँ ललित निबन्धकारों पर आधारित विशेषांक प्रस्तुत करती हैं।

ग) निष्कर्ष :-

हिन्दी ललित निबन्ध सन् 1873 ई. के बाद बालकृष्ण भट्ट और प्रतापनारायण मिश्र के प्रयासों का फल है। इन्होंने भी प्रयास ही किया था कोई विशेष उपलब्धि नहीं दे सका। इनके निबन्धों में ललित निबन्धों के बीज यत्र-तत्र बिखरे मिलेंगे। पूरी उन्नीसवीं शताब्दी कुछ कमी, कुछ त्रुटियों से युक्त रचना प्रक्रिया में ही समाप्त हो गयी। परन्तु यह प्रयास ही कम महत्वपूर्ण अथवा कम प्रशंसनीय नहीं है। इसी प्रयास ने आज हिन्दी साहित्य में ललित निबन्धों को इतना सम्पन्न होने के लिए प्रेरित किया।

बीसवीं शताब्दी में बालमुकुन्द गुप्त, सियाराम शरण गुप्त, शिवपूजन सहाय, गुलाबराय आदि ने अपने मन की मौज में जो रचनाएँ की उनका लक्ष्य चाहे जो भी हो परन्तु ललित निबन्धों का उत्तरोत्तर विकास होने लगा। स्वतंत्रता के पूर्व तक इन्हीं कुछ निबन्धकारों ने जो कुछ दिया है उससे ही संतोष करना पड़ता है। इनके अतिरिक्त आत्मपरक रचनाएँ कहीं मिल सकती है परन्तु कुछ विशेष ललित निबन्ध होने की संभावना कम है। इनमें भी सियारामशरण गुप्त के निबन्ध ही अन्य निबन्धकारों के निबन्धों से अच्छे ललित निबन्ध बन पड़े हैं। निश्चय ही इनके निबन्ध ललित निबन्ध से गुणवत्ता के आधार पर कहीं कम नहीं हैं। शिवपूजन सहाय प्रतीकात्मक शैली अपनाने के कारण अपने वास्तविक व्यक्तित्व को दबा बैठे अन्यथा उनके निबन्ध भी कम सराहनीय नहीं होते। जो भी हो सर्जकों का यह सृजन पूर्ववर्त्ती प्रयासों से अधिक सफल रहा है।

कालखण्ड अपेक्षित सभर व्यक्तित्व, रोचक तथ्यों तथा ललित निबन्ध के अनुकूल विशिष्ट विभिन्न शैलियों को जन्म देनेवाले शैलीकारों से सम्पन्न दिखता है। अनायास ही यह जिज्ञासा उभर आती है कि जिस ललित निबन्ध विधा में सुप्रसिद्ध साहित्यकार आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का मन रम गया है, उसमें मन की मौज में कितना मोती, कितना मधु कितनी सुगन्ध भर गयी होगी, देखकर ही कुछ कहा जा सकता है। जिसमें प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा की दृष्टि चली गयी उसमें कितना कुछ कहा गया होगा? डॉ. विद्यानिवास मिश्र संसार भर का भ्रमण कर उस ग्रामीण परिवेश को देखकर क्या कह गये होगें? धर्मवीर भारती ने कौन सा रस उड़ेला होगा? कुबेरनाथ राय रस आखेटक में पता नहीं रुप-रस गन्ध को किस प्रकार समेट लिया होगा? जैनेन्द्र कुमार चिन्तन और विचार के कितने और किस रुप में कण छितरा दिये होंगे? प्रभाकर माचवे का पैनाव्यंग्य

क्या विनोद में बदल गया है? इसी प्रकार अन्य निबन्धकारों की इस प्रकार की रचनाओं की गुणवता और मात्रा की सम्पन्नता का अनुशीलन आगे के अध्यायों में करने की इच्छा तीव्र हो जाती है।

यहाँ मात्र इतना ही कहना पर्याप्त है कि हिन्दी ललित निबन्ध का सम्पन्न साहित्य भारत की देन है। अबतक प्राप्त यही रचनाएँ हिन्दी ललित निबन्ध साहित्य का सम्पूर्ण वैभव है। ये ही आगामी रचनाओं के लिए प्रेरणा स्रोत हैं। साहित्यिक रुचि सम्पन्न पाठकों की तृप्ति के साधन है। विश्व की अन्य भाषाओं के निबन्ध-साहित्य के समक्ष प्रतिस्पर्धा हेतु उपस्थित करने के योग्य सम्पति है।

संदर्भ-संकेत

सं.	पुस्तक का नाम	लेखक/सम्पादक	पृ. सं.
1.	हिन्दी निबन्धकार	ले. जयनाथ नलिन	46
2.	समसामयिक हिन्दी निबन्ध	ले. ज्ञानेन्द्र वर्मा	11
3.	निबन्ध मानस सम्पा.	प्रो. नलिन विलोचन शर्मा 'ख'	
4.	हिन्दी के वैयक्तिक निबन्ध	ले. वल्लभ शुक्ल	17
5.	साहित्यिक निबन्ध	सम्पा. डॉ त्रिभुवन सिंह	510
6.	पाश्चात्य काव्य शास्त्र के सिद्धान्त	ले. डॉ. शान्ति स्वरुप गुप्त	414
7.	समसामयिक हिन्दी निबन्ध	ज्ञानेन्द्र वर्मा	20
8.	हिन्दी निबन्धकार	ले. जयनाथ नलिन	18
9.	...	...	27
10.	साहित्य रुपशास्त्रीय विश्लेषण	ले. ज्ञा. का गायकवाड़	117
11.	आ. रामचन्द्र शुक्ल और चिन्तामणि	ले. राजनाथ शर्मा	50
12.	हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास	ले. रामस्वरुप चतुर्वेदी	301
13.	जोग लिखि	ले. अज्ञेय	105
14.	अक्षत (पत्रिका) वसंत	सम्पा. डॉ. श्रीराम परिहार	90
15.	...	...	97
16.	हिन्दी साहित्य कोश भाग-1	प्रधान सम्पा. धीरेन्द्र वर्मा	742
17.	अक्षत (पत्रिका) वसंत शरद-98	सम्पा. डॉ. श्रीराम परिहार	97
18.	...	...	89
19.	हिन्दी निबन्धकार	ले. जयनाथ नलिन	8
20.	...	...	46
21.	...	...	46
22.	समसामयिक हिन्दी निबन्ध	ले. ज्ञानेन्द्र वर्मा	14
23.	...	...	15

24.	निबन्ध सिद्धान्त और प्रयोग	ले. डॉ. हरिहरनाथ द्विवेदी	32
25.	...	...	32
26.	...	...	37
27.	निबन्ध सिद्धान्त और प्रयोग	ले. डॉ. हरिहरनाथ द्विवेदी	36
28.	हिन्दी निबन्धकार	ले. जयनाथ नलिन	10
29.	समसामयिक हिन्दी निबन्ध	ले. ज्ञानेन्द्र वर्मा	20
30.	...	...	20
31.	साहित्यिक निबन्ध	सम्पा. त्रिभुवन सिंह	510
32.	हिन्दी निबन्ध	ले. प्रभाकर माचवे	10
33.	समीक्षायण	ले. प्रो. कन्हैयालाल सहज	114
34.	अक्षत (पत्रिका) वसंत शरद 98	सम्पा. डॉ. श्री राम परिहार	98
35.	निषाद बाँसुरी	ले. कुबेरनाथ राय	246
36.	...	...	244
37.	हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास	ले. रामस्वरुप चतुर्वेदी	181
38.	निबन्ध पूर्णिमा	सम्पा. डॉ ब्रजकिशोर मिश्र	148
39.	हिन्दी निबन्धों का शैलीगत अध्ययन	ले. डॉ. मु. ब. शहा	57
40.	तुम चन्दन हम पानी	ले. विद्यानिवास मिश्र	135
41.	अशोक के फूल	ले. हजारी प्र. द्विवेदी	5
42.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	ले. रामचन्द्र शुक्ल	345
43.	साहित्यिक निबन्ध	सम्पा. डॉ. त्रिभुवन सिंह	1118
44.	कल्पलता	ले. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	46
45.	...	...	17
46.	...	...	23
47.	समसामयिक हिन्दी निबन्ध	ले. ज्ञानेन्द्र वर्मा	21
48.	काव्य दर्पण	ले. पं. रामदहिन मिश्र	39
49.	हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली-9	सम्पा. मुकुन्द द्विवेदी	36

50.	गाँव का मन	ले. विद्यानिवास मिश्र	52
51.	आँगन का पंछी और बनजारा मन	ले.	84
52.	हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली खण्ड 9	सम्पा. मुकुन्द द्विवेदी	32
53.	छितवन की छाँह	ले. विद्यानिवास मिश्र	130
54.	कल्पलता	ले. हजारी प्रसाद द्विवेदी	5,23
55.	गाँव का मन	ले.विद्यानिवास मिश्र	9,85
56.	समसामयिक हिन्दी साहित्य सम्पा.	डॉ. हरिवंश राय बच्चन	261
57.	अशोक के फूल	ले. हजारी प्रसाद द्विवेदी	57
58.	हिन्दी के वैयक्तिक निबन्ध	ले. श्री वल्लभ शुक्ल	31
59.	हिन्दी निबन्ध	ले. प्रभाकर माचवे	14
60.	हिन्दी के वैयक्तिक निबन्ध	ले. श्री वल्लभ शुक्ल	63
61.	हिन्दी निबन्धकार	ले.जयनाथ नलिन	39
62.	हिन्दी निबन्ध का विकास	ले. डॉ. ओंकार नाथ शर्मा	73
63.	शांतिप्रिय द्विवेदी जीवन और साहित्य	ले. डॉ. मालती रस्तौगी	168
64.	आइना बोल उठा	ले. प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा	14
65.	हिन्दी निबन्धों का शैलीगत अध्ययन	ले. डॉ. मु. ब. शहा	91
66.	...	...	95
67.	हिन्दी निबन्धकर	ले. जयनाथ नलिन	76
68.	प्रतिनिधि हिन्दी निबन्धकार	ले. विभूराम मिश्र	9
69.	हिन्दी निबन्धकार	ले. जयनाथ नलिन	40
70.	साहित्य सुमन	सम्पा. श्री दुलारे लाल	41
71.	...	...	136
72.	भट्ट निबन्धावली भाग-पहला	सम्पा. द्वय-देवी दत्त शुक्ल, धनजय भट्ट 'सरल'	76

73. …	…	78
74. 'भाग दूसरा	सम्पा. धनजय भट्ट'सरल'	139
75. हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास	ले. रामस्वरुप चतुर्वेदी	106
76. प्रतापनारायण ग्रन्थावली'खण्ड-1'	सम्पा. विजयशंकर मल्ल	3
77. …	…	22
78. …	…	42
79. …	…	41
80. निबन्ध श्री	सम्पा. डॉ. कुँवरचन्द्र प्र. सिंह, एवं डॉ. राजेन्द्र कुमार	30
81. प्रतापनारायण ग्रन्थावली खण्ड-1	सम्पा. विजय शंकर मल्ल	286
82. शिवशम्भु के चिट्ठे	ले. बालमुकुन्द गुप्त	39
83. शिवशम्भु के चिट्ठे	ले. बालमुकुन्द गुप्त	45
84. …	…	72
85. बालमुकुन्द गुप्त : एक मूल्यांकन	सम्पा. कल्याणमल लोढ़ा	136
	विष्णुकांत शास्त्री	136
86. समसामयिक हिन्दी साहित्य	सम्पा. समिति डॉ. हरिवंशराय बच्चन इत्यादि	262
87. झूठ-सच ले. एवं सम्पा. श्री सियारामशरण गुप्त		12
88. …	…	14
89. …	…	24
90. झूठ-सच ले. एवं सम्पा. श्री सियाराम शरण गुप्त		25
91. …	…	131
92. …	…	155
93. …	…	157
94. …	…	166
95. …	…	197
96. …	…	47

97. 50
98. 52
99. सियाराम शरण गुप्त का साहित्य एक मूल्यांकन ले. परमलाल गुप्त 127
100. शिव पूजन रचनावली खण्ड-2 ले. एवं सम्पा.शिवपूजन सहाय 127
101. 129
102. 130
103. मेरी असफलताएँ ले. गुलाब राय 6
104. 105
105. 112
106. 168
107. 1
108. 2
109. 165
110. 11
111. साहित्य अमृत (पत्रिका) जून 1998 सम्पा. डॉ. विद्यानिवास मिश्र 25
112. 'अक्षत' (पत्रिका) सम्पा. श्रीराम परिहार सम्पूर्ण वसंत, शरद 98

द्वितीय अध्याय

निबन्धकार

सामान्य परिचय :–

प्रस्तुत अध्याय में कुछ प्रमुख निबन्धकारों का सामान्य परिचय ललित निबन्धकार की दृष्टि से प्रस्तुत किया जा रहा है। इसमें उनके ललित निबन्धों और उनकी कलागत विशेषताओं पर प्रकाश डालने का प्रयास किया जाएगा। यथा सम्भव तुलनात्मक दृष्टिकोण से मूल्यांकन भी किया जायेगा।

1. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी (सन् 1907–1979)

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का निबन्ध-साहित्य विविधता एवं विपुलता की दृष्टि से सम्पन्न है। कल्पलता, अशोक के फूल,कुटज, आदि कई संग्रहों में इनके निबन्ध संग्रहित हैं। अब हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली के भाग-9 एवं 10 में ये सभी प्रकार के निबन्ध उपलब्ध हैं।

ललित निबन्ध की दृष्टि से प्रस्तुत ग्रन्थावली भाग-9 के निम्नलिखित निबन्ध उल्लेखनीय हैं-

1. अशोक के फूल 2. शिरीष के फूल 3. कुटज 4. देवदारु 5 आम फिर बौरा गये 6 वसंत आ गया है 7. मेरी जन्मभूमि 8. नाखून क्यों बढ़ते हैं 9. ठाकुरजी की बटोर 10. प्रायश्चित की घड़ी 11. क्या निराश हुआ जाय? 12. पण्डितों को पंचायत 13.जबकि दिमाग खाली है। और ग्रन्थावली के भाग-10 के निबन्ध 14. आपने मेरी रचना पढ़ी? 15 समालोचक की डाक।

इन्हीं ललित निबन्धों के साथ उपस्थित होकर आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने हिन्दी ललित निबन्ध साहित्य को अभूतपूर्व लालित्य पूर्ण बना दिया। इनके प्रयास ने हिन्दी निबन्ध के क्षेत्र में ललित शब्द को कितना सम्पन्न कर दिया कि कई समर्थ निबन्धकार इस क्षेत्र में कार्य करने लगे।

इनके ललित निबन्ध भावों एवं विचारों का सुन्दर समन्वय प्रस्तुत करते हैं। धर्म-दर्शन, इतिहास-पुराण अतीत-वर्त्तमान, संस्कृति के विभिन्न पहलू एवं जीवन के विभिन्न दर्शन इनकी रागात्मक अभिव्यक्ति कला में समन्वित होकर कहीं बोझिल नहीं रह पाते हैं बल्कि अधिक सहज सुपाच्य हो जाते हैं। ये ज्ञान का विस्तृत भंडार होकर भी इतने ललित हो उठते हैं कि पाठक अंत में कह उठता है' वाह ! हमने आज तक ऐसी रचना का आस्वादन किया नहीं था।

ऐसी चीज देखी नहीं थी।

द्विवेदी जी की इस सफलता का मूलभूत कारण यह है कि इन्होंने अपना सारा पांडित्य, अपनी सारी बुद्धि एवं सारे तर्कों को मानव जीवन के साथ इस प्रकार जोड़ दिया है कि वे पाठक के जीवन से सम्बद्ध और अति प्रिय लगने लगते हैं। इनके अनुसार ही-'पांडित्य भी एक बोझ है जितनी ही भारी होती है, उतनी ही तेजी से डुबाती है। जब वह जीवन का अंग बन जाती है तो सहज हो जाती है। तब वह बोझ नहीं रहती। वह उस अवस्था में उदास भी नहीं करती।*(1)

इनकी व्यापक विचारशीलता में अन्य ललित निबन्धकारों के समान मात्र ऊपरी चेतन मन के विचार नहीं होते हैं। द्विवेदीजी अशोक, शिरीष के फूलों से आकर्षित होकर कुटज और देवदारु जैसे वृक्ष से होकर भारतीय सभ्यता संस्कृति, आचार- विचार की जड़ तक पहुँचते हैं। उदाहरण के लिए' अशोक के फूल' में लाल-लाल मोहक पुष्पों को देखकर कन्दर्प देवता के तूणीर और कालिदास के काव्य में इसकी मिली प्रतिष्ठा तक दृष्टि डालते हैं।' इन्हें अशोक के फूल' कालिदास के काव्य में सुंदरियों के चरणों के मृदु आधात से फूलता, कोमल कपोलों पर कर्णावतंस के रुप में झूलता और नील अलकों की शोभा को सौ गुना बढ़ाता दिखता है। इन्होंने भारतवर्ष में आये असूर आर्य, शक, हूण, नाग, यक्ष आदि जातियों का उल्लेख करके कहा है-'न जाने कितनी मानव जाति यहाँ आई और आज के भारतवर्ष के बनाने में अपना हाथ लगा गई।

जिसे हम हिंदू रीति-नीति कहते हैं, वह अनेक आर्य और आर्येत्तर उपादानों का अद्‌भूत मिश्रण है। एक-एक पशु एक-एक पक्षी न जाने कितनी स्मृतियों का भार लेकर हमारे सामने उपस्थित है। अशोक की भी अपनी स्मृति-परंपरा है। आम की भी है, बकुल की भी, चंपे की भी है। सब क्या हमें मालूम है? जितना मालूम है, उसी का अर्थ क्या स्पष्ट है?*(2)

इसी अशोक के फूल की स्मृति तथा परंपरा की जड़ तक पहुँचने की मौज में भारतीय सभ्यता संस्कृति के विभिन्न पड़ावों तक भ्रमण करता हुआ निबन्धकार अपूर्णता का एहसास करता है-'मेरा मन प्राचीन काल के कुझकटिकाच्छन्न आकाश में दूर तक उड़ना चाहता है। हाय, पंख कहाँ है।*(3)

अर्थात् निबन्धकार महामानव समुद्र 'भारतवर्ष' के इतिहास में और अधिक गोता लगना चाहता है। उसने अपने सामर्थ्य के अनुरुप जहाँ तक गोता खोरी

की है, जिन मोतीकणों को लाकर' अशोक के फूल' निबन्ध में रखा है, वे भी क्या कम हैं। इस निबन्ध से हमें अपनी पूर्व पीढियों की संघर्षशीलता एवं मानव की जीने की प्रबल इच्छा का ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

इसी प्रकार इन्होंने प्रायश्चित की घड़ी' निबन्ध में जन-जागृति का संकेत देते हुए निम्न समझी जानेवाली विभिन्न जातियों-समुदायों का इतिहास प्रस्तुत किसा है तो 'मेरी जन्मभूमि' निबन्ध मे अपने गाँव में रहनेवाली जातियों की महानता को प्रदर्शित किया है। (अशोक के फूल संग्रह)

विषय चयन की दृष्टि से विविधता युक्त सूक्ष्म सामान्य अथवा तुच्छ समझी जानेवाली कोई भी सामग्री आचार्य द्विवेदी के लिए प्रिय बन जाती है। इनके ललित निबन्धों के शीर्षकों की विविधता एवं निजी स्वरुप देखकर ही इस बात से सहमत हुआ जा सकता है। इन्होंने स्वयं' मेरी जन्मभूमि' से स्वीकार भी किया है-

'मेरे अन्दर एक गुण है, जिसे आप बालू में से तेल निकालना समझ सकते हैं। मैं बालू में से तेल निकालने का सचमुच ही प्रयत्न करता हूँ, बशर्ते कि वह बालू मुझे अच्छी लग जाय।*(4)

आचार्य द्विवेदी के ललित निबन्धों में रेत निकालने की यह कला प्रशंसनीय है। क्योंकि इन्होंने इन निबन्धों में अपने उस व्यक्तित्व को पूर्ण विकसित पुष्प की तरह खिला दिया है, जिसमें कालिदास की सहृदयता, कबीर की निश्छलता तथा कवीन्द्र रवीन्द्र की व्यापक सौन्दर्य-चेतना सहज ही झलक उठती है। ये ललित निबन्ध गाँधी जी की मानवतावादी दृष्टि एवं भारतीय सभ्यता-संस्कृति की विशेषताओं के उत्तम उदाहरण बन उठे हैं। इनके सभी ललित निबन्ध इनके सभर व्यक्तित्व की लालित्यपूर्ण अभिव्यक्ति हैं।

इनके ललित निबन्धों में तथ्य तो तथ्य हैं ही उसमें निहित भाव उसकी ऐसी महक है जो पाठक के चेतन मन को प्रभावित किये बिना नहीं रहती है। मार्मिक काव्यात्मक प्रसंग छिड़ते ही कुछ दूर तक ये भाव विभोर हो उठते हैं। लगता है मानो अब भावों की वेगवती मंदाकिनी प्रवाहित हो रही है। परन्तु यह भाव धारा पुनः संयत हो जाती है।' अशोक के फूल' हो या' आम फिर बौरा गये','वसंत आ गया' हो ' पंडितों की पंचायत' कई निबन्धों में विभिन्न स्तरों में भावात्मकता मिलती है। आम्र मंजरी के कोरक को देखकर उल्लसित भावधारा' आम फिर बौरा गये' निबन्ध में द्रष्टव्य है-अहा कैसा मनोहर कोरक है इस

आताम्रहरित पाण्डुर की।अभी सुगन्धि नहीं फैली है किन्तु देर भी नहीं है।(5)

'हिन्दू-मुस्लिम के मतभेदों को देखकर' ठाकुरजी की बटोर' निबन्ध में निबन्धकार हाय-हाय करता है-'हाय हिन्दू और हाय मुसलमान ! आठ वर्ष के निरन्तर संघर्ष के बाद, एक-दूसरे से इतने नजदीक रहकर भी, तुमने अपनी एक संस्कृति न बनायी।^(6)

आचार्य द्विवेदी मन की मौज में कल्पना लोक में उड़ान भरते हुए यदि कहीं जाते हैं तो मानव जीवन के भविष्य की कल्पना और अपने देश की आनेवाली स्थितियों तक। भारतीय संस्कृति के अतीत में तो कल्पना से अधिक इतिहास है। इसलिए इनकी सोच को कल्पना का विस्तृत वितान नहीं मिल पाता है। इनकी दृष्टि अधिकांशतः खोये हुए अतीत में ही उलझी रहती है। फिर भी कई स्थलों में प्रसंग वश कल्पना के माध्यम से तथ्य को रोचक बना डालते हैं। जैसे लेखक 'देवदारु' निबन्ध में देवदारु को सम्बोधित करते हुए 'फक्कड़ हो तो अपने लिए हो बाबा, मनुष्य के लिए तो निरे काठ हो, दया नहीं माया नहीं, मोह नहीं, आसक्ति नहीं निरे काठ। ऐसों से तो देवता ही भला ! कहीं-न-कहीं उसमें दिल तो है। मगर यह भी कैसे कहा जाये। देवता के दिल होता तो लाज शरम भी होती...।*(7)

ऐसे ही प्रसंगों के साथ निबन्धकार कहीं इतिहास पुराण की कथा कहने के लिए उतारु होता है तो कहीं अपने ग्रामीण जीवन की कथा में व्यस्त हो जाता है। ' देवदारु' निबन्ध में ही अपने गाँव के पंडितजी से सम्बद्ध कथा कहते हुए इन्होंने लिखा है-'हमारे गाँव में एक पंडितजी थे। अपने को महान विद्वान मानते थे। विधा उनके मुँह से फचाफच निकला करती थी। शास्त्रार्थ में वे बड़े-बड़े दिग्गजों को हरा देते थे। विधा के जोर से नहीं फचाफच के आधात से।^(8)

आत्मापरकता इनके निबन्धों में सर्वत्र दिखाई पड़ती है। ये अपनी निजी गतिविधियों, कल्पनाओं और यथार्थ बोध की बात कहते हैं। 'कुटज' में गिरिकूट विहारी' के नाम की खोज में इनका अध्ययनशील मन संस्कृत साहित्य जगत में दूर-दूरतक उड़ने लगता है तो 'देवदारु' को देखकर कहने लगता है।-'जब मैं कहता हूँ कि देवदारु सुन्दर है तो सुननेवाले सुन्दर का एक सामान्य अर्थ ही लेते है।*(9)* क्या निराश हुआ जाय' निबन्ध में अपनी हार्दिक स्थिति का परिचय इन शब्दों में देते हैं-'मेरा मन कभी-कभी बैठ जाता है। समाचार पत्रों में ठगी डकैती, चोरी तस्करी और भ्रष्टाचार के समाचार भरे रहते हैं।*(10)

इन्होंने इसी निबन्ध में आत्मकथा सुनाते हुए लिखा है एक बार मैं बस में यात्रा कर रहा था। मेरे साथ मेरी पत्नी और तीन बच्चे भी थे' बस में कुछ खराबी थी, रुक रुककर चलती थी...।*(11)

कहीं आँखों देखी स्थिति तो कहीं अपनी हिस्सेदारी, बिलकुल अपने जीवन से सम्बद्ध बातों को ही अपने ललित निबन्धों में स्थान देना इनकी कला की सफलता का रहस्य है। 'पंडितों की पंचायत में एकादशीवाले झगड़े की सभा में उपस्थित हो जाते हैं और कहते हैं-'मैं जिस समय यह चिन्ता कर रहा था, उसी समय पण्डित लोग निर्णय सिन्धु और धर्म-सिन्धु के पन्ने पलट रहे थे। नाना प्रसिद्ध और अप्रसिद्ध ऋषियों पुराणों और संहिताओं के वचन पढ़े जा रहे थे और उनकी संगतियाँ लगायी जा रही थी।*(12) इस प्रकार 'मेरी जन्मभूमि' हो या जबकि दिमाग खाली है' किसी भी ललित निबन्ध में इन्होंने कह दिया है- मेरी अवस्था आज ऐसी ही है।*(13)

आत्मीयता पूर्वक वार्तालाप करते हुए तरंग आवेग पूर्ण शैली में विश्रृंखलित विषय युक्त ललित निबन्ध रचने में इन्हें पूर्ण सफलता मिली है। इनके ललित निबन्ध व्यंग्य-विनोद की सुखद, शिष्ट परन्तु भीतर से हृदय का उपचार करते हुए मिलते हैं। इनका आत्माव्यंग्य देखा जाय-'ऐसा लगता है कि ऊपरवाले देवदारु वृक्षों को फुनगी पर से लुढ़का दिया जाऊँ तो फुनगगियों पर ही लोटता हुआ हजारों फीट नीचे तक जा सकता हूँ, अनायास ! पर ऐसा लगता ही भर है। भगवान न करे कोई सचमुच लुढ़का दे। हड्डी-पसली चूर हो जायेगी। जो कुछ कुछ लगता है वह सचमुच हो जाये तो अनर्थ हो जाये।*14 इन्होंने वसंत आ गया है 'निबन्ध में आत्म व्यंग्य की तो सीमा ही पार कर दी है। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी को रागात्मक भावनाओं और, अनुभूतियों की व्यापकता एवं ज्ञान के विस्तार से हिन्दी साहित्य का प्रत्येक अध्येता परिचित है, फिर भी इन्होंने व्यंग्य किया है-' कवि के आश्रम में रहता हूँ। नितांत ठूँठ नहीं हूँ, पर भाग्य प्रसन्न न हो तो कोई क्या करे।... पढ़ता लिखता हूँ। यही पेशा है। सो दुनिया के बारे में पोथियों के सहारे ही थोड़ा बहुत जानता हूँ। पढ़ा हूँ, हिन्दुस्तान के जवानों में कोई उमंग नहीं है, इत्यादि।*14 क क्या आपने मेरी रचना पढ़ी है में साहित्यकारों से सम्बन्धित व्यंग्य की मार से तो बडे-बड़े नामी-गिरामी साहित्यकार और आलोचक भी उनके सामने घुटने टेकते दिखते हैं।- निबन्धकार से जब कोई रचनाकार पूछ बैठता है कि आपने मेरी अमुक रचना तो पढ़ी

होगी? तब इनके जी आता है कि कह दूँ-डॉ के पास जाओ तुम्हारे दिमाग में कुछ दोष है।*(15) आलोचकों पर करारा व्यंग्य करते हुए लिखा है'मैं निश्चिय जानता हूँ कि रहस्यवादी आलोचना लिखना कुछ हँसी-खेल नहीं है। पुस्तक को छुआ तक नहीं और आलोचना ऐसी लिखी कि त्रैलोक्य विकम्पित। यह क्या कम साधना है?' पढ़नेवाला आलोचना नहीं करता आलोचना करने वाला पढ़ता नहीं-यही तो उचित नाता है।*(16)

विनोद प्रियता के सम्बन्ध में द्विवेदी जी की स्पष्ट धारणा है कि यह ऐसा रसायन है जो मनुष्य की प्रकृति ही बदल डालता है। एक फिलॉस्फर की मान्यता उद्धृत करते हुए इन्होंने लिखा है-'आप दुर्दात डाकू के दिल मे विनोदप्रियता भर दीजिये वह लोकतंत्र का लीडर हो जायगा, आप समाज सुधार के उत्साही कार्यकर्त्ता के हृदय में किसी प्रकार विनोद का इंजेक्शन दे दीजिए, वह अखबार नवीस हो जायेगा।*(17)

इनके ललित निबन्ध इतिहास-पुराण-साहित्य इत्यादि शास्त्रों से सम्बन्धित हैं। अतः जगह-जगह पर उद्धरण मिलते हैं। इन उद्धरणों का स्वरुप कहीं गद्यात्मक होता है। तो कहीं पद्यात्मक। कहीं संस्कृत भाषा में निबद्ध तो कहीं हिन्दीं में। आम फिर बौरा गये' निबन्ध में संस्कृत के चार पद्य उद्धरण के रुप में आये हैं।

जैसे-'सहकार कुसुमके सर निकर भरामोदमूर्च्छित दिगन्ते।
मधुरमधु विघुरघुपे मद्यौ भवेत् कस्य नोत्कण्ठा?*(18)
और छोटी-छोटी पंक्तियाँ तो अनेक मिल जाती हैं।
कुटज में रहीम की पंक्तियाँ-
'वे रहीम अब बिरछ कहँ, जिनकर छाँह गंभीर
बागन बिच-बिच दिखियत, सेहुड़ कुटज करीर।^(19)इनके ललित निबन्धों की उद्धरण-प्रियता कभी-कभी अधिकता के कारण खटकने भी लगती है।

किसी शब्द की और ध्यान जाते ही उसपर चिन्तन करने लगने की भी इनकी प्रवृत्ति प्रशंसनीय लगती है। क्योंकि, इससे कथ्य का स्पष्टीकरण होता है और साथ ही सामान्य से लगनेवाले शब्द के अर्थ की तह तक जाने का भी मौका मिलता है। उदारण के लिए-'कुटज अर्थात् जो कुट से पैदा हुआ हो।' कुट घड़े को भी कहते हैं, घर को भी कहते हैं। कुट अर्थात्, घड़े से उत्पन्न होने के कारण प्रतापी अगस्त्य मुनि भी 'कुटज' कहै जाते हैं। घड़े से तो क्या उत्पन्न

हुए होंगे। कोई और बात होगी। संस्कृत में 'कुटहारिका' और 'कुटकारिका' दासी को कहते हैं। क्यों कहते है?' कुटिया 'या' कुटीर शब्द भी कदाचित इसी शब्द से सम्बद्ध हैं।*(20)

आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी की भाषा में सरलता और गम्भीरता मिश्रित हो गयी है। वस्तुतः इन्होंने गम्भीर विषयों की सरल अभिव्यक्ति पर बल दिया है। कुछ स्थल ऐसे भी मिलते हैं, जहाँ भाषा बहुत कसी हुई अपनी गुरुता का पिंड छोड़ने में असफल रही है। इसलिए इनके ललित निबन्धों की बातें समझने के लिए कुछ योग्य पाठक की जरुरत पड़ती है। सर्वसाधारण के लिए इनके निबन्ध कुछ असमंजस में डालनेवाले हो सकते हैं। इनके निबन्धों में आनेवाले नये प्रसंगों, नये मिथकों, नये प्रश्नों और समाधानों को पूरी तरह आत्म सात करते जाना आसान काम नहीं है। संस्कृत-साहित्य के साथ संस्कृत भाषा का अधिक प्रयोग होने से सरलता में कमी आयी है।

उर्दू के बोल चाल के शब्द,, स्थानीय एवं दैनिक व्यवहार में आनेवाले अंगरेजी के शब्द यत्र-तत्र प्रयोग में आये हैं। मुहावरों एवं कहावतों के प्रयोग से जहाँ अभिव्यक्ति प्रभावशाली हो गयी है, वहीं अनावश्यक, विस्तार से बचने का मार्ग भी मिला है।

हम इनके ललित निबन्धों को सामान्य आकार की संक्षिप्त रचना कहेंगे। यथार्थ बोध युक्त वर्त्तमान जीवन को अतीत से जोड़कर देखनेवाली सरस, ललित, सुगम साहित्यिक विधा मानेंगे। ये निबन्ध आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करने में समर्थ हैं। ये रोचक, रागात्मक यथार्थ एवं कल्पना से मंडित, स्वाधीन चिन्तन-विचार और भाव से समन्वित ऐसे निबन्ध हैं जो अकेले ही द्विवेदी जी को साहित्य-जगत में प्रतिष्ठित कर सकते हैं। इनके ललित निबन्ध पाठकों को आकर्षित किये बिना नहीं रहते हैं। आलोचक तो इनकी प्रशंसा में वह सारा कुछ लिखते रहे हैं, जो आदर्श हिन्दी ललित निबन्ध के पक्ष में लिखा जा सकता है।

निश्चय ही आ. हजारी प्रसाद द्विवदी ललित निबन्ध के क्षेत्र में एक ऐसे शैलीकार के रुप में उभरे जिनकी धारणा है कि' वसंत आता नहीं ले आया जाता है। जो चाहे जब चाहे अपने पर ले आ सकता है। ये मन रम जाने पर शिरीष की भाँति भादों में भी निर्बाध फूलते रह सकते हैं। क्योंकि फक्कड़ाना मस्ती में सब कुछ सम्भव है। हृदय की उन्मुक्त स्थिति में रचित इनके ललित

निबन्ध हिन्दी साहित्य की अक्षय निधि हैं।

2. प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा (सन् 1918–1991)

प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित-निबन्धों के रचनाकाल के समान्तर सफल ललित निबन्धकार के रुप में प्रतिष्ठित हुए। इनके ललित निबन्ध अन्य निबन्धो के साथ' खट्टा मीठा',' आइना बोल उठा' और' प्रणाम की प्रदर्शनी में' संग्रहों में उपलब्ध हैं। इन तीनों संग्रहों में कुल 11 + 20 + 20=51 निबन्ध हैं, जिनमें ललित निबन्ध की दृष्टि से 24 निबन्ध उल्लेखनीय हैं-

क)' खट्टा-मीठा' संग्रह के-1.' साइकिल (सन् 1947) 2. जागल रहिह हो. ..ओ...ओ... (सन् 1948) 3. मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना (सन् 1949) 5. प्रणाम की प्रदर्शनी में (सन् 1949)

ख)' आइना बोल उठा' संग्रह के 1. खिलौना' 2. ताला 3. ये दो आँखें 4. दाढ़ी 5. मैंने उस दिन जाना 6. ऊँचे चढ़के देखा 7. बुद्धा गार्डेन 8. आइना बोल उठा

ग)' प्रणाम की प्रदर्शनी में' संग्रह के 1. नागफनी 2. चोर कौन 3. छोटी बात 4. सफेद झूठ 5. कृपया गंदा मत कीजिए 6. कहाँ आ गया 7. अचूक नुस्खा 8. सदाबहार 9. वयः सन्धि 10. मेरी पार्टी 11 प्रेम न हाट बिकाय

इनके अतिरिक्त' खट्टा मीठा' संग्रह के ललित निबन्ध' प्रणाम की प्रदर्शनी में',' साइकिल',' जागल रहिह हो...ओ...ओ...' मुण्डे'-मुण्डे मतिर्भिन्ना' और' आइना बोल उठा' संग्रह के' ताला' भी इस संग्रह में पुनः संकलित हैं।

इन ललित निबन्धों में सामान्य विषयों के बहाने जीवन और जगत की अनेक महत्वपूर्ण पहलुओं की रसात्मक अभिव्यक्ति हुई है। विभिन्न विषयों को लेकर निबन्धकार कहीं विनोदी आलोचक बनकर आनन्द प्रदान करता है तो कहीं तर्क वितर्क के सहज ढंग से सामान्य धारणाओं के विपरीत मत प्रस्तुत करके विचित्रता उत्पन्न कर देना है। निबन्धों की शुरुआत आकर्षक ढंग से होती है और पाठक इनकी निश्छल अभिव्यक्ति में विश्वास करते हुए जीवन और जगत से जुड़ी अनेक पते की बातें पाकर आनन्दित हो उठता है। उदाहरण स्वरुप अपने सुप्रसिद्ध ललित निबन्ध' साइकिल' की रोचक शुरुआत करते हुए निबन्धकार पाठक से कहता है-

'आईये, आज आपको एक नयी बात बताऊँ। चौंकिये मत। मैं जानता हूँ

कि एक दार्शनिक गम्भीरता से आप कह उठेंगे–' भले मानस ! संसार में नयापन है कहाँ, जो तू नयी बात बताने का दंभ कर रहा है।'(21)

इसके बाद निबन्धकार ने साइकिल की तुलना अन्य वाहनों-घोड़े-हाथी की सवारी से लेकर रेल और हवाई जहाज तक से करते हुए साइकिल के आविष्कार को अबतक के महान वैज्ञानिक आविष्कारों में स्थान दिया है। इन्होंने जिस चतुराई से साइकिल के गुणों की व्याख्या की है, वह चौंका देने वाली बात है। दो पहिये की हल्की फूल्की सवारी में अन्य वाहनों की अपेक्षा कम खर्चीली और तंग रास्तों या भीड़ भरे रास्ते में सुगम सवारी बतलाकर पाठक को जहाँ अपना विश्वासी बना लिया है, वहीं भारत वर्ष के साम्थवाद का उदाहरण बनाकर साइकिल के महत्व पर लालित्यपूर्ण तर्क प्रस्तुत कर दिया है। इनके अनुसार सभी वर्ग के लोग साइकिल की सवारी करते है। अतः साइकिल से' सुरसरि सम सबकर हित' होई कहना कितना सच हैं !

इस प्रकार इनके ललित निबन्धों में विचित्रता का दर्शन होता है, जो हिन्दी ललित निबन्ध की एक प्रमुख विशेषता मानी जाती है। सहज तर्क-वितर्क करके सामान्य धारणा' साइकिल निराली, अनुपम, अद्वितीय सवारी है' की और पाठक को ले जाना और उसे इस धारणा का समर्थन करने के लिए विवश कर देना इनकी कला और चिन्तन की महानता है। इनके प्राय : सभी ललित निबन्धों को यही विशेषता लालित्य से भर देती है। ऐसा लगता है कि इन्हें प्रचलित मान्यताओं की कोई परवाह नहीं है। इन्होंने मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना' में मतभेद' को भी उपयोगी बना दिया है।' जागल रहिह...हो...ओ...ओ... में पहरु का काम रेडियो सेट के लाउडस्पीकर से लेना उचित समझाया है।

विषयान्तर में चला जाना, शीर्षक के बहाने चलकर अपने उन्मुक्त निजी विचारों की अभिव्यक्ति में लीन हो जाना व्यंग्य-विनोद भरे वातावरण की सृष्टि कर देना और अपने व्यक्तित्व को पूरे उभार के साथ प्रस्तुत कर देना इनके ललित निबन्धों की विशेषता है।

'साइकिल' की विशेषता बतलाते हुए अन्य वाहनों के गुणों-अवगुणों तक चला जाना फिर भारतीय साम्यवाद की छवि प्रस्तुत कर देना और भारतीय प्रगति की खिल्ली उड़ाते हुए पुनः विषय पर लौट जाना इनके ललित निबन्धों में उपस्थित विषयान्तर का सूचक है।

'भारतीय प्रगति के समान मन्द गति से चलने वाली बैलगाड़ी की विसात

ही क्या? हाथी की मन्थर चाल तो साहित्य में अजर-अमर है। ऊँट की उबड़-खाबड़, बेतरतीब चाल मनोविनोद की ही वस्तु है। घोड़ा तेज दौड़ सकता है पर साइकिल उससे ज्यादा पीछे नहीं रहेगी।*(22)

प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा सभ्य-शिष्ट बहुआयामी स्वरुपवाले व्यंग्य-विनोद के हिमायती हैं। ये अपने ललित निबन्धों में आत्मव्यंग्य का स्वांग भरते हुए दूसरों पर व्यंग्य की बौछार करते हैं। ये सत्यभाषण के आकांक्षी श्रोता को लक्ष्य बनाकर आत्म दया का स्वांग भरते हुए कहते हैं-'यदि आप सत्य का तेज सह सकें तो मुझे सच बोलने में कोई आपत्ति, कोई कठिनाई नहीं होगीं।^(23)* इनके कई ललित निबन्धों में निजी जीवन से सम्बद्ध स्वाभाविक खीझ प्रस्तुत होकर मनोविनोद का साधन बनती हैं-'खिलौना' निबन्ध में 'गहनों को देखकर उनकी (पत्नी) की आँखों में जो भाव झलकते है, वे खिलौना को देखकर मेरे चिरंजीव के भाव से या किताबों को देखकर मेरे भाव से रंच मात्र भी भिन्न नहीं होते...।^(24)

इन्होंने मानव शरीर के अंगों के निर्माण में विधाता की भूलों पर भी विनोद पूर्ण खीझ भर दिया है। अपनी दो आँखों के विषय में कहा है-'ये भी गिनाने के लिए दो, पर काम के लिए एक ही। इस उटपटाँग बात का क्या जवाब है?*(25) और अपनी दाढ़ी साफ करते-करते परेशान प्रतीत होनेवाले निबन्धकार की दृष्टि में इनकी दाढ़ी ब्रह्मा की निर्बुद्धिता का जवलन्त प्रमाण प्रतीत होता है। इसलिए कहते हैं।-

यदि विधाता सामने रहते हो...क्या बताउँ? जो व्यक्ति रमणियों को कपोल निर्लोम बना सकता था, वह क्या पुरुषों का नहीं बना सकता था।(26)

'कहाँ आ गया' निबन्ध में विहार की राजधानी पटना के जनजीवन पर पग-पग पर बर्लिन प्रवासी निबन्धकार व्यंग्य भरीवाणी का प्रहार करता है-'पटने की सभी सड़के गायों की विचरण भूमि हैं। ये स्पीड ब्रेकर और यातायात नियंत्रण का काम बड़ी खूबी से करती हैं... दूसरे समाजवादी देशों में केवल मनुष्यों के बीच समानता की बात है। हम उनसे एक कदम आगे हैं। हमने मनुष्यों और पशुओं के बीच का भेद भी मिटा दिया है। तड़के उठकर बर्लिन में दूर-दूर तक नजर दौड़ाता हूँ... पशु दर्शन की प्यासी अँखियाँ प्यासी ही रह जाती हैं।*(27)

प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा के प्रायः सभी ललित निबन्धों में चुहलभरी जिन्दादिली,

शिष्ट हास्य विनोद पूर्ण व्यक्तित्व, मौलिक दृष्टिकोण के साथ नवीन विचार देखे जाते हैं।' साइकिल 'हो या' मोटर बनाम साइकिल 'खिलौना', ताला हो या 'ये दो आँखे 'दाढ़ी' तक को इनकी विचित्र सूक्ष्म दृष्टि ने लालित्य से रंग डाला है। लगता है इन्होंने 'बृद्धा गार्डेन' तक को 'ऊँचे चढ़के देखा है, और तब कहा कि 'मैने उस दिन जाना', मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना', मैं सच कहना चाहता हूँ, चोर कौन।'सफेद झूठ' क्या है। छोटी बात 'का महत्व क्या है और' अचूक नुस्खा 'जानकर कहा' सदाबहार' जीवन कैसा होता है। वय : संधि' के दो स्वरुप हैं-शैशव और यौवन की संधि एवं यौवन और वार्धक्य की वयः संधि। उनके हृदय का' आइना बोल उठा',' जागल रहिह हो...ओ...ओ...।' इन शीर्षकों से एक बात और स्पष्ट हो जाती है कि निबन्धकार के विषय चयन की कोई सीमा नहीं रह गयी है। उनका मन कब किस सामान्य प्रतीत होने वाले विषय का सहारा लेकर रस सागर में कूद पड़ेगा, किन मनोरंजक दृश्यों की ओर संदर्भानुसार चल पड़ेगा, कहा नहीं जा सकता है।

'प्रेम न हाट बिकाय' ललित निबन्ध में इनकी रचना शैली की कथात्मकता के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। लगता है इन्होंने कहानी कहना प्रारम्भ किया है। परन्तु आगे बढ़कर ये निज अंतर मन में झाँकने लगते हैं। इसके बाद आध्यात्मिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक, साहित्यिक दृष्टि भंगिमाओं के चंगुल में फंसकर कबीर की मर्मस्पर्शी पंक्तियों का उद्धरण देकर निबन्ध का समापन करते हैं-

यह तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहिं।
सीस उतारे भुई धरे, तब पैठे घर माहिं।।(28)

ललित निबन्धों में इनकी यह उद्धरण प्रियता अन्यत्र भी मिलती है-तुलसी दास की रचना, विहारी के दोहे। 'ऊँचे चढ़के देखा' में याचक फकीर की प्रचलित कथा का उद्धरण है, तो रहीम की पंक्तियाँ भी साथ लग गई हैं-

'घर-घर डोलत दीन ह्वे, जन-जन जाँचत जाय।
दिये लोभ चश्मा चखनि, लघु पुनि बड़ो लखाय।

वयः संधि' निबन्ध में विहारी, श्री हर्ष, विधापति आदि की पंक्तियाँ उपस्थित होकर निबन्धकार के भावों को पुष्ट करती हैं-'छुटी न सिसुता की झलक झलक्यों जीवन अंग। दीपति देह दुहून मिलि दिपति ताफता रंग।'(29)

देवेन्द्रनाथ शर्मा के ललित निबन्धों में प्रयुक्त भाषा सरल सहज भावबोधक

है। सामान्य पाठक भी इनके भावों और विचारों को हृदयंगम करने में समर्थ हो सकते हैं। इनकी भाषा का सामर्थ्य इस बात का प्रमाण है कि बिना किसी स्पष्टीकरण के रचनाएँ सम्प्रेषित हो जाती हैं और स्वयं को ललित निबन्ध साबित कर देती है।

सहज-प्रांजल भाषा के साथ शैली का आकर्षण भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। प्रस्तुत निबन्धों की शैली हिन्दी साहित्य में अपने ढंग की अनूठी है। इन निबन्धों की भाषा शैली की विशेषताएँ ही निबन्धकार के व्यक्तित्व की सुरभि बिखेर देती हैं। व्यंग्य-विनोद का शिष्ट रुप हास-परिहास की मंद मुस्कान बिखरनेवाली इस शैली की जितनी भी प्रशंसा की जाय कम है। मेरी समझ में इनके जिस किसी ललित-निबन्ध को उठाकर देखा जाय, वही इन तथ्यों का प्रमाण सिद्ध होगा।

खट्टा-मीठा की प्रस्तावना में श्री कृष्ण प्रसाद ने उचित ही लिखा है कि 'प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा के इन लेखों में हम उस वस्तु और रस को पाते हैं, जो अंगरेजी निबन्धों का विशेष गुण है और जिसकी कमी हम हिन्दी साहित्य में अनुभव करते हैं।'(30)

और यह भी कि देवेन्द्र नाथ शर्मा के ये निबन्ध प्रौढ़ एवं पुष्ट बन पड़े हैं। इनकी तुलना अंगरेजी के लिंड लूकस जैसे कुशल कलाकारों से की जा सकती है। श्री कृष्ण प्रसाद ने यह भी लिखा है-'शर्माजी के निबन्धों में जादू जैसा प्रभाव है, सभ्य और नियंत्रित व्यंग्य है, स्वस्थ और निष्पक्ष आलोचना है, विनोद है, सत्य की झलक है और विशेषकर वह गुण है जो निबन्धकला का प्राण है।'(31)

प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा के ललित निबन्धों का अध्ययन करने पर स्पष्ट हो जाता है कि श्री कृष्ण प्रसाद के कथन श्री शर्मा के सभी ललित निबन्धों के लिए उचित है। प्रो, देवेन्द्रनाथ शर्मा ऐसी विभूति हैं जिनका सम्बन्ध किसी न किसी रुप में भारत के सभी विश्वविधालयों से रहा है। पेशे से, आचार्य विभागाध्यक्ष, कुलपति, होने का गौरव प्राप्त करने के कारण उनके अनुभव एवं ज्ञान का विस्तार स्वयंसिद्ध है। उनकी यही व्यापक अनुभूतियाँ किसी न किसी सामान्य विषय के सहारे सभर व्यक्तित्व के साथ ललित पूर्ण शैली में अभिव्यक्त होकर आह्लाद प्रदान करती है।

निश्चय ही सफल निबन्धकार होने योग्य इनका व्यक्तित्व है और प्रायः सभी ललित निबन्धों में वही व्यक्तित्व छाया हुआ है। कितना सरल कितना

निष्कपट? कितना प्रिय कितनी रोचक? इन प्रश्नों का उत्तर उनके ललित निबन्ध ही देते हैं। इस कथन में संभवतः कहीं भी कोई अतिश्योक्ति नहीं है। हिन्दी ललित निबन्ध साहित्य इनके इस योगदान को विस्मृत नहीं कर पायेगा।

(3) डॉ. विद्यानिवास मिश्र (सन् 1926-2005)

हिन्दी ललित निबन्ध-साहित्य के क्षेत्र में विद्यानिवास मिश्र अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। इनके ललित निबन्धों में एक और आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के समान भारतीय साहित्य और संस्कृति को लोक-जीवन के साथ जोड़ने का प्रयास है तो दूसरी और बालमुकुन्द गुप्त के'शिवशम्भु के चिट्ठे' के समान'भ्रमरानन्द के पत्रों में राष्ट्रवादी विचारधारा, व्यंग्य-विनोद एवं समसामयिक समस्याओं के प्रति चिढ़ भी व्यक्त हुई है।

इनके लगभग बीस निबन्ध संग्रहों में विभिन्न प्रकार के निबन्ध संकलित हैं। इनमें से ललित निबन्ध की दृष्टि से निम्नलिखित निबन्ध विशेष उल्लेखनीय हैं-

(क) 'छितवन की छाँह' (नवीन सं. 1982 ई.) संग्रह के-

(1) छितवन की छाँह (2) हरसिंगार
(3) गऊचोरी (4) साँझ भई
(5) बसंत न आवै (6) जमुना के तीरे-तीरे
(7) साँची कहौ व्रजराज तुम्हें रतिराज किधौं रितुराज कियो है
(8) धनवा पियर भइले मनवा पियर भइलें
(9) घने नीम तरू तले

(ख) 'तुम चन्दन हम पानी' (प्रथम संस्करण संवत् 2013 तद्नुसार 1956 ई.) संग्रह के-

(10) बेचिरागी गाँव (11) मुरली की टेर
(12) पूर्णमदः पूर्णमिदम (13) तुम चंदन हम पानी

(ग) 'मैंने सिल पहुँचाई' (प्रथम संस्करण 1966 ई.) संग्रह के-

(14) आहुति दो आहुति की वेला है(15) दीपो यत्नेनवार्यताम्
(16) जय अंगरेजी रानी! (17) आंचलिक मित्रों से
(18) मैंने सिल पहुँचाई

(घ) 'भोर का आवाहन' (प्रथम संस्करण 1968 ई.) संग्रह के-

(19) भोर का आवाहन (20) संध्या का ध्यान

(ङ) 'तमाल के झरोखे से' (द्वितीय सं. 1989 ई.) संग्रह के-

(21) न पनिया का वह मामूल है (22) काहे बिन सुन अँगनवा
(23) एक घूँट पानी (24) सर्जन के देवता
(25) आ जाऊँगी बड़े भोर (26) वसन्त एक दुःस्वप्न
(27) तमाल के झरोखे से (28) जीवन अपनी देहरी पर
(२९) और यात्रा अभी शुरू नहीं हुई

(च) 'गाँव का मन' (प्रथम आवृति 1989 ई.) संग्रह के-
(30) मेरा गाँव घर (31) आँगन का पंछी
(32) अभी अभी हूँ, अभी नहीं (33) सदा अनन्द रहे एहि द्वारे
(34) भरि देहु गगरिया हमारी (35) मैं मधुवन जाऊँगा रे
(36) धान-पान और नीली लपटें (37) अयोध्या उदास लगती है
(38) होरहा (39) कटहल
(40) नारियल (41) गाँव का मन

(छ) 'आँगन का पंछी और बनजारा मन' (तीसरी आवृति 1990 ई.) संग्रह के-
(42) जयन्ती मंगला काली (43) दिये बाती का मेल
(44) ड्योढ़े दर्जे का खातिमा (45) डेरी बनाम खेती
(46) नर-नारायण (47) मेरी रूमाल खो गयी
(48) इकाई बनाम दहाई (49) बनजारा मन

(ज) 'विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्ध (सम्पादक भोलाभाई पटेल एवं रामकुमार गुप्त, प्रथम संस्करण 1991 ई.) संग्रह के-
(50) मेरे राम का मुकुट भीग रहा है (51) अग्निरथ
(52) शिव की बारात (53) सिव सिर मालति माल
(54) कहो कैसा रंग है (55) शिरीष का आग्रह
(56) हिप्पी पंथ (57) बर्फ और धूप
(58) अभी अभी हूँ अभी नहीं

इन संग्रहों के अतिरिक्त 'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है', 'अग्निरथ', बसंत आ गया पर कोई उत्कण्ठा नहीं','शेफाली झर रही है','अंगद की नियति', 'संचारिणी' लागौ रंग हरी', 'भ्रमरानन्द के पत्र','कदम की फूली डाल','परम्परा बन्धन नहीं','अस्मिता के लिए' 'कँटीले तारों के आर-पार' कौन तू फुलवा बीनन हारी' आदि संग्रहों में भी कई ललित निबन्ध होने के संकेत मिलते हैं। कुछ ललित निबन्ध एक से अधिक संग्रहों में पुनः संकलित हुए हैं। अतः मैने

वैसे निबन्धों को किसी एक संग्रह से ही लिया है। जैसे 'मेरा गाँव धर निबन्ध' गाँव का मन 'तमाल के झरोखे से' और' विधा निवास मिश्र के ललित निबन्ध' शीर्षक तीनों संग्रहों में है।

इस प्रकार संख्या की दृष्टि से ललित निबन्ध-साहित्य में डॉ. विद्यानिवास मिश्र का योगदान सर्वाधिक है। इनके प्रायः सभी ललित निबन्ध उच्चकोटि के ललित निबन्धों की श्रेणी में रखे जाने योग्य हैं। हिन्दी मात्र ही नहीं बल्कि अन्य भाषाओं के ललित निबन्धों के बीच में ऐसे ही निबन्धों को स्थान मिल सकता है।

विद्यानिवास मिश्र के सम्पूर्ण ललित निबन्धों को इनकी प्रकृति एवं संवेदना की भिन्नता के आधार पर दो प्रमुख वर्गों में विभक्त करके देखना उचित होगा क्योंकि इनकी भावाभिव्यक्ति में अन्तर की स्पष्ट रेखाएँ खींच जाती हैं। प्रथम वर्ग में वैसे सभी ललित निबन्ध आयेंगे, जिनकी प्रवृत्ति डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों के समान हैं और दूसरे वर्ग में वैसे ललित निबन्ध आयेंगे जिनकी रचना' भ्रमरानन्द के पत्र' के रुप में' भ्रमरानन्द' उपनाम से की गई है।

प्रथम वर्ग के ललित निबन्धों में स्वाधीन मनः स्थिति में विचरण करता हुआ निबन्धकार भारतीय सभ्यता संस्कृति की गहराई में चला जाता है फिर आधुनिक जीवन की आवश्यकताओं, समस्याओं की आलोकित करते हुए लोक तत्वों एवं आँचलिकता का पुट दे देता है।' बेचिरागी गाँव' शीर्षक निबन्ध में एक गाँव के नाम का तात्पर्य ढूँढते हुए विद्यानिवास मिश्र भारतीय इतिहास के महापुरुषों-चन्द्रगुप्त, स्कन्द गुप्त, पृथ्वीराज को स्मरण कर जाते हैं। इन्हें पुराने नगरों के खंडहर उज्जयिनी विदिशा, त्रिपुरी देखकर बेचिरागी गाँव की याद आ जाती है। निबन्धकार ने देखा है उन ऐतिहासिक पृष्ठों में उत्कीर्ण संस्कृति के आधार स्तम्भ-राधवेन्द्र राम, विदेह जनक, भीष्म पितामह, भगवान कृष्ण को और मध्ययुग, गुप्त युग को। इनकी स्मृति में अब भी उन खण्डहरों में अंकित भारतीय विधाओं की साधना, कलाओं के नृत्य, भारतीय ललनाओं की शक्तिशाली रूप-माधुरी-सीता, सावित्री, विदुला, प्रभावती, दुर्गावती आ जाती है। "सौन्दर्य की अमर सृष्टियाँ-मालविका, रत्नावली, वासवदत्ता, शकुन्तला, कादम्बरी, महाश्वेता, राधा, पार्वती, रति, इन्दुमती और उर्वशी एक-से-एक उत्कृष्ट मुद्राओं में शालभंजिका बनकर कुसुम और फल चयन कर रही हैं।"(32)

ये वर्त्तमान समाज के दृष्टिकोण का यथार्थ व्यक्त करते हुए इसी निबन्ध में आगे लिखते हैं-'आज प्राचीनता का विश्लेषण करना पुण्य है, जंगल को

और उपवन को बुलडोजर से नये सिरे से तोड़ना पावन कर्तव्य है। आज लोक संस्कृति की सीता को आधुनिकता के रंगमंच पर लाना एक बहुत बड़ा परोपकार है। आज प्राचीन साहित्य और कला की कृतियों को अपने कमरे में सजाकर रखना एक फैशन है पर उनकी पुकार सुनना, उनके प्राणों से संस्पुष्ट होना, उनकी साधना में तन्मय होना पाप हैं। यह कैसा विवेक और कैसा न्याय है।"(33)

इसी प्रकार ललित निबन्धकार विद्यानिवास मिश्र'मुरली की टेर' सुनते ही सूरदास के काव्य संदर्भों पर चले जाते हैं, उस युग की प्रबल प्रेम साधना को स्मरण करने लगते हैं और पुनः वर्त्तमान का चित्र उकेर जाते हैं-"पर हाय, कैसी यह संझा है कि न गौएं हैं, न गउओं की धूलि है, तारकोल की कालीकलूटी अछोर-सी डगर है, इसे जमुना मान भी लें, तो कदम्ब की डाल नहीं, बरसों से सफेदी की आशा में मुँह जोहे टूटी छत की मुंडेरी है।(34)

आंचलिक परिवेश की तह तक पहुँचना और उसके भीतर से जीवन रस खींच कर पुष्प-गुच्छों की भाँति लालित्ययुक्त ललित निबन्धों को खिला देना इनके निबन्धों की प्रधान विशेषता हैं 'भोर का आवाहन' में भोजपुरी मंगल गीत की पहली कड़ी-"ए भोर रे भइले भिनुसार चिरइया एक बोलेले, मिरूग बन चुंगेंलें"।(35) प्रातः स्मरणीय मूल मंत्र है। जिसका रसास्वादन जाँते पर झीना आटा निकालने के साथ झीनीरागिनी निकालने वाली और गाँव की लम्बी डगर चलने वालों को ही हो सकता है इसी प्रकार'सन्ध्या का ध्यान' में-

"आहो आहो संझा गोसाइँनि

ईहै तीनिउ रउरे नव गुन ईहै तीनिउ रउरे बड़ा बरह्मा बिसुन महेश...।"(36)

तीन गुण से नवगुण करने वाली संध्या के आराधक ब्रह्मा, विष्णु और महेश हैं, जो वर को आशीर्वाद देते हैं। यह संध्या-गीत जड़-चेतन, प्रकृति-पुरूष, दुःख-सुख, तमः-प्रकाश के एकीभूत उल्लसित क्षण की वंदना हैं। यह ऐसे समय की गीति है, जब कामधेनु भारती मातृ-वन्दना में विनत होकर अमृतक्षीर बहाने लगती हैं। चहचहाते पक्षीशावकों के साथ समस्त ऐन्द्रिय व्यापार सिमटकर अन्तर्मुख होने लगते हैं।

'मेरा गाँव घर' का निबन्धकार स्पष्ट कहता है कि'कहीं भी रहूँ यह नहीं छूटता कि मैं हिन्दुस्तान के एक गाँव का हूँ,ऐसे गाँव का जो शहर के बहुत दूर हैं। वहाँ तक आज भी कोई सड़क, कोई रेल नहीं पहुँची।'(37)

पूरे गाँव का स्नेह बटोरे हुए कच्ची मिट्टी के घर में उत्पन्न निबन्धकार

देश-विदेश में रहते हुए भी गाँव के भगीरथी चमार के मीठे गीत, शिवधनी अहीर की बहू की दहेड़ी-भेंट और लखराज की माई की दही की याद आते ही अपना मन भीगा हुआ पाता है। इनके हृदय में गहराई से बैठा हुआ ग्रामीण परिवेश सर्वत्र आत्मीयता की पुकार लगाने में सहायक बनता है, हताशा से बचाता है और सभी प्रकार के वनवास को आवास बनाता है।

इनके 'आँगन का पंछी' में 'गोरैया' इनकी दो साल की मिनी के समान छोटी नहीं, बहुत बड़ी लगती हैं।इसलिए इनमें सीता की सुधि आती है, धरती का दुलार छलकता है। इनके इस प्यार ने आक्रोश जगा दिया है और रक्षा की गुहार लगवाया है-"मुक्ति पर्व मनाओ बड़ा अच्छा है, पर मुक्ति की जीती-जागती तसवीरें क्यों फाड़ते हो? जन का आर्थिक और नैतिक अभ्युदय चाहते हो, ठीक है, पर उसके सहज आनन्द का क्षण क्यों छीनते हो। अपनी चित्रकला में बांस के झुरमुट बनाकर उस पर चिड़ियों को बिठलाने वाले चितेरे, उन चिड़ियों को उनके बसेरों से क्यों उजाड़ते हो।"(38)

गाँव की होली हो या फागुन का महीना विद्यानिवास मिश्र का मन मस्त हो जाता है। ये वसन्त की अगवानी में फगुआ, चैता आदि में रसमग्न हो जाते हैं-"भरि देहु गगरिया हमारी, कहत ब्रजनारी"(39) जैसे गीत गूँजने लगते हैं। जंगली सड़क पर ढोर चराने के लिए जाता हुआ चरवाहा जादू भरी स्वर लहरी में गा उठता है-

"जाइब रे मघुबनवा।
गोइँठवा बीने जाइब रे मघुबनवा।।"(40)

'धान-पान और नीली लपटें' में ग्रामीण लोक जीवन की अमिट छाप छोड़ी गयी है। मिश्रजी अपने गाँव के दक्खिन काली माई का धान, नीम की धनी छाँह, गँवई गाँव के गोसाई शिव बाबा से तो घनिष्ठ सम्बन्ध रखते ही हैं, टिकोरा, कटहल, नारियल, हल्दी-दूब और दधि अच्छत से भी स्नेह बढ़ाते हैं। इनके सर्जन का देवता ग्रामीण परिवेश में ही अधिक रमता है। इसलिए इन्हें वर्त्तमान शहरीकरण के युग में भी यमुना के गले में रूँधा हुआ स्वर सुनायी पड़ता है-"आ जाऊँगी बड़े भोर दही रे लेके।"(41)

इस प्रकार विद्यानिवास मिश्र के अधिकांश ललित निबन्ध गँवई गाँव के गुलाबीरंग एवं मिट्टी की सोंघी महक से सने हुए हैं। आज जब हमारी धरती आत्मीयता की उष्मा लगातार खोती जा रही है, ऐसी स्थिति में 'चलो गाँव की

ओर' का नारा बुलन्द करने वाले निबन्धकार की स्वाधीन मनः स्थिति जन कल्याण का मार्ग प्रशस्त करती है। ग्रामीण संस्कृति को चिमनी के घुएँ द्वारा निगले जाने के भय से बचाती है।

विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्धों में इनका व्यक्तित्व अपनी सम्पूर्णता के साथ उपस्थित हुआ है इनके व्यक्तित्व के विभिन्न रंग-रूप स्वस्थ एवं स्वच्छ रूप में उभरकर निबन्धों में लालित्य भर दिये हैं। ये सम्पूर्ण जीवन को'जीवन अपनी देहरी पर' देखने वाले ललित निबन्धकार हैं। इसलिए इनकी धारणा है कि पूरे जीवन को यज्ञ समझा जाय। जीवन का रहस्य तभी समझा जा सकता है जब इसे आनुष्ठानिक मृत्यु के रूप में साध लिया जाय, इसके प्रत्येक खंड को सोम की पेराई के रूप में देखा जाय। इनका कहना है-

"जीवन को दूसरों के आस्वादन के लिए ऐसे ही पेरते रहो और मृत्यु आये तो मानो अनुष्ठान पूरा हुआ, अब यज्ञ समाप्ति (अवभृथ) का स्नान करना है।"(42)

इनका व्यक्तित्व भारतीय सभ्यता-संस्कृति के गौरव से परिपूर्ण हैं। इसलिए काहे बिन सून अँगनवा' निबन्ध में भारतीय नारी के विभिन्न रिश्तों और परिवार में उसके मर्यादित स्थान की चर्चा करते हैं। इनके अनुसार भारतीय नारी पिता के घर में बचपन में आँगन की गौरेया बनकर फुदकती रहती है। वह ससुराल में विभिन्न रिश्तों का निर्वाह करती हुई सम्पूर्ण शक्ति, सम्पूर्ण प्यार और उत्सर्ग के साथ देवता का साक्षात् विग्रह बन जाती है। निबन्धकार का कहना है कि-

"संयुक्त परिवार शहरीकरण और औद्योगीकरण से भले ही टूट जाये, पर हिन्दुस्तान के सनातन हिन्दुस्तानी मन के पारिवारिक बोध में टूटन नहीं आयेगी।"(43)

क्योंकि "हिन्दुस्तान के रिश्ते व्यक्ति और व्यक्ति के बीच नहीं होते, एक संबंधचक्र और दूसरे संबंधचक्र के बीच होते हैं। दो जड़ सत्ताओं के बीच नहीं होते हैं, दो गतिविवर्तों के बीच में होते हैं।"(44)

इसी प्रकार अनेक निबन्धों में विद्यानिवास मिश्र अपने देश की सभ्यता-संस्कृति से जुड़े अनेक सन्दर्भों को सामने रखते हैं। इसकी परम्परा की तह तक जाकर झाँकते हैं और आधुनिकता से तुलना करते हैं। अर्थात् इनके व्यक्तित्व के रग-रग में भारतीय सभ्यता-संस्कृति का रस भरा है भारत की वर्त्तमान बिगड़ती

पर्यावरण-संतुलनशक्ति का दर्द 'एक घूंट पानी' में देखा जा सकता है।'शिरीष का आग्रह' निबन्ध में भारतीय संस्कृति की परम्परा रेखांकित है। इस दृष्टि से विद्यानिवास मिश्र हजारी प्रसाद द्विवेदी के समान अपने निबन्धों में अपने सभर व्यक्तित्व को अभिव्यक्त करते हैं। अतः इन्हें ऐसे ललित निबन्ध साहित्य में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का परम सहयोगी कह सकते हैं। ललित निबन्धों में आंचलिकता को ग्रहण करने में तो इनकी बराबरी कोई कर ही नहीं सका है।

इनका राष्ट्रप्रेमी हृदय सभी ललित निबन्धों में कहीं न कहीं द्रवित हो जाता है। चाहे जिस रूप में हो, परन्तु भरा हुआ राष्ट्रप्रेम बराबर मुखर हो जाता है।'भ्रमरानन्द' उपनाम से लिखे हुए विनीत स्वर युक्त अपने देश की हिप्पी पंथी स्थिति का चित्रण द्रष्टव्य है-

"यह क्या हो रहा है? हिन्दुस्तान हाथ पसार कर भीख माँग रहा है हमें अपना सत्त निकाला गेहूँ दो, रसायनों के बल पर बीस-बीस साल साबुत रखा मक्का दो, अपना यन्त्रकौशल दो, अपनी लाल-पीली-हरी रोशनी की यन्त्रबद्ध भाषा दो। और इस पूंजीवादी देश का तरूण हाथ पसार कर उस भिखमंगे से माँग रहा है-अपने मसान की भस्म दो, अपनी दरिद्रता दो, यह ऐश्वर्य, यह जीवन नहीं सहा जा रहा है। हमारा प्यारा हिन्दुस्तान खुले हाथ लुटा रहा है- यह ले जाओ ओड़िसा कल्चर की चाँदी की क्लिप, यह लो कश्मीर की नवनीत कामिनी के हाथ का काढ़ा शाल... हमारी संस्कृति का हर तामझाम बिकाऊ है।"(45)

'आहुति दो आहुति की बेला है' निबन्ध में रचना वृत्ति ने भ्रमरानन्द को देश हित में रचना करने के लिए धिक्कारते हुए प्रोत्साहित किया-"तुम्हें सीमा का आह्वान नहीं सुनाई पड़ता है? संकट की घोषणा ने तुम्हें झकझोरा नहीं। तुम उठो, कलम को तलवार बना लो और अपने अक्षरों से संगीनों और गोलियों की फसल उगा दो। स्वर्ण नहीं तो सुनहले वर्ण ही सही, रक्त नहीं तो लाल स्याही ही सही, जौ, घी और तिल नहीं तो वनस्पति से सधा स्वर ही सही। आहुति दो, आहुति की बेला है।"(46)

और आगे अपने राष्ट्र की सुरक्षा और समृद्धि का स्वर फूट पड़ता है-'दीपो यत्नेन वार्यताम्'। स्वाभिमान यह कि छोटे मत बनो मेरे प्यारे देश' इस मानववाद की स्थापना की शक्ति का समर्थन संकीर्ण सामप्रदायिकता से न करो। हिन्दुस्तान न्याय और सत्य के लिए जो लड़ाई लड़ रहा है, उतनी महत्वपूर्ण लड़ाई कोई

भी लड़ाई नहीं है। इसलिए-

"अन्धकार को दूना होने दो, दीया जलाओ, पर जतन से जलाओ, यह दीया सत्य पर टिका हो, इसमें तप से तेल मिले, बाती दया से पूरी गई हो और इसकी लौ क्षमा की हो।"(47)

अपनी प्रत्येक आहुति को निर्धूम दीप के समान प्रज्ज्वलित करके अपने संकल्प और कर्म से भी राष्ट्र के अन्तःकरण को आलोकित करने की कोशिश करो। इनका गाँव का मन छितवन की छाँह में बैठकर, तमाल के झरोखे से, राष्ट्रहित में बार-बार भोर का आवाह्न करता है, यह कहकर कि तुम चन्दन हम पानी हैं। इन्हें अपने जीवन में किये गये कर्मों से संतोष इसलिए है कि इन्होंने जो कुछ भी किया, उससे कह सकें-मैंने सिल पहुँचाई।

ललित निबन्धकार विद्यानिवास के विचार इनके अन्तःकरण से स्वतः फूटते हैं। ये यथार्थ को सामने रखने की कोशिश करते हैं। रोचकता लाने के लिए कहीं-कहीं कल्पना और स्वप्न का सहारा अवश्य लिया गया है फिर भी ये न तो विचारों का बोझ डालते हैं और न मात्र कपोल कल्पना में व्यस्त हो जाते हैं। इतिहास-पुराण से सार ग्रहण कर उसे भी रोचक बना डालते हैं। यह इनकी निबन्ध कला की विशेषता है। अपनी निजी मान्यताओं, अनुभव और अध्ययन से प्राप्त ज्ञान को पाठकों के लिए तरल, सरस बनाकर परोसना और उसके रस गंध से पाठक को लालायित करते जाना, उसकी जिज्ञासा, पीपाषा, बुभुक्षा में सतत् वृद्धि करते जाना विद्यानिवास मिश्र से ही आनेवाली पीढ़ी के ललित निबन्धकार सीख सकते हैं।

इनके ललित निबन्धों में है-प्राकृतिक उपादानों से लेकर अपने देश के विस्तृत सांस्कृतिक जीवन की रम्य झांकी, घर आँगन से लेकर विशाल विश्व के प्रसिद्ध नगरों में गुजारा हुआ प्रवासी का दर्द, अपनी मिट्टी की सोंधी महक, इतिहास का नया अर्थ ढूँढता हुआ स्वस्थ, परिष्कृत सभर व्यक्तित्व वाला निबन्धकार। देश-विदेश के साहित्य का ज्ञाता जब सामान्य जनजीवन के विविध पक्षों की अंतिम पर्त तक पहुँचता है तब जिस नवनीत, जिस जीवन-अमृत को पाता है, वह इनके ललित निबन्धों के कलशों में भरा है।

हिन्दी ललित निबन्ध के इतिहास में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी को छोड़कर अन्य किसी ने इतना व्यापक परिवेश नहीं घेर सका है। इनके सभी ललित निबन्धों को देखकर तो लगता है कि ग्रामीण परिवेश को जोड़कर इन्होंने

द्विवेदी जी से भी अधिक विस्तार पा लिया है।

जिस निबन्धकार का छितवन पार्थिव शरीर के यौवन का प्रतीक है।'हरसिंगार' सात्विक प्रेम की असली पहचान है। जो विरह के अनन्त अंधकार में निराशा की विराट निशब्दता में धीरज के ललौंहै फूल बरसाता है। जिसे वसन्त आकर रतिविलाप की पंक्तियाँ स्मरण कराता है, तड़पते हुए को और तड़पाता है और इसलिए इच्छा होती है-'वसन्त न आवै' तो अच्छा हो। जो जमुना के तीरे-तीरे मन रमाता हुआ आगे बढ़ रहा हो और उसके श्यामल रंग के प्रसार में उपस्थित सौन्दर्य में ही मुग्ध रहना चाहता हो। ऐसे निबन्धकार विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों में रागात्मकता, चित्रात्मकता, भाव और विचारों का अनोखा संयोग सर्वत्र सजीव हो उठा है।

ग्रामीण जीवन की हरियाली और शहर की उबासी, यौवन काल की मस्ती और आमोद-प्रमोद के साथ चौथेपन का यह एहसास भी कि अब'साँझ भई' यौवन के सपने पंख समेट कर सोने चले गये। जीवन की गति धीमी पड़ गयी, गंगा की धारा का वेग मन्द पड़ गया, दिन की रंगरलियों से फूलों की सतरंगी मुसकान से, पराग की चहल-पहल से, भौंरों की वंशी और कोयल की विपंची से लगाव छूटने जा रहा है। यह सबकुछ साफगोई के साथ मित्र की भाँति कह जाने वाले विद्यानिवास मिश्र की सहृदयता एवं निष्कलुषता स्वयं सिद्ध है।

कथा और कविता के समान आनन्द देने वाले इनके ललित निबन्ध 'छितवन की छाँह','भोर का आवाहन', 'तुम चन्दन हम पानी' संग्रहों में अधिक है। 'मैंने सिल पहुँचाई' संग्रह में तो भ्रमरानंद ने सीधे कई निबन्धों में पत्र ही लिख डाला है। 'आँचलिक मित्रों से' या 'पत्र इण्टेलेक्चुअल भैया के नाम परम्परा जीजी का' आदि। इनमें आत्मीयतापूर्ण वार्ता का रस टपकना स्वाभाविक है।

हास्य-व्यंग्य की दृष्टि से इनके सभी ललित निबन्ध अधिक वैभवशाली नहीं है, परन्तु मधुर मुस्कान छेड़ जाने में कई निबन्ध समर्थ हैं। मनोविनोद पूर्ण वातावरण बनाने में ऐसे सन्दर्भ सहायक है। ऐसे संदर्भों में निबन्धकार ने आत्मव्यंग्य किया है।'वसंत एक दुःस्वप्न' निबन्ध में इनका आत्मव्यंग्य है-'मैं न साहित्य का हूँ और न अध्यापन का। अध्यापन के पाटे पर बस हाय-हाय है,उसे सुना भी नहीं जाता और घर में प्रवेश नहीं है क्योंकि धोबिन बड़ी रंगीली है, बड़ी बेवफा है वह किसी की है ही नहीं, उसे बढ़िया-बढ़िया साड़ी रोज पहनने को मिलती रहे और एकदम लकदक जब कपड़ों को वापिस करने चलती है, तो

नहीं चाहती मैं उसके साथ चलूं, कहीं उसकी बेवफाई का गवाह न हो जाऊँ।"(48)

अपनी पत्नी और मित्र पर मनोविनोद पूर्ण व्यंग्य इन पंक्तियों में है-"विशेषकर अपनी सहधर्मिणी को भी साथ ले जाना था, उनका बैकुंठ उनके हाथ से निकला जा रहा है और चारो धाम की यात्रा के लिए निरन्तर आग्रह करती रहती है। उत्तर प्रदेश के सूचना विभाग के निदेशक और अपने आत्मीय मित्र ठाकुर प्रसादजी से यों ही चर्चा चली उन्होंने कहा, बदरी-केदार पर पुस्तक हमारे लिए लिख दें, यात्रा की व्यवस्था मैं करता हूँ। इतनी जल्दी यह सब हुआ, मुझे लगा बदरी-केदार को कहीं मेरी चिन्ता हो गयी है।(49)

हास्य-व्यंग्य का निखार तो 'भ्रमरानन्द' उपनाम से लिखे गये निबन्धों में हैं। ऐसे निबन्धों में शिवशम्भु के चिट्ठे' के समान या प्रताप नारायण मिश्र के निबन्धों के जैसा व्यंग्य बाण छोड़ा गया है-'जय रानी अंगरेजी' में अंगरेजी के प्रेमियों द्वारा हिन्दी भाषा की उपेक्षा करनेवालों पर इतना गहरा व्यंग्य है कि विषयान्तर न हो तो इसे ललित निबन्ध न कहकर व्यंग्य रचना ही कहा जायेगा। जैसे-"सम्पादकजी, आप बुढ़ा रहे हैं। मेरी बात मानिए। अंगरेजी सेवन से आपका कायाकल्प हो जाएगा। आपको विश्वास न होगा, यह रत्नकरण व्यूह का शुद्ध देशी वचन हैं। अंगरेजी का प्रयोग तान्त्रिक साधना में प्राचीन काल से चला आ रहा है, ऐं हीं क्लीं, ये सभी बीजाक्षर अंगरेजी से ही आये हैं।"(50) और "अब भी आप हिन्दी के लिए यदि आह भरते हैं तो कहूँगा कि आपके दिमाग की कोई कील ढीली हो गई है। आप राजनीति के पागलखाने में भर्ती हो जाइए। धक्कम-धुक्की में सिर-फुटौवल होगी, कील बैठ जाएगी।"(51)

इसके अलावे भी-"फुलब्राइट स्कॉलर आपको गुलदस्तों से तृप्त कर देंगे और राजपथ से अशर्फी कदम ठुमुक-ठुमुक कर ऊँची एड़ियोंवाली जूती बजाती आती हुई विगलद् यौवना, रंजिताधरा, स्कर्टधरा, पिंगकेशिनी, करेलालोचिनी मदस्खलिताक्षरा आंग्लभाषा आतुरता से आपके अधरों को चूमकर जब आनन्द विह्वल कण्ठ से कहेंगी,'यू आर सो स्वीट' (तुम कितने मधुर हो) तो चौबेजी! आप भूल जाऐंगे कि चौबे हैं, वह भी मथुरिया और उसमें भी कडुए, भूल जाएंगे कि सरस्वती का सम्पादन कभी किया है भूल जाऐंगे कि भ्रमरानन्द ने यह मन्त्र दिया था। सच कहता हूँ आप यही कीजिए, आपका पागलपन अपने-आप दूर हो जाएगा।"(52)

'हिप्पी पंथ' में पढ़े-लिखे सभ्य समझे जाने वाले भारतवासियों पर हिप्पी

पंथी होने का तेवर देखकर इन्होंने व्यंग्य किया है-"बहुत से किसान छोकरे और बहुत मजदूर बाबा बनकर देश छोड़-छोड़ अमरीका में बसते चले जा रहें हैं। सभी अफसर हिप्पी हैं, सभी मन्त्री हिप्पी हैं और सभी अध्यापक हिप्पी हैं। गैरहिप्पी लोग सड़क कूटने, मशीन चलाने और ईंट पाथने में लगे हुए हैं।"(53)

उद्धरण की पंक्तियाँ विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों में सहज ही संदर्भ के अनुकूल मिल जाती हैं ग्रामीण लोकगीत, संस्कृत साहित्य की पंक्तियाँ, रामायण महाभारत के पद, हिन्दी साहित्य की कविताएं ललित निबन्धों में उपस्थित होकर रागात्मकता में वृद्धि करती हैं कहीं-कहीं तो ऐसे उद्धरण योग्य पंक्तियाँ ही शीर्षक बन गयी हैं-'सिवसिर मालती माल', मेरे राम का मुकुट भींग रहा है, धनवा पियर भइले मनवा पियर भइले,' न पनिया का वह मामूल है, काहे बिन सून अँगनवा' इत्यादि।

रहीम की पंक्तियाँ हैं-

"अच्युत चरन तरंगिनी सिव सिर मालति माल।

हरि बनायौ सुरसरी कीजै इन्दव भाल।"(54) इसी उद्धरण से'सिव सिर मालती माल' शीर्षक ललित निबन्ध के लिए लिया गया है। शिरीष का आग्रह' में कालिदास की पंक्तियाँ उद्धृत है-

"कृतं न कर्णापितबन्धन सखे,

शिरीषमागण्डविलम्बिके सरम्।"(55) ऐसे ही अनेक गद्यबद्ध उद्धरण आये हैं। क्योंकि विद्यानिवास मिश्र भारतीय वैदिक युग की सभ्यता संस्कृति तक भ्रमण कर जाते हैं। रामायण और महाभारत के उद्धरणों के बिना तो भारतीय संस्कृति की परम्परा स्पष्ट नहीं हो सकती है।

इन्होंने अपनी भ्रमरानन्दी चिट्ठियों में मन सिहराने वाले, मन के विष उतारकर उसके घाव भरने वाले व्यंग्य का उपयोग किया है तो अन्य निबन्धों में विभिन्न उद्धरणों से भारतीय संस्कृति के अस्तित्व की रक्षा करने का प्रयत्न भी किया है।

संस्कृत, हिन्दी, अंगरेजी भाषाओं के विद्वान भाषाशास्त्री विद्यानिवास मिश्र ने अपने ललित निबन्धों में प्रायः सरल सहज भाषा का उपयोग किया है। इनके ललित निबन्धों के शब्द स्रोत इन भाषाओं के अतिरिक्त ग्रामीण जन जीवन की भोजपुरी बोली भी है। भोजपुरी गीतों की अनेक पंक्तियाँ उपस्थित हो गयी हैं, जिनका रसास्वादन इस बोली को समझने वाले ही पूरी तरह कर सकते

हैं। दूसरी बात यह है कि इनके सभी ललित निबन्धों में एक समान भाषा का प्रयोग नहीं हुआ है। कहीं-कहीं आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की भाषा के समान संस्कृत निष्ठता भी है। जैसे'शिरीष का आग्रह' निबन्ध में एवं भ्रमरानन्दी चिट्ठियों में भाषा का तेवर अत्यन्त आधुनिक चलती भाषा का है। इनमें चिट्ठी-पत्री की भाषा सुबोध हो गयी है। अतः कहना चाहिए कि विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों में विषयविविधता के समान भाषा के प्रयोग में भी विविधता है।

अंत में विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्धों के सम्बन्ध में इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि अध्ययन एवं अनुभव के विस्तृत परिप्रेक्ष से समृद्ध आस्थावान, रूचि सम्पन्न सभर व्यक्तित्व की निजी अभिव्यक्ति में वह सब कुछ विद्यमान है जो विश्व के हिन्दी ललित निबन्ध-साहित्य के स्वरूप के लिए अपेक्षित होगा। अपने'स्व' का अन्वेषणकर्ता अपनी मिट्टी की गंध को, अपने देश के जन-मन की अतीत एवं आधुनिक पर्तों तक को उधेड़कर जितनी कुशलता के साथ पाठक के सामने रखा है, वह प्रशंसनीय है। जिस निबन्धकार को'स्व' से इतना प्रेम है वह निश्चय ही ईश्वर और ईश्वर की प्रतिकृति जड़-चेतन से जुड़ जाता है। इसलिए हम इनके निबन्धों में अपने-आपको पाकर आह्लादित हो जाते हैं। इनके ललित निबन्ध जीवन रस का संचार करके हमें प्रफुल्लता एवं उल्लास प्रदान करते हैं।

(4) धर्मवीर भारती (सन् 1926-1997)

ललित निबन्धकारों के बीच अपने पत्रों एवं टिप्पणियों के साथ उपस्थित होने वाले धर्मवीर भारती कहीं बालमुकुन्द गुप्त के ललित निबन्धों की याद दिलाते हैं तो कहीं डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों का रसास्वादन कराते हैं। इनके ललित निबन्ध एक और समसामयिक समस्याओं का यथार्थ उभारते हैं तो दूसरी और दूर की खबर भी समेट कर लाते हैं। इनकी यायावर वृति का प्रताप है कि अपने देश की वर्त्तमान जीवन व्यवस्था के विभिन्न पहलुओं से लेकर विदेशी बसन्ती समाचार तक अपने ललित निबन्धों के माध्यम से प्रस्तुत कर देते हैं।

इनके ललित निबन्ध इनके द्वारा दिये गये शीर्षकों एवं विधागत वर्गीकरण के आधार पर संदेहास्पद स्थिति बना सकते हैं, परन्तु वास्तव में इन निबन्धों में भारती के सभर व्यक्तित्व से चयनित विषय ढंक जाता है। इनमें विषयान्तर में जाकर विभिन्न समस्याओं को एक साथ रखने की मनमौजी कला है सामान्य विषय के बहाने बात शुरू होती है और गंभीर तथ्यों का सहज भाव से उद्घाटन

होता है। इनमें मनोविनोदपूर्वक सर्वथा मौलिक नये अन्दाज में अपनी बात कहने की आत्मीय शैली ही सबसे बड़ी विशेषता है।

धर्मवीर भारती के अच्छे ललित निबन्ध इनके तीन निबन्ध संग्रहों में प्राप्त होते हैं-

(क) ठेले पर हिमालय (द्वि. सं. 1970 ई.) में (1) फूल पाती (2) लाल कनेर के फूल और लालटेन वाली नाव (3) कैक्टस

(ख)'पश्यन्ती' (द्वितीय सं. 1972 ई.) में (1) शुक्र तारे वाली एक शाम

(ग) 'कहनी अनकहनी' (प्रथम सं. 1970 ई.) में (1) रामायण बतर्ज मेरठ (2) गोरियाँ दी गालियाँ (3) ये ठग हटें तो मुसाफिर को रास्ता मिल जाय (4) विकासोन्मुख व्यवस्थाः ह्रासोन्मुख आत्मीयता (5) बसन्ती समाचार (6) पागल होना बुनियादी अधिकार (7) हाय हाथी! हाय (8) शब्द बदले प्रकाश में (9) जब-जब बोले राजाजी (10) भूत के साथ एक रात (11) रंग की रवायतें।

'ठेले पर हिमालय' संग्रह के ललित निबन्ध संग्रह में पत्र कहे गये हैं।'कहनी अनकहनी' में संकलित टिप्पणियाँ प्रकाशकीय टिप्पणी के अनुसार वैयक्तिक निबन्ध (पर्सनल एसे) हैं। इन टिप्पणियों के विषय में धर्मवीर भारती ने स्वयं लिखा है-"धर्मयुग में'कहनी अनकहनी' स्तम्भ के अन्तर्गत जब ये टिप्पणियाँ प्रकाशित हुई तो लेखक को यह सुखद आश्चर्य हुआ कि हिन्दी का सामान्य समझा जानेवाला पाठक भी बुनियादी सवालों में कितनी गहराई से रूचि लेता है।"(56)

इनके सभी ललित निबन्धों में कथाकृति के समान रोचकता, कथ्य की गहरी मर्मभेदी दृष्टि, चुहल भरी जिन्दादिली और समसामयिक विभिन्न संदर्भों की व्यापकता कुछ इस प्रकार संयोग कर गयी है कि आने वाले कल के पाठक भी इनका स्वागत करेंगे। यह इसलिए कि वर्त्तमान का यह सामाजिक ढांचा भविष्य में रोचक इतिहास बनेगा।

ललित निबन्ध में निबन्धकार जीवन का यथार्थ पाठक के सामने रखता है। वह अपने संवेदनशील मन की बातें स्वच्छन्द भाव से व्यक्त करता है। भारती के ललित निबन्धों में ये सभी विशेषताएँ मिलती हैं। भावुकतावश यत्र-तत्र कल्पना करते हुए कथा का सा आनन्द भरना और सुहृद मित्र की भाँति निजी बातें बतलाने में व्यस्त हो जाना प्रायः इनके सभी निबन्धों में देखा जाता है।'फूल पाती' निबन्ध में ये अपनी अनुभूति व्यक्त करते हुए प्रारम्भ में ही लिखते हैं।-

"सुनो, इस छोटे से फूल बसे घर में मुझे कभी-कभी बड़े अजीब अनुभव हुए हैं। उनमें से एक फूलों की सुगन्ध के बारे में है। मुझे अकसर ये लगा कि ये फूल निरन्तर एकसा। नहीं महकते, रह-रहकर सुगन्ध की लहरें फेंकते हैं। एक जगह खड़े हो जाओ। तेज खुशबू आयेगी फिर मन्द पड़ जायेगी, फिर तेज हो जायेगी।(57)

निबन्धकार ने अपने आँगन के वातावरण के विषय में जो कहा है, वह ठीक इनके ललित निबन्धों के स्वरूप के साथ भी मेल खाता है। इनके निबन्धों की भावुकता, कल्पना और विचार भी इसी प्रकार रूक-रूक कर अंग-अंग भिगोते हैं, रोम-रोम सिहराते लालित्ययुक्त लहर के समान है।

'फूल पाती' में लगता है कि निबन्धकार ने अपनी धर्म पत्नी अथवा प्रेमिका को पत्र लिखा है। इसमें सुखद अतीत का स्मरण हो आता है और संस्मरण की झलक आ जाती हैं।

'सुनो! तुम्हें याद है उस दिन... थोड़ा पानी बरस चुका था और आँगन वाला लान भींगा था ... तुम घूम-घूमकर हमारे गुलाबों की जांच पड़ताल कर रही थीं। तब मैंने गुलदाऊदी के नये गमले दिखाकर कहा था कि अगर मेरा वश चले तो मैं एक नया कलेण्डर जारी करूँ जिसमें दिन, सप्ताह, मास, वर्ष से गिनती न होकर फूलों के बोने, उगने, फूलने और झरने से महीनों और बरसों की माप की जाया करे।"(58) और इस कलेण्डर के अनुसार गुलदाऊदी न खिलने पर लोग पुर न जायें, खिलने पर पुर जायें। फ्लाक्स फूले तो सभी बाहर से लौटकर हलकी रेशमी धूप का आनन्द लेने लगे। ल्यूपिन के छड़ीदार फूल खिले तो गन्ने का रस ढूँढने लगें। नींबू फूले तो वसन्त पश्चमी मान ली जाय और बसन्ती साड़ियों में रूपहले गोटे टांक लिए जायें। आम का बौर लदने पर गरमी के आगमन का एहसास हो इत्यादि।

इस प्रकार जिन्दगी को फूलों से तौलकर, फूलों से मापकर देखना इन्हें अत्यन्त सुखद लगता है। विभिन्न ऋतुओं का हिसाब फूलों के खिलने के आधार पर करना विचित्रता अर्थात् एक चौंकाने वाली बात है। ऐसे उद्धरणों में ही धर्मवीर भारती का प्रकृति-प्रेम पूरा उभार पाता है। निबन्धकार सौन्दर्य का पुजारी हैं। इसलिए इसका मन भटकता हुआ मध्ययुग की नूरजहाँ तक जाता है। वह आगरे के किले में गुलाब के फूल से भरे हौज में स्नान करने वाली, इत्र का आविष्कार करने वाली नूरजहाँ को शेर अफगन और जहाँगीर दोनों

से अधिक प्यार करने की कल्पना करता हैं।अपना दृष्टिकोण स्पष्ट करते हुए कहता है-इसलिए नहीं कि वह सुन्दर थी ... ऊँह कोई...से ज्यादा सुन्दर थोड़े ही रही होगी पर फिर भी मैं उसे इसलिए प्यार करने लगता कि वह फूलों से नहाती थी।"(59)

धर्मवीर भारती का मन फूलों के बहाने अपने दोस्त के घर के सामने आसफुद्दौला का बनाया हुआ चौक चला जाता है, जहाँ बेला, मलौदी, नेवाड़ी, मालती, जूही के मोटे-मोटे गजरे देखता है। इसे दर्द भरे स्वर में गुड्डी का गुनगुनाना भी स्मरण हो आता है। ये फूलों से भरी विस्तर में बेले के फूलों में मुँह छुपाकर सोने की निजी जीवन की रोचक घटना बतलाते हुए कहते हैं-माथे पर, होठों पर, पलकों पर बेले का शीत स्पर्श मुझे आच्छादित कर लेता था!. .. बेचारी अम्मा मुझे रात में जगाकर कहती थी... राम! राम! कैसे सोये हौ भारती? आघी खटिया तो छोड़ दिये हौ... कहीं फूल में इतना मुँह डालकर सोवा जात है। ठण्ड लग जइहै भइया।'(60)

'फूल पाती' निबन्ध में निबन्धकार पते की बात बतला जाता है कि सिरहाने चाँदी के तश्तरी में ढेर-सी गुलाब की पंखुरियाँ रखकर धूपबत्ती सामने जलाने पर बुखार कम हो जाता है। पान के समान पत्तों वाली लत्तर में लगे धण्टी दार नीले फूल सिरहाने रखने पर टायफाइड दूर होता है। लाल कनेर बिमारियाँ नहीं होने देते हैं। साथ ही यह भी कि कुछ फूल जहरीले होते हैं, वे मृत्यु की स्थायी नींद में सुला देते हैं। जायसी कवि की पक्तियों द्वारा यह बतला जाते हैं कि वसन्त पूजन के समय' पद्मावत' में भी सखियाँ बेली, केवडा, चम्पा, केतकि मालती, चेमली आदि फूलों को बीन रहीं थी।

'लाल कनेर के फूल और लालटेनवाली नाव' पत्र के रुप में लिखा गया ऐसा निबन्ध है जिसमें कई कहानियों को समेट लिया गया है। निबन्धकार के शब्दों में-' एक कहानी एक लाल कनेर के गुच्छे की है, वह गुच्छा एक सुकुमार, लहराती हुई तनुयष्टि वाली लड़की के हाथों में है और वह लड़की एक नदी-किनारे रेत में से चली आ रही है, और वह थक गयी है, घाट दूर है और शाम हो गयी है...।' (61) दूसरी कहानी छोटे नीले फूल से उपजी हुई है, जिसमें निबन्धकार का मन डूबने उतरने लगता है इन कहानियों में भावुक मन की विह्वलता का तटबन्ध टूटने लगता है ये कहानियां निबन्धकार के व्यक्तिगत जीवन से जुड़ी हुई है। इनमें निबन्धकार का भोगा हुआ यथार्थ है। इन्होंने स्वयं

लिखा है-

'इन कहानियों को जीने में पीड़ा तो होती है, इनको लिखने में क्या नहीं होती? यह सब क्यों भोगा जाये?'(62)

निबन्धकार इस निबन्ध में बार-बार हवाला देता है कि पत्रोत्तर देना है इसलिए यह सबकुछ लिख रहा हूँ। कहानी जीवन की एक घटना है इसलिए इसे लिखने के लिए यह जीवन के मधुर क्षणों का चयन करता है जिसमें विषाद्युक्त क्षण भी स्मरण हो जाता है। वह अपने जीवन में सार्थक तत्व ढूँढता है परन्तु कुछ हाथ नहीं लगता। शाश्वत सत्य कुछ भी नहीं है जो किसी के जीवन में सतत् प्रवाहमान हो। दूसरों के मन को स्वयं के साथ जोड़कर देखना, उसे सार्थकता प्रदान करना गलत हैं। इसलिए विचारों के भावयुक्त टकराव में कहानी लिख पाने में लेखक असमर्थ हो जाता है। इस प्रकार निबन्धकार ने मन की मौज में एक कहानीकार के अंतरमन की पीड़ा स्पष्ट कर दी हैं।इसके विचारों में विखराव है, असम्बद्धता है, कल्पना और यथार्थ का समन्वय हैं स्वाधीन मनः स्थिति में रचित इस ललित निबन्ध में बात में से बात फूटती चली जाती हैं।इन्होंने इस निबन्ध में 'गुनाहों का देवता', सूरज का सातवां घोड़ा' के पात्रों को काल्पनिक बतलाकर कहानी की अव्यावहारिकता भी स्पष्ट कर दी है।

'ठेले पर हिमालय' संग्रह के इन दोनों निबन्धों में भारती की जो महत्वपूर्ण लेखन शैली अन्य निबन्धकारों से अलग कर देती है, वह है-रोमाँटिक शैली। सौन्दर्य और प्रेम के पक्षधर भारती की अनेक पंक्तियाँ बार-बार इनके इस व्यक्तित्व को सामने लाकर खड़ी कर देती है। यही कारण है कि इनका फूलों के सौन्दर्य से लगाव है। इन्हें फूलों भरे हौज में स्नान करने वाली नूरजहाँ अधिक प्यारी लगती है। ये समय को फूलों के कलेण्डर में बाँध देना चाहते हैं। लाल कनेर के फूलों का गुच्छा लहराती हुई तनुयष्टि वाली लड़की के हाथों में दिखता हैं। चाँदनी रात में इनका क... (शायद निबन्धकार की पत्नी) सो गयी थी, और कटहल की टहनियों में, पत्तों को बड़ी मुश्किल से भेदती हुई चाँद की एक किरण... उसके बेसुध अस्त-व्यस्त बदन पर बड़ी सी सफेद तितली की तरह पंख फैलाकर बैठी हुई थी। चारों तरफ गहरा सन्नाटा था।'(63) इन्हें'कुछ खो गया है' की अनुभूति होती हैं।ये अकारण उदासी से घिर जाते हैं। समूची जीवन-दृष्टि के टूट जाने के विषाद से भर जाते हैं। वर्षों पूर्व का अलस सौन्दर्य, अपरिचित अतृप्ति जो सार्थक एवं शाश्वत प्रतीत होकर रसमग्न करती थी,

अब निरर्थक लगने लगती हैं। अब अथाह अकेलापन है, खामोशी है बस। इस प्रकार इन निबन्धों में भारती कवि ही अधिक रहें हैं और वह भी सौन्दर्य एवं प्रेम के कवि। यथार्थ का बोध भी है, परन्तु उसमें भी भावुकता छलकती हैं। इनके व्यक्तित्व का निखार इन्हीं निबन्धों में अधिक मिलता है।

'कैक्टस' आधुनिक साहित्य और साहित्यकार सम्बन्धित ललित निबन्ध है, जिसमें डॉ. धर्मवीर भारती अपने कैक्टस के गमलों को संवारते समय दिनकर, बोरकर एवं लक्ष्मी नारायण लाल जैसे सुप्रसिद्ध साहित्यकारों के बीच उठी आधुनिक साहित्य और कैक्टस वाली बात स्मरण करते हैं। इसमें चौकाने वाले वर्त्तमान साहित्य से सम्बन्धित अनेक तथ्य उभर आये हैं। निबन्धकार विषयान्तर में जाकर यह बतलाता है कि जिस प्रकार कैक्टस पानी और खाद के अभाव में बालू या कंकड़ीली मिट्टी में कड़ी धूप सहता हुआ जीवन की अदम्य घोषणा करता हुआ उगता रहता है, बाहर कांटे और अन्दर रस। उसी प्रकार वर्त्तमान साहित्यकार भी अनेक कठिनाईयों, विरोधों और देखभाल के अभाव में विकसित होता रहता है। अतः इस नये साहित्य को देखकर चौकने वाले रूढ़िवादियों पर व्यंग्य है।

'पश्यन्ती' निबन्ध संग्रह के 'शुक्रतारेवाली शाम' और एक खत' के 'ठेले पर हिमालय' संग्रह के निबन्धों के समान ही धर्मवीर भारती भावात्मक एवं काव्यात्मक ऊँचाई पर पहुँच जाते हैं। शेष निबन्धों में विचारों की प्रधानता झलकती है।

'शुक्रतारेवाली शाम' में शुक्रतारा की अकस्मात् चमक देखकर निबन्धकार को कीट्स की पंक्तियाँ स्मरण हो आती हैं जिसका अर्थ है-'ओ जगमगाते नक्षत्र। काश कि मैं उतना ही अविचल होता जितने तुम हो!'(64) इसके बाद स्वयं को इस पंक्ति से जोड़कर अपनी सृजनशीलता के लिए स्थिर क्षण की आवश्यकता महसूस करते हैं। यह विचल स्थिरता की मनोभूमि बनाना इन्हें बहुत कठिन प्रतीत होता है। इसलिए बार-बार अपनी प्रिया के साथ गुजरे हुए दिनों के क्षणिक स्थिर वातावरण को याद कर जाता है। उधर कीट्स की कविता है जिसमें स्थिर, अपरिवर्तित अपनी रम्य प्रिया के घीरे-घीरे खिलते हुए वक्षस्थलों पर माथा रखे कीट्स स्थायित्व का द्वीप खोज रहा था तो इधर धर्मवीर भारती गंगातट की एकांत नीरवता, प्लेटफार्म की भीड़ चीरते हुए पत्नी से कहे गये वाक्य कि 'अब कैशोर्य से मुक्त होकर हम दोनों बड़े हो गये हैं।' आदि को

बहुत आत्मीयतापूर्वक समझाता जाता हैं। यदि विषयान्तर एवं कल्पना में मिश्रित यथार्थ को भूला दिया जाय तो यह निबन्ध भावात्मक श्रेणी में आ जायेगा। इसी प्रकार 'एक खत' में भी भाव तत्व कम नहीं है। परन्तु इन दोनों निबन्धों में जो बतकही है, आत्मपरकता और आत्मीयता है, स्वच्छन्दता और धारा-प्रवाह शैली का बीच-बीच में टूटने का संकेत है। लालित्य का विश्रृंखलित प्रवाह है। वही इन्हें ललित निबन्ध के अंतर्गत रख देती है। प्रेम और सौन्दर्य के चितेरे धर्मवीर भारती स्थान-स्थान पर सौन्दर्य और प्रेम की मोहक तस्वीर खींचते हैं-

'हमारी उम्र के चारों और दिशा और काल की जो परिधि थी, उसे अर्द्ध-रात्रि के उस रजनीगन्धा क्षण में हमने तोड़ दिया। अब हम वक्त में बंधे नहीं रह गये, उसे चीरकर अकस्मात एक ऐसे क्षेत्र में प्रविष्ट हो गये जहाँ कुछ बदलता नहीं, घटता नहीं, खोता नहीं, नष्ट नहीं होता- एक अजीब से जादू का रहस्यमय देश जहाँ कुछ भी वृद्ध नहीं होता न यह गुलाब-लदा तन और न मोम-दीप सा मन।

वह एक सर्वथा नवीन सृष्टि है जहाँ आधी रात की सांवली कसौटी पर कसी हुई कंचन रेखा सी, तुम्हारे चम्पकवर्णी जिस्म की दिव्य आभा कभी मलिन नहीं होगी। उस बड़े गुलाब की पांखुरी से जिसे मापा था-वह अकलुष मन सदा-सदा के लिए अर्द्ध उल्लसित, लज्जित गति से धड़कता जायेगा कभी भी मन्द नहीं पड़ेगा।'(65)

'एक खत' उदासी के क्षण में 'स्व' का अन्वेषण करता हुआ निबन्धकार कहता है-'तुम कितनी कितनी दूर हो और आज इस वेला में मेरा वह बहुत पुराना प्यारा अलसाया सा मूड लौटा है, तुम से ढेर-ढेर सी नॉन्सेन्स बातें करने का। न, गंभीर बातें नहीं, याद-वाद भी नहीं, भविष्य-अतीत भी नहीं, मात्र तुमसे बातें करने का सुख।'(66)

और एक-दूसरे की आवाज के माध्यम से एक साथ बैठे बातें करने का दृश्य-विधान रख दिया है। इसके बाद व्यक्तिगत से निकलकर सम्पूर्ण मानवीय समस्याओं का भेद खोलता हुआ, असत्य, कटुता और छिछलेपन को तोड़ता-मरोड़ता कम करता हुआ, गहरे और व्यापक अर्थ वाली समस्याओं से जूझता निबन्धकार आगे बढ़ता हैं।लेकिन दार्शनिक गवेषणा के बोझ में बहुत दब नहीं गया है। इनका भावुक हृदय बोल उठता है-'काश किसी तरह हर तीसरे दिन वहाँ से तुम रजनीगंधा के फूल भेज सकती। रजनीगंधा से कुछ याद

आया- क्या मैं इस वाक्य को पढ़ने के बाद की तुम्हारी मुद्रा प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। भृकुटि टेढ़ी, मन गद्गद्-क्यों है ना।'(67)

'कहनी अनकहनी' के ललित निबन्धों में रोमाँचकारी समसामयिक समाचारों का सजीव सम्प्रेषण, नवीन मूल्यों के अन्वेषण की छटपटाहट, रागबोध के स्तर पर जनचेतना से जुड़ने की क्रियाशीलता और सामान्य से सामान्य समाचार पर भी विशेष ढंग से तीखी प्रतिक्रिया मिलती है।

इन निबन्धों में चित्रित संपूर्ण समसामयिक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय जीवन-परिवेश, विसंगतियों और अन्तर्विरोधों की तीखी अनुभूति उस पर व्यंग्य-वाणों का तीखा प्रहार बाल मुकुन्द गुप्त के 'शिवशम्भु के चिट्ठे' के ललित निबन्धों की याद दिलाता है।

'शिवशम्भु के चिट्ठे' में जहाँ तत्कालीन प्रशासन की जनहित विरोधी व्यवस्था पर व्यंग्याघात है, वहीं धर्मवीर भारती के 'कहनी अनकहनी' के ललित निबन्धों में वर्त्तमान सामाजिक विसंगतियों पर व्यंग्य का तीखा प्रहार है। रामायण बतर्ज मेरठ' में रामायण के पात्रों से फिल्मी गीतों का उच्चारण करवाना-राम से-'यह शहर बड़ा अलबेला...।,'चौदहवीं का चाँद हो या आफताब हो...।' लक्ष्मण से-'मेरा यार बना है दूल्हा...।' सूर्पणखा से-'प्यार किया तो डरना क्या...।' रावण से-'तेरे द्वार खड़ा भगवान, भगत भर दे रे झोली...।' उर्मिला से-छोड़ गये बालम, हाय...। और सीता से अशोक वाटिका में-'भीगा-भीगा है समाँ, ऐसे में है तू कहाँ मेरा दिल ये पुकारे आ जा।'(68) सुरूचि और संस्कृति के प्रति अपमानजनित तथ्य होने के कारण निबन्धकार के आक्रोश को बेहद बढ़ा देता है। इन्हें कीर्तनों में फिल्मी घुनें पीरोये जाने से नफरत है इसलिए कहते हैं-'किसी कस्बे में जाकर अखण्ड कीर्तन सुनिए-'मोहै छोड़ गये बालम की जगह आप सुनेंगे, मोहै छोड़ गये मोहन, हाय अकेला छोड़ गये। 'या' कृश्नकानैया, छोड़ मोरी बहियाँ, हो गयी आधी रात, अब घर जाने देऽऽ।' कीर्तन के नाम पर ये फिल्मी घुनें क्या धर्म का सम्मान है? क्या ये कीर्तन पढ़े लिखे अनास्थावान छात्र ही करते हैं।'(69) इसी प्रकार सीता, पार्वती, राधा आदि की फिल्मी साज सज्जा वाली तस्वीरों और भड़कीले कलेण्डरों के वर्त्तमान प्रचलन पर भी इन्हें क्रोध आता है। अतः इन कलात्मक रूचियों में मर्यादित सुरूचि पैदा करके परिष्कार करने पर बल देते हैं।

ये 'ठग हटें तो मुसाफिर को रास्ता मिल जाय' में आधुनिक सामाजिक

जीवन की समस्या उठाते हुए कहते हैं-'क्या कारण है कि आज चारों और आत्मीयता के बजाय आपसी डर का वातावरण बढ़ता जा रहा है। और यह डर सिर्फ एक मजहब और दूसरे मजहब वाले के बीच नहीं, एक प्रान्त और दूसरे प्रान्त, एक भाषा और दूसरी भाषा, एक जाति और दूसरी जाति, एक वर्ग और दूसरे वर्ग के बीच पैदा हुआ है। सब एक दूसरे से अन्दर-अन्दर डरते हैं और फिर यह डर कायरतापूर्ण नृशंस आक्रमणों में प्रकट होता है।'(70) और इसका असली रोग-चित्त में व्याप्त अविश्वास, आशंका, द्विविधा को बतलाकर इन प्रवृत्तिगत ठगों को हटाने की जरूरत महसूस करते हैं।

'पागल होना बुनियादी अधिकार' में भूतपूर्व वाइस चांसलर के उत्तेजित होकर कहे गये वाक्य-' मुझे उत्तेजित होने का पूरा अधिकार हैं। मुझे पागल तक होने का बुनियादी अधिकार है।' और वित्तमंत्री के भरे अधिवेशन में कुरसी पर सो जाने की घटना को खींचकर कहते हैं-'क्या बात है कि एक असमय अस्वस्थ तन्द्रा हमारी समूची प्रजातन्त्रीय व्यवस्था पर छायी हुई है जिसके लक्षण आये दिन प्रकट होते रहते हैं, और क्या कारण है कि बाहरी और अन्दरूनी दोनों किस्म के तनाव इस कदर हमारे बुद्धिजीवियों (अध्यापकों, लेखकों, पत्रकारों, चिन्तकों) में है कि वे या तो कुण्ठित कर जाते हैं या आवेश ग्रस्त उन्माद की सीमा तक ले आते हैं।'(71)

इस प्रकार भारती के ये टिप्पणी के रूप में लिखे ललित निबन्ध समकालीन इतिहासचक्र से सम्बद्ध होकर अत्यन्त महत्वपूर्ण बन गये हैं। स्थान-स्थान पर समकालीन विडम्बनाओं को कहनी और अनकहनी दोनों रूपों में जोड़कर अत्यन्त मूल्यवान बनाया गया है। सामान्य रूचिकर मसलों को उठाकर आसपास की दुनिया में भ्रमण करता हुआ समाचार संकलनकर्ता निबन्धकार एक प्रकार से अपने उस व्यक्तित्व का परिचय दिया है, जिसमें परिवेश के प्रति संवेदनशीलता एवं जागरूकता मिलकर वर्त्तमान अव्यवस्था में जीने की कामना करता है-'काश कि आज कोई ऐसा आविष्कार होता कि शब्द आग में नहीं प्रेम की कड़ी में, हमदर्दी की मुस्कान में बदल पाते। लेकिन विज्ञान ऐसे किसी भी आविष्कार में असफल रहा है।'(72)

धर्मवीर भारती न केवल सामाजिक, राजनीतिक जीवन तक ही अपने विचार दौड़ाते हैं बल्कि धर्म-दर्शन तक भी मुक्त चिन्तन करते हुए पहुँच जाते हैं।'जब-जब बोले राजाजी' निबन्ध में इन्हें आजकल प्रचलित 'उपवास के

बढ़ते' शोर में आत्मशुद्धि की अपेक्षा राजनीतिक हथकण्डे ही अधिक दिखते हैं। इसलिए कहा है-'जैसे आजकल के उपवास, आत्मशुद्धि के लिए नहीं होते इसलिए उन पर ईसा, गौतम, महावीर या गाँधी के उपवासों की कसौटी लादना असंगत है, वैसे ही राजाजी जैसे महान आधुनिक सन्त के प्रवचन भी अध्यात्म के लिए नहीं होते राजनीति के लिए होते हैं। जहाँ राष्ट्र की आध्यात्मिक एकता की बात करने से काम बनता हो, वहाँ उसकी बात कीजिए और जहाँ प्रान्तीयता की कट्टर पन्थी प्रतिक्रियावादी भावनाएँ भड़काने से यश बढ़ता हो वहाँ वैसी बात कीजिए।' (73)

ऐसे ही अवतरणों में भारतीजी की व्यंग्य कला का भी दर्शन हो जाता है। धर्माधिकारियों द्वारा राजनीति को मोड़ देने के गलत तरीके पर इन्होंने व्यंग्याघात् कर दिया हैं। इनके ललित निबन्ध'हाय हाथी हाय' में उत्तर प्रदेश के उस प्रशासनिक बदलते तेवर पर व्यंग्य है, जिसमें उपयोगिता से अधिक अनुपयोगिता दिखलाई देती हैं उदाहरण के लिए' सांस्कृतिक समारोहों में वयस्क लड़कियों के कलात्मक नृत्य देखने से पुरूषों की नैतिकता बदल जाने के भय से उसके खिलाफ कानून बनाया जाना' और हाथियों की बढ़ती आबादी देखकर उन्हें मारने की व्यवस्था करना।'भूत के साथ एक रात' में उपाधि, पदवी, पुरस्कार प्राप्त करने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य द्रष्टव्य है-'लेकिन अगर अब उपाधि का मोह बरकरार रखना है तो उन खण्डहरों से लगाव रखना ही पड़ता है, जिनमें उपाधि वगैरह की मनोवृत्तियाँ पनपीं।'(74)

'गोरियां दी गालियां' में भारती ने उस समाचार का जिक्र बहुत बारीकी के साथ किया है, जिसमें पंजाब की ग्रामीण औरतों की आपसी गाली-गलौज को टेप करके वहाँ की विभिन्न बोलियों का शब्दकोश बनाने का जिक्र है। परन्तु, यह इतना आत्मीय, मनोविनोदपूर्ण एवं यथार्थ है कि लालित्य से सराबोर किए बगैर नहीं छोड़ता। प्रारम्भ में ही कहा गया है-'गालियों के बारे में सूबा पंजाब में जो नयी वैज्ञानिक दृष्टि अपनायी गयी है,... उसे जान लीजिए वरना पछताइएगा।'(75) और आगे विस्मय भरा वाक्य यह भी कि 'केवल पंजाबी का शब्दकोश बनाने वालों ने ही औरतों की गाली गलौज को इतना शब्द-सम्पन्न क्यों माना? इसमें क्या यह भाव निहित है कि दूसरे प्रान्त की औरतें इस दिशा में उतनी सम्पन्न नहीं हैं?'(76) इसके साथ ही हिन्दी भाषा को मिलने वाली गालियों की उपयोगिता और अंगरेजी भाषा के चहेतों पर व्यंग्य करता हुआ

निबन्धकार निबन्ध का समापन करता है।

'रंग की रवायतें' में दक्षिण अफ्रीका के रंगभेद का मसला उठाकर बहुत ही रोचक ढंग से गोरे-काले के भेद की समस्या में हजार टन लोहे के व्यवसाय को उलझा हुआ बतलाया है। 'बसंती समाचार' पढ़कर तो आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध 'आम फिर बौरा गये' की याद ताजी हो जाती है। द्विवेदी जी अपने निबन्ध में भारतीय सभ्यता-संस्कृति के स्रोतों को ढूँढ़ रहे हैं तो भारतीजी अपने इस निबन्ध में बम्बई की भीड़ में व्यस्त जीवन के बीच आधुनिक ढंग से बसन्त आगमन का आनन्द ले रहे हैं। दिल्ली, तेहरान, जकार्ता, टोकियो आदि व्यस्त शहरों में वसंत के आने का समाचार ढूँढ़ रहे हैं। चीन में वसन्त का प्रथम सप्ताह 'जनता को प्यार करो सप्ताह' के रूप में मनाने के समाचार तक भारती का मन दौड़ जाता है।

धर्मवीर भारती के प्रायः सभी ललित निबन्धों में उद्धरणप्रियता मिलती है। चूंकि इन्होंने भावात्मक शैली और समाचार जुटाने की प्रवृत्ति अपनायी है। इसलिए इनमें उद्धरणों के माध्यम से अपने कथ्य को अधिक स्पष्ट करने और उसे सुरूचिपूर्ण बनाने का गुण मिलता हैं। इनके निबन्धों में रामायण-महाभारत से लेकर विदेशी भाषा के साहित्य तक से उद्धरण लिए गये हैं। तानसेन की पंक्तियाँ-

'मैं राम-राम कह टेरों। मेरो मन लागो उन्हीं सीतापति पद हेरो।

या जोश साहब की पक्तियाँ-

'अयालो माल ने रोका है दम को आँखों में

ये ठग हटें तो मुसाफिर को रास्ता मिल जाय।'(77) एक ही निबन्ध में प्रस्तुत है। पद्यबद्ध पंक्तियाँ माखनलाल की प्रख्यात पुस्तक साहित्य देवता से-

'जो आशिक है वह साहब फांदकर दीवार आता है।' ही नहीं गद्यबद्ध उद्धरण भी वसंती समाचार' में उपलब्ध है-'एशिया के रहस्यवाद ने हमेशा यह सिखाया है कि जब कभी किसी स्त्री के प्रति प्रेम मन को ज्यादा परीशान करने लगे तब तुरन्त उसको पारलौकिक प्रेम में बदलदो। सूफियों ने इसी को कहा था कि 'इश्क मजाजी' को 'इश्क हकीकी' में बदल दो।'(78) समसामयिक दैनिक समाचार पत्रों के समाचार तो कई निबन्धों में उल्लिखित है ही।

विषय की विविधता एवं व्यापकता से भरे समाजशास्त्री, राजनीतिज्ञ, घुमन्तू वृति वाले और सामान्य विषय में भी रोमाँचकारी अनुभूतियाँ ढूँढने वाले धर्मवीर

भारती के ललित निबन्ध व्यक्ति को संकट से बाहर निकलने का मार्ग प्रशस्त करते हुए दिख पड़ते हैं। परन्तु, कहीं कोई रास्ता भी नजर नहीं आता। बस यथावत स्थिति में सबकुछ रह जाता है। केवल उस बाज के घोंसले में इकट्ठी सामग्री की तरह, जिसे स्वच्छन्द विचरण क्रम में झपट्टा मार-मारकर लाया और इकट्ठा किया है। हाँ इसकी सबसे बड़ी उपयोगिता यह है कि इसमें वातायन से सुगन्ध और जीवन-कुसुम से रस एवं आनन्द के अनेक तत्व लाकर रखा है। जिसे चाहिए थोड़े से समय में संक्षिप्त सार प्राप्त कर मन प्रसन्न कर सकता है। यह इसलिए कि कभी-कभी तमाम जरूरी काम से हटकर गैरजरूरी रास्तों पर भटक जाना भी स्वास्थ्यवर्धक होता है। सदैव लीक में चलने की नीरसता दूर होती है। और सबसे बड़ी बात तो यह है कि यह सारा कुछ भारती ने सहज प्रवाहपूर्ण भाषा-शैली में प्रस्तुत किया है। न पांडित्य का लदाव है और न कोई आडम्बर। प्रकृति से सान्निध्य स्थापित कर रहे हों अथवा दार्शनिक चिन्तन में थोड़ी देर के लिए डूब जाते हों, सर्वत्र बोझिलता से दूर नजर आते हैं। इनकी भाषा एक मधुर संवाद का सुख देती है। हाँ कहीं-कहीं भावात्मक प्रवाह में डूबते समय या 'स्व' के विश्लेषणक्रम में लम्बी पंक्तियों, लम्बे संदर्भों में खो जाने का भय अवश्य होता है इसके बावजूद बिलकुल अपरिचित शब्दों से मुठभेड़ शायद कहीं नहीं होगा। चाहे वह संस्कृत, हिन्दी, उर्दू-फारसी या अंगरेजी का ही शब्द क्यों न हो। आवश्यकता पड़ने पर अर्थबोध स्वयं कराते जाते हैं।

अंत में यही कि इनकी सभी ऐसी टिप्पणियाँ, ऐसे पत्र जिनमें ललित निबन्ध का स्वरूप मिलता है, निबन्धकार धर्मवीर भारती के प्रतीभाशाली व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति से रंजित है। संसार के छितराये हुए स्वर्ण कण हों अथवा जीवन के रंग-विरंगे पूष्पों में विभिन्न स्वाद की प्रतीति कराने वाला रस, व्यंग्य की बौछारों से सिर बचाते हुए पाठक सब कुछ पा सकता है। वर्त्तमान जीवन जीता हुआ पाठक ही इनके यथार्थ का आकलन कर सकता है तथा विसंगतियों के प्रति आक्रोश को समझ सकता हैं यही उस में कैक्टस की भाँति जीवन-रस का भी पान कर सकता हैं रेगिस्तान में खिलने की क्षमता इसी में है। धर्मवीर भारती इस व्यस्त जीवन जीते हुए क्षण में भी नजर पड़ते ही शीर्षक से आकर्षित करके पाठक को अपनी और खींच लेने में समर्थ हैं। बहुत आत्मीयता के साथ सहज भाव से निजी विचारों को अभिव्यक्त करने में इन्हें पूरी सफलता मिली हैं। इनके ललित निबन्ध संख्या में कम होकर भी अच्छे ललित निबन्धों की

विशेषताओं से युक्त हैं।

5. कुबेरनाथ राय (सन्—1935)

ललित निबन्धकार कुबेरनाथ राय ने पूरीनिष्ठा और मनोयोग के साथ ललित निबन्ध विधा की परम्परा को आगे बढ़ाया है। इनके कुछ ललित निबन्धों में विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों के समान आंचलिकता का पूट या गंवई गुलाब का गंध है तो कुछ निबन्धों में इसका अतिक्रमण करके सम्पूर्ण भारतीय सभ्यता-संस्कृति की तह तक प्रवेश कर जाने की हजारी प्रसाद द्विवेदी की प्रवृत्ति भी है। जहाँ धर्मवीर भारती अपने ललित निबन्धों में सौन्दर्य और प्रेम के झूले झूलते रहते हैं वहाँ कुबेरेनाथ राय रुप, रस, गंध राग, रंग से भीगे कामान्ध भौरें की तरह देह-वल्कल तक को भेदकर योगनिन्द्रा में लीन हो जाते हैं।

इनके ललित निबन्ध उदात, गहरे और रोचक हैं। इनमें बालमुकुन्द गुप्त के 'शिवशम्भु के चिट्ठे' या भ्रमरानन्द के पत्रों' के समान व्यंग्य-विनोद ढूँढ़ना व्यर्थ है। प्रतापनारायण मिश्र की चिढ़ भरी व्यंग्यवाणी के स्थान पर कहीं-कहीं क्रोध-आक्रोश अवश्य ध्वनित होता हैं। वस्तुतः कुबेरनाथ राय ऐसे ललित निबन्धकार हैं, जिन्हें वर्त्तमान औद्योगिक संस्कृति के विकास के साथ बौद्धिकता के बढ़ते दायरे में भी ग्रामीण जीवन की उल्लास साधना को जीवित रखने की आकांक्षा है। निर्वासित अभिशप्त जीवन में भी रस, गन्ध, हर्ष-विषाद भरकर सामान्य सहज जीवन बोधक तत्वों का पर्णमुकुट अर्पित करना इनका ध्येय है।

इन्होंने एक सौ से भी अधिक निबन्धों की रचना की है, परन्तु ललित निबन्ध की कसौटी पर खरा उतरने वाले निम्नलिखित निबन्ध ही उल्लेखनीय हैं-(क) 'प्रियानीलकंठी' (प्रथम संस्करण-1968 ई.) संग्रह के-(1) सनातन नीम (2) मनियारा साँप (3) अवरूद्ध त्रेताः प्रतीक्षारत धनुष (4) सम्पाती के बेटे (5) चण्डी थान (6) निर्वासन और नीलकंठी प्रिया (7) निर्गुण नक्शेः सबुज श्याम धरती।

(ख)'रस आखेटक' (प्रथम संस्करण-1970 ई.) संग्रह के-(8) रस आखेटक (9) देह वल्कल (10) दर्पण विश्वासी (11) हरी हरी दूब और लाचार क्रोध (12) जम्बुक।

(ग) 'गन्धमादन' (प्रथम संस्करण-1972 ई.) संग्रह के-(14) शब्दश्री (15) नदी तुम बीजाक्षरा (16) अन्नपूर्णा बाणभूमि (17) राधवः करूणो रस (18) चित्र-विचित्र (19) जल दो, स्फटिक जल दो (20) शरद्-बाँसुरी और विपन्न

मराल (21) उजडु वसन्त और हिप्पी जलचर (22) विकल चैत्ररथी (23) किरण सप्तपदी (24) सनातन नदीः अनाम घीवर।

(घ) 'विषादयोग' (प्रथम संस्करण-1973 ई.) संग्रह के- (25) मुकुलोद्गम (26) उत्तराफाल्गुनी के आसपास (27) परास्तनरक (28) कैक्टसवन की नायिका (29) यक्षरात्रि (30) व्यथातीर्थ (31) मेघ, मण्डूक और आदिम मन (32) नारायण : प्रतिनारायण।

(ङ) 'पर्णमुकुट' (प्रथम संस्करण-1978 ई.) संग्रह के-(33) मधु-माधव पुनः पुनः (34) आभीरिका (35) ढलती रात में मालकोश (36) अर्धरात्रि के राग-यक्ष (37) जीव-हंस की रात्रि-प्रार्थना (38) मैं तालपत्र, मैं भोजपत्र (39) दिवस-सप्तक (40) सतूखोर आर्य (41) पुनः हेमन्त की संध्या

(च) 'मन पवन की नौका' (प्रथम संस्करण-1982 ई.) संग्रह के-(42) मन पवन की नौका और (43) क्षीर सागर में रतन डोगियाँ।

(छ) 'निषाद बाँसुरी' (दूसरा संस्करण 1982 ई.) संग्रह के-(44) गं गं गच्छति गंगा (45) निषाद बाँसुरी (46) पाहन नौका (47) फागुन डोम (48) पुनः चंडीथान (49) रक्षादीप।

'निषाद बाँसुरी' संग्रह के दो निबन्ध 'पुनः चंडीथान और 'रक्षादीप' प्रियानीलकंठी संग्रह के चण्डीथान निबन्ध के ही परिष्कृत रूप है। इन निबन्धों में पुनः एक बार भारतीय सांस्कृतिक जीवन-सौन्दर्य को लोक जीवन में देखने का प्रयास किया गया है। नवीन जीवन-दृष्टि का स्रोत ढूँढ़कर सुखद वातावरण का निर्माण हो सके यही निबन्धकार का लक्ष्य है। इन दो ललित निबन्धों के विषय में 'समीक्षा पत्रिका' में उचित ही लिखा गया है कि-

'मतसा गाँव के समीपवर्ती दूसरे गाँव ढढनी की चर्चा से दो रचनाएँ उठी हैं 'रक्षादीप' और पुनः चंडीथान'। जिन ढूहों और टीलों को देखकर भी आदमी नहीं देखता है उसके भीतर से जीवन्त सांस्कृतिक इतिहास और जीवन बोध को खोज निकालना एक अद्भुत चमत्कार है। गहरी आस्था, तल्लीनता, भावुकता, निश्छलता और आधुनिक लेखक की तीक्ष्ण तर्कशीलता से भरे ये निबन्ध अन्धभक्ति नहीं, नयी दृष्टि के प्रवर्तक हैं।'[79]

कुबेरनाथ राय के ललित निबन्ध निजीजीवन से लेकर धर्म-दर्शन तक, मन की विभिन्न दशाओं से लेकर प्रकृति के विभिन्न उपादानों तक, अतीत से लेकर वर्त्तमान जीवन दर्शन तक विभिन्न विषयों को समेटे हुए हैं। ये सभी

विषय इनकी यायावर प्रकृति के कारण विश्रृंखलित रूप में अभिव्यक्त हुए हैं। इन्होंने अनुभव किया है-'फागुन की नयी-नयी फागुनी हवा और उसके बाद चैत के बरसते फूल। नवीन का यह उच्छृंखल उल्लास शीशम और नीम पर मन्द-मन्द, पर सेमल-पलास पर पूरे रोष के साथ, फूटता है। अंग-अंग में नये खून का दौरा होता है। फिर बैशाख-जेठ की तीव्र लू। प्रखर ज्वलन्त बवण्डर उठते हैं।'(80)

इनके लिए नीम का पेड़ सारे कुतूहलों, सारे उल्लासों का कुरूक्षेत्र है, नीम का फूल किसी कोमल विधा का, कुछ शेष का और'साहित्य की उस नयी विधा का प्रतीक है जो समूची निराशा और पराजय का अतिक्रमण करके जीवन में जीने योग्य क्षणों के दानों को एक-एक करके चुन रही है।'(81)

इनका कहना है कि 'इस खुले आकाश के नीचे सोने सी चमचमाती और बरसती हुई क्वार-कार्तिक की धूप, ज्वार-बाजरे के पट्ट-पर-पट्ट खड़े खेतों की सेना और बीच से अपना बाग अथवा शरद् की बरसती चाँदनी, आकाश और धरती की बातचीत, ऐसे परिवेशों में बाहर निकलता हूँ तो मैं पेड़ों, पौधों, मस्त हवाओं और सुनहली किरणें जैसी प्रेमिकाओं के बीच मन को मुक्त भाव से बाँटने लगता हूँ। तब लगता है कि लॉरेन्स झूठा था, फ्रायड कपटी था। प्रकृति की मुक्त और अनन्त छवि को सम्मुख पाकर मन के रस बोध का दायरा इतना विस्तृत हो जाता है कि'जिस्म' का वह आकर्षण जो बद्ध सीमित शयन कक्ष के अन्दर 'बद्ध' मन को रेशमी माया बुनकर बाँधता है, इस महिमा में विलीन हो लापता हो जाता है।'(82)

सम्पाती के इस बेटे का जन्म ही हुआ है हरे-हरे खेतों, खपरैल के मकानों, इमली और नीम के पेड़ों, चबूतरों और बिरवाइयों से भरे गाँव में। इसलिए निर्वासित जीवन में बार-बार अपने गाँव, पाठशाला, चण्डीथान का स्मरण ताजा हो जाता है। इनका रस आखेटक मन कहता है-

'अपनी भूमि, अपनी धरती तो अपनी माँ है। यहाँ पर रस आखेटक शिशु की तरह भरपेट वात्सल्य रस, सख्य रस, कान्ता रस, दास्य रस और निर्वेद-रस का पान कर सकता है।'(83)

अतः स्वयं की तुलना गाँव के डोम बच्चों के साथ करते हुए अपने को उन्हीं की तरह धरती का चप्पा-चप्पा छानते फिरनेवाला समझते हैं-'कि कहीं विधाता की भूल से कोई रस की बूँद छूट गयी हो, तो उस का आहरण कर

लें।'(84)

इन्हें गंगातट की उर्वर 'अन्नपूर्णा वाण भूमि' पर गर्व है क्योंकि धन-ध्यान्य से सम्पन्न यह भूमि इनकी मातृ का रही है। दूर-दूर तक इसे शस्य सम्पन्न देखकर मन पुलकित हो जाता है।'यहाँ के बच्चे खट्टे-मीठे बेर, चने का साग चबाते हैं मोटी रोटियाँ खाते हैं और गंगा का पानी पीकर स्वस्थ तगड़े रहते हैं। यहाँ के सघन खेतों की पगडण्डियों पर चलते हुए लगता है कि किसी अरण्य में खो गये हैं। ज्वार-बाजरा, गन्ना, गेहूँ, धान, चना, मूंग, उरद से भरे इस क्षेत्र में दूध की भी कमी नहीं है गंगातट का वदरीवन पंख-पखेरूओं और जानवरों से भरा है।'(85)

इस प्रकार विद्यानिवास मिश्र की भाँति कुबेरनाथ राय भी अपनी जन्मभूमि मतसा ग्राम से जुड़े रहकर जन्मभूमि के प्रति आत्मीयतापूर्ण लगाव का परिचय देते हैं। इनके कई ललित निबन्ध ग्रामीण सभ्यता-संस्कृति के जीवंत दस्तावेज बन गये हैं। ग्रामीण परिवेश का जनजीवन उछलता कूदता जीवन की अमृत तृषा का पान करता हुआ, सांस-सांस, पत्ते-पत्ते, फूल-फूल, कंठ-कंठ सर्वत्र फागुन में'फाग' चैत में'चैता', वैशाख में 'धांटों', सावन में'मल्लर', भादो में'कजलो' आश्विन में 'रामलीला-गान और अगहन में रासलीला-गान में सराबोर हो जाता है। इन्हें 'ढलती रात में मालकोश' और 'अर्धरात्रि के रागयक्ष'-

'साँई तू न आवे आधीरात

माँझ-माँझ सिंहनी जगावै सिंह कानन पुकार।'(86) आत्मविभोर किये रहता है। सुन्दर प्राकृतिक छटा में सरल सन्तुष्ट जीवन शैली जीता रस-गंध का भोक्ता ग्रामीण जनजीवन क्षुधातृप्ति के लिए कहीं-कहीं पशु-विष्ठा से अपचित दाने चुन-धोकर खाता हुआ भी दिखलाई पड़ता है। ऐसे में आज के भारत की दरिद्रता का यथार्थ मन को मथने लगता है।

कुबेरनाथ राय के ललित निबन्ध ग्रामीण जनजीवन के रग-रग में समाये संस्कार और उसके भीतर की जीजीविषा एवं आकांक्षा कुछ इस प्रकार अभिव्यक्त कर जाते हैं कि इनका 'मतसा' ग्राम पूरे भारत के ग्रामीण जीवन-दर्शन का प्रतिनिधित्व करने लगता है। अपनी मिट्टी के रस-गंध और सौन्दर्य से जुड़े इस निबन्धकार के धरती-धन के प्रति प्रेम को कौन अस्वीकार कर सकता है। ग्रामीण पाठशाला के गुरूजी, चण्डीथान की देवी-दुर्गा, दही की मटकी लेकर धूमती आभीरिका, सनातन नीम की छाँह, सनातन नदी, अन्नपूर्णा वाणभूमि,

हैमन्त की संध्या सबकुछ उनकी ग्रामप्रियता एवं राष्ट्रीयता को ही व्यक्त करते हैं। इन्हीं निबन्धों में भारतीय सभ्यता-संस्कृति के विभिन्न पक्ष भी उद्‌घाटित हो जाते हैं। अतः कहना चाहिए कि कुबेरनाथ राय ने अपने ललित निबन्धों में लोकजीवन की भाषा और राग में सम्पूर्ण भारतीय सभ्यता-संस्कृति को सामने रख दिया है। बहुत ही रोचक और आत्मीयतापूर्वक धर्म-दर्शन जैसे गूढ़ विषयों के भीतर का सार निचोड़कर सुपाच्य बना दिया हैं सतूखोर आर्य की खाध्य संस्कृति हो या इतिहास पुराण में लिखित त्रेता युग का जीवन संदर्भ, निबन्धकार की स्वच्छंद मनः स्थिति की पकड़ से बाहर नहीं हो सका है। शब्द, नदी, भूमि, जल, चित्र-विचित्र, शरद बाँसुरी की तान, उज्जड़ वसन्त, व्यथातीर्थ आदि विभिन्न विषय इनके निबन्धों में लालित्य पूर्ण हो गये हैं।

विषय विविधता के समान ही इनके ललित निबन्धों में इनके निजी विचार भी विभिन्न दृष्टिकोणों से प्रकाश फैलाते हैं। धर्म-दर्शन, लोक संस्कृति, विभिन्न संवेदनाएँ, मातृभूमि के प्रति अनुराग, निजी साहित्यिक जीवन सम्बन्धी अनेक विचार भावों के साथ संयोग करके, यथार्थ और कल्पना के माध्यम से अभिव्यक्त हुए हैं। इनका निजी दृष्टिकोण अतीत को वर्त्तमान से, सामान्य को विशेष से, विषय को विषयी से, शुष्क को तरल से, संक्षिप्त को विस्तार से और गंभीर को सरल से समन्वित करके चन्दन काष्ठ बना देना है। स्पष्ट है कि चन्दन काष्ठ को मनोयोगपूर्वक घिसने पर ही सुगन्ध और शीतलता प्राप्त कर सकते हैं। अर्थात् इनके ललित निबन्धों में मात्र मन की ऊपरी परत के विचार ही नहीं हैं। इनके साथ मन की गहराई में, अनुभव, ज्ञान और अध्ययन के क्षीर-सागर में डूबकी लगाने का हल्का प्रयास तो अपेक्षित ही है। इसलिए इनके विचारों से भयभीत कोई आलोचक इसे ललित निबन्ध का सबसे बड़ा दोष भी कह सकता है। परन्तु सच्चे अर्थों में इनके ये सारे विचार इनके अध्ययनशील, सुरूचिपूर्ण सभर व्यक्तित्व के प्रमाण हैं। इन्हीं विचारों की ललित अभिव्यक्ति ने ही इन्हें लब्ध प्रतिष्ठित ललित निबन्धकार आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं डॉ. विद्यानिवास मिश्र की अगली कड़ी के रूप में प्रतिष्ठित की है। डॉ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित हिन्दी साहित्य का इतिहास में डॉ. बच्चन सिंह ने कहा है-'विद्यानिवास मिश्र की तरह कुबेरनाथ राय भी हजारी प्रसाद द्विवेदी संस्थान के निबन्धकार हैं। फर्क यह है कि मिश्रजी द्विवेदीजी के प्रभाव से मुक्त नहीं हैं जबकि कुबेरनाथ राय उनसे मुक्त होकर नयी भंगिमा अपनाने के लिए निरन्तर प्रयत्नशील हैं।'(87)

यह नयी भंगिमा ही ललित निबन्ध साहित्य को और आगे, और अधिक सुन्दर बनने के लिए प्रेरित करती है। कुबेरनाथ राय ने वास्तव में क्षीर समुद्र में अनन्त फल पाकर चिरंजीव होने का आशीर्वाद आलोचकों से प्राप्त कर लिया है।

अपने आप को तटस्थ रखकर कर्मशील बने रहने वाले कुबेरनाथ राय की निजी धारणा है कि तटस्थता नये सांख्य का ज्ञान-योग है। इसलिए चण्डीथान की देवी से पल्ला छुड़ाना चाहते हुए भी पल्ला छुड़ाने की अपेक्षा और अधिक आस्तिकतापूर्वक जुड़ जाते हैं-'इसका हाथ पकड़कर मरण-पथ-पर भी मुझे भय नहीं सतायेगा। पार्वती रूपी धरती से लेकर मृत्युलोक- की दुस्तर वैतरणी तक वृन्दावन छा जायेगा। भय किस बात का? मृत्यु और अमृत दोनों एक की ही छाया हैं भय तो तभी है जबतक निस्संग हूँ, तटस्थ हूँ। साथ-साथ चलने पर भय कैसा।'(88)

अर्थात् आधुनिक अनास्तिक एवं अनास्थावादी युग में भी आस्तिकता, आस्था, सहयोग एवं सहोपकार का महत्व उतना ही है जितना पहले था।

इसके बावजूद साहित्य सृजन काल में ये अकेलापन को वरदान मानते हैं-'यह नित्य अकेलापन रचना प्रक्रिया की अनिवार्य आवश्यकता है। सृजन के चरम क्षण के अवसर पर नारी, कवि और पैगम्बर बिलकुल अकेले होते हैं। उनकी सृजन-पीड़ा का साझा कोई नहीं करता, यहाँ तक कि टैगोर का जीवन देवता भी नहीं। वह तो महज उपस्थित भर रहता है। उसकी उपस्थिति से बल भले ही मिलता है-पर भोगना तो अकेले-अकेले है।'(89)

इन्हें निर्वासन हैय स्थिति जान पड़ती है, क्योंकि निर्वासन में सृजन की प्रवृत्ति नहीं है, वह बन्ध्या दुख भोग मात्र है। इस निर्वासन से'स्व' विखण्डित हो जाता है। इसलिए अकेला बाधारहित'स्व' के साथ रहना चाहते हैं। अपने ललित निबन्धों में इन्होंने'स्व' का पर्याप्त अन्वेषण किया है और'स्व' को सामान्य विषयों के माध्यम से पर्याप्त अभिव्यक्ति भी दी है। ये अपने निबन्ध 'नदी तुम वीजाक्षरा' में वैदिक युगीन नदी 'सरस्वती' को अपने भीतर की नदी वाक्प्रदा, ब्रह्मसुता भारती, वेदागणी वाणी मानते हुए इसका उद्धार करना चाहते हैं-'यह नदी कहीं गयी थोड़े है। बस अपने भीतर है। इसे ठीक से पहचान लेना है। यही प्रत्यभिज्ञान ही इसका उद्धार है।...तान्त्रिकों ने तो कहा ही है कि हमारे शरीर में ही सरस्वती प्रवाहमान है सुषुम्ना-नाड़ी के रूप में। इंगला-पिंगला, गंगा-यमुना है और सूक्ष्मतर अनुभव प्रवाह, आध्यात्मिक ज्ञान की वाहिका है बीच की

सुषुम्नारूपी सरस्वती।'[90] ये इस भाव रूप-बोध रूप सरस्वती को प्रत्येक व्यक्ति में प्रवाहमान देखना चाहते हैं। सम्पन्न 'स्व' से सबका हित चाहते हैं।

इनके ललित निबन्धों में लोकजीवन, धर्म-दर्शन एवं सभ्यता-संस्कृति से जुड़े विषयों में प्रकृति के मनोरम दृश्य, खेत-खलिहान, नदी, पर्वत तो हैं ही, साथ ही इनके मन के भीतरी सतह से फूटता हुआ कामाध्यात्म भी है। इन्होंने 'मनियारा साँप', निबन्ध में श्रीकृष्ण को वृन्दावन के मणिधर साँप के रूप में देखा है, जो एक दिन मणि उगलकर मथुरा चला जाता है। इनका मित्र बिरजू द्वादश वर्ष की अवस्था में ही वयः संधि की देहरी पर प्रेम पत्र लिखकर बात खुलने पर रेल की पटरी पर सोये मिलता है। ये गौड़ीय वैष्णव साधना के मूल आधार कान्तारति में भी स्वकीया से अधिक श्रेष्ठ परकीया प्रेम को स्वीकार करते हैं, क्योंकि इसमें अधिक आवेग रहता है। ये राधा-कृष्ण के प्रेम को अशरीरी, स्थूल का त्याग करके आवेश मात्र संयुक्त देवत्व का महाभाव मानते हैं। प्लेटो की धारणा और चैतन्य देव की दृष्टि को स्पष्ट करते हुए इन्होंने इस बात पर बल दिया है कि रतिबोध की पारस्परिकता का आस्वादन एकांगी उतेजना या मानसिक बलात्कार नहीं है। सौन्दर्य के प्रति उत्पन्न रतिभाव जब परस्पर मिलकर एकत्व प्राप्त कर लेता है तब चरम सत्ता का रूपायन होता है और वही देवत्व है। परन्तु वर्त्तमान साहित्य में इसकी रोमाण्टिक अभिव्यक्ति की और संकेत करते हुए कवीन्द्र रवीन्द्र की पंक्तियाँ-

'आमि जन्मे रोमाण्टिक-आमि सेइ पथेर पथिक...।'[91] उद्धृत कर जाते हैं। यह भी कह देते हैं कि व्यक्ति-व्यक्ति में मजीठी हलकी पीताभ रंग लिए हुए राधा है जो उतरीय में रंग लगा देती है तब श्री कृष्ण बनना ही पड़ता है। कुबेरनाथ की दृष्टि में नया मनुष्य सम्पूर्ण का अकेले भोग करना चाहता है, पारस्परिक आदान-प्रदान नहीं करना चाहता है-

'एक दूसरे को मुष्टिगत रूप में रखना, एक-दूसरे को अधिकृत रखना, इसी की परिष्कृत विधा का नाम है प्यार। वैदिक और यूनानी क्लासिकल युग में यही विधा थी। बाद में मध्य युग में पारस्परिकता का आदर्श स्थापित हुआ सही, पर व्यवहार में एक-दूसरे की आत्मा को काटकर अपने गले की शोभा बनाने का प्रयत्न ही वास्तविक स्थिति रही। आधुनिक मनु को शॉ और लॉरेन्स जैसे गुरू मिले हैं। आज तो प्रत्येक प्रेमिका चण्डिका है और प्रत्येक प्रेमी अघोर शिव। ये एक-दूसरे का मुण्ड काटने के लिए एक दूसरे के व्यक्तित्व को'अधिकृत' करने

के लिए ही खुलेआम लालायित हैं। यहाँ अर्धनारीश्वर नहीं।'[92]

चूंकि 'चण्डीथान' की चण्डिका स्वतंत्र, योगिनी प्रेमिका है, पति से अनुशासित नहीं। इस कामेश्वरी का एक काम कटाक्षभर पाने के लिए स्वयं भैरव साधनारत है।

इन सारे दृष्टिकोणों के साथ चलनेवाले कुबेरनाथ राय का रस-आखेटक व्यक्तित्व सौन्दर्य, रति, विलास में डूबते उतराते दिख पड़ता है। इनका पौरूष अपने 'अहं' को व्यक्त करते हुए कहता है-'सृष्टि में यदि गौर से देखा जाये तो सर्वत्र नर ही सुन्दर और गुणवान है नारी में सृजन सामर्थ्य मात्र है और कुछ नहीं। मयूर, शुक, कुक्कुट एरावत, वृषभ, मृग आदि सभी नर ही आकर्षक, सुन्दर और गुणवान होते हैं। नारी निश्चय ही विधाता की निम्नतर सृष्टि है।'[93] इनके अनुसार मन और सहजवृत्तियों में एक मोह और प्रेम या काम का नशा भरा हुआ है जिसके कारण भ्रान्तिवश पुरूष, नारी को सुन्दर मान लेता हैं।यही रोमाण्टिक पूर्वाग्रह है। अन्यथा बुद्ध का शरीर अन्तर के जिस सौन्दर्य से प्रकाशित है, वह यशोधरा के शरीर में नहीं।

इसी क्रम में कई बार निबन्धकार रति विषयक चर्चाओं में भ्रमण कर जाता है और आत्मीयतापूर्वक ज्ञान की बातें बतला जाता है। जैसे-ग्रीष्म में रात्रिकाल रति सुख के लिए अनुपयुक्त है। ऊपर मलाई-सी जमी हुई कामना और नीचे धीर प्रशान्त मन रति-आस्वादन के विपरीत पड़ते हैं। ऐसे में कामना पिघल नहीं पाती।'[94] लगता है ये आयुर्वेद ग्रन्थ 'भाषा प्रकाश' एवं कालिदास के 'ऋतुसंहार' के माध्यम से काम-कला का नवनीत निकालकर भेंट कर रहे हैं। सबसे बड़ी बात यह है कि ऐसे प्रसंगों में उनका यथार्थ इतना सजग है कि कहीं फूहड़ता अथवा घिनौना भाव नहीं भरने पाता है। इसमें भी सौन्दर्य बोध और रस-वर्षण ही होता है।

इनका दार्शनिक पक्ष भी तो इतना मजबूत है कि देह का वल्कल पर वल्कल उतारता हुआ भीतर का अंतिम सार तत्व पाना चाहता है। आवरणों, परिधानों के भीतर छुपे मूल अस्तित्व को जो शून्य अथवा शिव है। चिरन्तन प्रकाश, शान्तम अद्वैतम अथवा 'रसो वै सः' है। जो उस देह वल्कल की कान्ति से ढँका हुआ हैं जिसमें सम्मुख आते ही दृष्टि विश्रृंखलित-सा कर देने वाली शक्तिशाली उत्तमता हैं। जिसे कुबेरनाथ राय पियरे इमेनुएल की अनुदित कविता के आधार पर 'नग्नवक्ष का कवच'[95] कहते हैं।

अपने जीवन के साथ सम्पूर्ण मानव-जीवन को वय के अनुसार क्रियाशील बतलाते हुए अन्य कई ललित निबन्धकारों की तरह इनकी भी धारणा है कि'हमारे जीवन में गदह पचीसी सावन-मनभावन है, बड़ी मौज रहती है, परन्तु सत्ताइसवें के आते-आते घनघोर भाद्रपद के अशनि-संकेत मिलने लगते हैं और तीसी के वर्षों में हम विघुन्मय भाद्रपद के काम-क्रोध और मोह का तमिस्त्र सुख भोगते हैं।'(96)

इनकी धारणा है कि जो सतर्क है, सृष्टिकर्ता है वह निश्चय ही चिरयुवा होगा। अतः सृष्टिकर्ता, कवि, सेनापति विद्रोही और ब्रह्मा की कल्पना वृद्ध रूप में नहीं की जा सकती हैं।उसकी जवानी चमाचम धारदार खडग है, जिसपर चढ़कर देवताओं की भाषा बोली जाती है।'युवा अंग के पोर-पोर में फासफोरस जलता है और युवा-मन में उस फासफोरस का रूपान्तर हजार-हजार सूर्यों के सम्मिलित पावक में हो जाता है।'(97)

कुबेरनाथ राय का रचनाशील मन कहता है-'अभी तो मैं विश्वेश्वर के साँड़ की तरह जवान हूँ।'(98) परन्तु, इस युवा मन का सदुपयोग छिन्नमस्त पुरूष बनकर नहीं करना चाहता क्योंकि इससे रूप, रस, गन्ध और गान से वंचित रह जाने की संभावना है बुद्धिजीवी केवल शिश्नोदरवाला व्यक्तित्व लेकर जीवन-यौवन भोगना नहीं चाहेगा। इसलिए अन्यत्र चिर यौवन का अनुसंधान करना चाहता है। अपने भीतर ही अमृता कला ढूँढ़ता है-

'कहीं-न-कहीं मेरे ही अन्दर अमृता कला की गांठ होगी। उसे ही मुझे आविष्कृत करना होगा। जो बाहर-बाहर अप्राप्य है वह सब-कुछ भीतर-भीतर सुलभ है। मैं अपने ही हृदय समुद्र का मन्थन करके प्राण और अमृत के स्रोत किसी चन्द्रमा को आविष्कृत करूँगा।'(99)

और निश्चय ही इन्होंने अपने ललित निबन्धों के रूप में नयी भंगिमाओं से युक्त, चन्द्रमा के समान शीतल, मनमोहक, सुन्दर, आह्लादकारी विधा हमारे समक्ष रख दिया है। जिसमें है-इनके भीतर की अमृत तृषा, भीतर का सम्पूर्ण 'स्व' और साथ ही लोक जीवन के संस्कार, वर्त्तमान और अतीत की सम्बद्ध सभ्यता-संस्कृति की धारा। एक व्यापक वैविध्य भरा चेतन मन कितना कुछ समेट लिया है, कहने से पहले इनके सम्पूर्ण ललित निबन्धों को देखना पड़ता है। इसे संक्षेप में कहने के लिए विवश हो जाना पड़ता है।

इनके ललित निबन्ध स्वयं उपदेश बन जाते हैं। जीवन के वे सारे तत्व

एक-एक कर हमारे समक्ष उपस्थित होते जाते हैं, जिनसे हमारे भीतर का द्वन्द्व नष्ट होने लगता है। सोलहों कला से युक्त मनोमय आकाश में दिव्य चिनगारी फूटती है। मायावपु, देहवल्कल घुलकर नष्ट हो जाता है। सुखद जीवन का मार्ग प्रशस्त हो जाता है। नर में नारायण के गुण भरने लगते हैं।

इन्होंने अपने ललित निबन्धों में अपने भावों को पुष्ट करने के लिए इतिहास-पुराण, भारतीय एवं पाश्चात्य साहित्य, लोकगीत आदि से अनेक उद्धरणों को ग्रहण किया है। कहीं कविता की एक-दो पंक्तियाँ हैं तो कहीं दस-बारह। रामायण-महाभारत से लेकर आधुनिक साहित्य तक के अध्ययन के वैसे मूल बिन्दु उद्धृत हो गये हैं, जिनसे ललित निबन्धकार का स्वाधीन मन रचनाकाल में प्रसंगवश टकराता गया है। इनके प्रायः सभी ललित निबन्धों में यह उद्धरणप्रियता देखी जा सकती है। उदाहरण के लिए रामायण के युद्धकाण्ड 111/15 में मन्दोदरी द्वारा व्यक्त वाणी' नारायण और प्रतिनारायण' ललित निबन्ध में-

'इन्द्रियाणि पूराजित्व जितंत्रिभुवनंत्वया
स्मरद्भिखितद्वैर मिन्द्रियैरेवनिर्जितः।'(100)

(पूर्व काल में इन्द्रियों को जीतकर तुमने तीनों लोकों पर विजय प्राप्त की थी। उसी वैर का स्मरण करती इन्द्रियों द्वारा तुम जीत लिए गये)

'मेघ मण्डूक और आदिम मन' ललित निबन्ध में छान्दोग्य उपनिषद् से कुत्तों द्वारा दिया गया एक साम गान उद्धृत है-

'ऊँ अदाम ऊँ पिवाम
ऊँ देवो वरूणों प्रजापति सवितान्न इहाहर।
अन्नपते इहाहर आहार ऊँ इति।'(101)

अर्थात् ऊँ आओ खायें, ऊँ आओ पियें। ऊँ अन्नों के स्वामी, अन्न लावें।

किसी एक ही ललित निबन्ध में विषयान्तर में चला जाना इनका स्वभाव है। साथ ही कहीं कथा का आश्रय ले लेना तो कहीं कल्पना अथवा स्वप्न रचना, कहीं आपबीती धटना प्रस्तुत कर देना तो कहीं जनजीवन की स्थिति उभार देना इनके ललित निबन्धों की विश्रृंखलता के प्रमाण हैं। सभी ललित निबन्ध एक जैसे नहीं हैं, फिर भी प्रायः सभी में स्वाधीन मनः स्थिति इसी प्रकार विचरणशील है। उदाहरण के लिए 'उजड्ड वसन्त और हिप्पी जलचर' शीर्षक निबन्ध की शुरूआत रोचकतापूर्वक करते हुए कुबेरनाथ राय सुहृद मित्र की भाँति कहते हैं-

'इस बार भी वसन्त आ गया है। आ क्या गया है, चारों और साँड़ की तरह हंकड़ रहा है। कभी चोवा-चन्दन लगाकर पुष्प-मुकुट पहनकर आता था। इस बार तो लगता है गांजा पीकर आया है और बागों में, कुंजों में, कछारों में, कूलों उपकूलों में सर्वत्र ही उत्तान श्रृंगार का श्रव्य और दृश्य काव्य रच रहा है। ऐसा उजड्ड भोजपुरी वसन्त तो कभी आया ही नहीं था।''(102)

इसके बाद वसन्त रास्ते-कुरास्ते काल्पनिक रूप में ही सबसे छेड़खानी करता हुआ आगे बढ़ता है। वह व्यंग्य का तुक्का मारता जाता है। पलाश आम से कहता है-'अबे आम कहीं के। अरे ओ कपिमुख। जरा मेरी और देख। मेरे ही जैसा सिरो पांव लाल-लाल गहागह क्यों नहीं बन जाता? और आम कोई उत्तर न देकर टिप्पणीस्वरूप एक अरूणपीत बंझा मंजरी गिरा देता है।'' (103)

आगे इसी वसन्त को अपने अध्यापक जीवन के साथ जोड़कर नीरस उत्तर पुस्तिका जांचने के दुर्भाग्य का एहसास करते हैं। मच्छली फंसाने के फेर में घोंघा (शम्बुक) पा लिए और उसी के दार्शनिक पक्ष की चर्चा करने लगे। अपने स्वभाव की यायावरी में फिर लिपटते हुए कहते हैं-यायावर खग-मृग, रस आखेटक होता है, सृष्टि से पग-पग पर समझौता करता चलता है। अतः दार्शनिक या मुक्त विद्रोही नहीं।'वह सृष्टि से प्रतिबद्ध है, माया से प्रतिबद्ध है, वह रूप-रस-शब्द से प्रतिबद्ध है, वह रस का आखेट करता है, रूप का आहार करता है, शब्द से भिक्षा माँगता है, गन्ध का समाचार बाँटता है और स्पर्श का चीर-परिधान धारण करके चलता है।'(104)

इसके बाद हिप्पी सारी दुनिया की वर्त्तमान व्यवस्था को व्यर्थ बनाते हुए दिख पड़ते हैं। ये ध्वंस की राजनीति रहस्यवादी संधान-यात्रा और आत्महत्या के अतिरिक्त कोई मार्ग बचने नहीं देते हैं।'हिप्पी' और 'ईपी' दोनों तरूण बनाम प्रवीण की लड़ाई में रत है। आत्मक्षय बौद्धिक विघटन, अतृप्त भोगेच्छा, सेक्स और अफीम का जहर पीकर मर रहे हैं। यह अमरीकी सभ्यता संस्कृति भारत के लिए उपयुक्त नहीं हैं। इसलिए निबन्धकार ने भारतीय युवावर्ग को इससे दूर रहने के लिए आगाह भी किया है।

इसी विषयान्तर के समान आत्मीय वार्तालाप शैली, भावात्मक तारतम्यता और विचार अथवा बोध भी खंडित रूप में मिलते हैं। इसलिए इनकी शैली को जल-तरंग की भाँति उठती-गिरती हुई कहें तो अच्छा होगा।

इनकी भाषा एक अध्ययन-अध्यापन में रूचि रखने वाले साहित्यिक

व्यक्तित्व की भाषा है। इसमें वह सामान्य सहज बोलचाल की भाषा का तेवर नहीं दिखलाई पड़ता है, जो सर्व-सामान्य को आकृष्ट कर सके। इसका अर्थ यह नहीं है कि यह जटिल भाषा है। वस्तुतः इस भाषा की समझ और इन ललित निबन्धों का रसास्वादन प्राप्त करने के लिए साहित्यिक, सामाजिक-सांस्कृतिक शब्दावलियों से परिचित होना आवश्यक प्रतीत होता हैं संस्कृत, हिन्दी, उर्दू-फारसी अंगरेजी आदि के शब्द कहीं-कहीं बाधा शमन सकते हैं। दर्शन एवं धर्मशास्त्र के कुछ विशेष शब्द भी अड़चन डाल सकते हैं। कुछ स्थलों में शब्द चिन्तन करके इसका निराकरण किया गया है। उद्धरणों के हिन्दी रूपान्तरण अथवा भावार्थ भी दे दिये गये हैं। ऐसे भाषा प्रयोग सम्बन्धी इनकी मान्यता भी है कि अधिक अभिव्यक्तिपूर्ण भाषा का प्रयोग कोई पाप नहीं है। इन्होंने कहा भी है-'क्या विडम्बना है कि हिन्दी में एम.ए. तक की किताबें एवं प्रधानमंत्री के द्वारा दिये गये विदेश-नीति पर भाषण भी लोग बोल-चाल की भाषा में ही सुनना चाहते हैं अन्यथा 'शीर्षवलक्ष, बूढ़ा...नीतिज्ञ' फांसी का ही हुक्म दे देगा।'[105]

इसलिए इनकी भाषा की गुरूता अथवा गंभीरता पर बहस करना व्यर्थ है इसके बावजूद सरसता एवं रोचकता में भाषा बाधक नहीं बनी है। हाँ! इनके ललित निबन्ध बहुत हल्के मूड के नहीं कहै जा सकते हैं। इनका आकार भी प्रायः सामान्य से अधिक बड़ा है। दस-बारह पृष्ठों तक तो अनेक निबन्धों में बतकही करते हैं और वह भी प्रौढ़, ज्ञानवान अनुभव एवं अनुभूति सम्पन्न व्यक्तित्व के साथ।

व्यंग्य-विनोद के नाम पर कहीं-कहीं अपने पर व्यंग्य कर देंगे। जैसे-'अरे, मुझे तो अफसोस है कि माता-पिता ने मुझे 'कुबेर' के 'नाथ' की नकेल क्यों पहनायी, और 'कुबेरनाथ' कर के एक महा अड़बंगी, दरिद्र और सनातन हिप्पी देवता का नाम दे डाला, जो अपने चढ़ने के लिए एक घोड़ा तक नहीं जुटा पाया, हाथी और विमान की तो बात ही क्या?'[106](शब्द श्री निबन्ध) या एक दो बार कहीं व्यंग्य दूसरों पर भी कर लेंगे-जैसे कुलपति पर-'हे प्रधानमंत्री के सखा, मुख्यमंत्री के प्यारे मीत, है हमारे प्रभु, तुम्हारी दशमुख के ग्यारहवें मुख-जैसी मनोहर आकृति पर सरस्वती प्रेमासक्त है, लक्ष्मी तुम से रात-दिन नजर लड़ाती है और पार्वती तुम्हें प्रेमपत्र भेजती है...इत्यादि।'[107]

इसके अतिरिक्त इनका सम्पूर्ण ललित निबन्ध आखेट, मादन और योग की मनः स्थिति की देन है, जहाँ व्यंग्यविनोद का स्वाभाविक अभाव है। रूप-रस-गंध

यही इनके निबन्धों का लालित्य हैं इनके व्यक्तित्व की सभरता इसी में है और इन्हीं विषयों के भीतर से सौन्दर्य की आभाबाहर निकल आयी है। यही इनके ललित निबन्धों की प्रधान विशेषता है।

निश्चय ही कुबेरनाथ राय के निबन्धों में उपस्थित काव्यात्मक संवेदन के साथ विविध प्रसंगों का सूक्ष्म पर्यवेक्षण पाठक को आकर्षित करते हैं। भाषा मानसिक उहा-पोह को समेटती सहैजती हुई समतल पर लाने का प्रयास करती है। रंग-रस और गंध को पकड़ती है। ऋतु, पर्व-त्योहार, दिवस का चित्र-विचित्र प्रस्तुत करती है। राम-विराग को यथार्थ एवं कल्पित दोनों रूपों में व्यक्त कर देती है। प्रत्येक साहित्यानुरागी के लिए इनके ललित निबन्ध आकर्षण के केन्द्र हैं।'गन्धमादन' के प्रथम आवरण पृष्ठ में उचित ही लिखा गया है कि-आप अपने प्राचीन को आत्मसात कर, पचाकर कुछ ऐसा कह सकें जो वर्त्तमान से इतना समानधर्मी लगे कि आप उसकी बांह थाम कर भविष्य की और बढ़ सकें-इस प्रश्न का जितना साफ उत्तर कुबेरनाथ राय के निबन्ध पढ़कर मिलता है, उतना हिन्दी में लिखी गयी किसी कृति को पढ़कर नहीं मिलता। इन निबन्धों का पढ़ना एक नया अनुभव पाना है। (दिनमान से) इसी पृष्ठ पर यह भी अंकित है कि बच्चनजी ने 'प्रिया नील कण्ठी' के निबन्धों को पढ़कर कहा था-'शायद ही किसी उपन्यास को भी इतनी रूचि से पढ़ा हो।'

अतः कहना न होगा कि कुबेरनाथ राय के ललित निबन्ध पाठक समुदाय के बीच कितना लोकप्रिय हैं। प्रत्येक सुरूचि सम्पन्न व्यक्ति के लिए इनके ललित निबन्ध पठनीय निधि हैं। इनमें मिलता है-प्रखर भावबोध और चैतन्य प्रभावशाली शिल्प का संगम। अपने ढंग का अकेला परन्तु अनेक ललित निबन्धकारों की शैलीगत विशेषताओं से युक्त सही अर्थ में स्वच्छ-सुन्दर प्रशंसनीय हिन्दी ललित निबन्ध का स्वरूप। इनमें पाठक निबन्धकार के व्यक्तित्व को पाकर जन-जन के व्यक्तित्व के भीतर और बाहर को देख सकता है। उनकी दृष्टि की सूक्ष्मता और मन के चयन-विधान से अवगत होकर अपना, अपने समाज का, अपने देश के वर्त्तमान और अतीत का, अपने जीवन की सार्थकता का परिचय पाता है। यह स्वयं को पाना ही सबसे बड़े आहलाद का कारण है।

(6) कामता प्रसाद सिंह 'काम'

कामता प्रसाद सिंह ऐसे ललित निबन्धकार हैं, जो 'स्व' के साथ अपने पूरे, परिवेश से सम्बद्ध वस्तुओं, व्यक्तियों एवं स्थितियों को निष्कपट भाव

से आत्मीयतापूर्वक अभिव्यक्त करते हैं। अपने एवं अपने सम्बद्ध परिवेश के गुणों की चर्चा करने में तो अनेक लोग सिद्धहस्त होते हैं, परन्तु अवगुणों या विसंगतियों की चर्चा कर पाना कुछ ही के वश की बात होती है। कामता प्रसाद सिंह'काम' के निबन्धों में सबसे बड़ी बात यही है कि इन्होंने पाठकों के सम्मुख स्वयं को नग्न यथार्थ के रूप में रखा है।

इनके ललित निबन्ध इनकी स्वच्छन्द मनःस्थिति की रोचक अभिव्यक्ति है, जिनमें दैनिक जीवन के घरेलू वातावरण से लेकर सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं मानव मन की वर्त्तमान नैतिकता का यथार्थ समेट लिया गया है। बहुत आत्मीयतापूर्ण वातावरण बनाते हुए सुहृद मित्र की भाँति अपने अंतर्मन की बातें कहते जाना और उसके माध्यम से वर्त्तमान जीवन शैली, व्यवस्था-अव्यवस्था को चित्रित करते हुए कुछ ऐसी सीख दे देना कि जीवन में उठते-बैठते उपयोगी हो, इनके निबन्धों की विशेषता है।

इनके निबन्ध चार संग्रहों में संकलित हैं, परन्तु 'आसपास की दुनिया' (चतुर्थ संस्करण-1965 ई.) संग्रह के निबन्ध-(1) 'मेरी कलम' (2) 'मेरा टेबुल' (3) 'मेरी जेब' (4) 'मेरा नौकर' (5) 'मेरी कलम' (6) 'मेरे पात्र' (7) मेरी पत्नी' (8) 'मेरा चुनाव' मात्र ही ललित निबन्ध की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। अन्य संग्रहों- 'भूलते-भागते क्षण', आत्मा की कथाएँ एवं 'हृदय और मस्तिष्क' में ऐसे निबन्धों की संभावना कम है। इन आठ निबन्धों में ही इनकी निबन्धकला का पूरा परिचय मिल जाता है।

इन निबन्धों में निबन्धकार का व्यक्तित्व अपनी सरलता, निष्कपटता और आत्मपरकता के साथ उपस्थित होकर ललित निबन्धकार होने की योग्यता का परिचय दे देता है।

अपने निबन्धों में निष्कपट अभिव्यक्ति के सम्बन्ध में इन्होंने स्वयं स्वीकार किया है-'मैं अपने को पाठक के सामने नग्न रूप में रखना चाहता हूँ। घबड़ाइये नहीं कपड़ा खोलने का मतलब नही, मतलब बात खोलने से है।'(109) साथ ही इसका निर्वाह भी बहुत अच्छे ढंग से किया है। क्योंकि अपना परिचय रोगी, भोगी, योगी तीनों रूपों में दे दिया है।'मेरा परिचय' निबन्ध में अपने ग्रामजीवन से लेकर शहर के जीवन तक का रोचक वर्णन करते हुए आगे बढ़ा है।'मेरा टेबुल' के बहाने अपने जीवन के साथ जुड़े चित्र-विचित्र स्वभाव वालों का परिचय देकर कहा है-'यही टेबुल मेरा सम्बन्ध आज जहान से जोड़ता है।...

अंग्रेजी में एक कहावत है कि'ए मैन इजनोन बाई दि कम्पनी हिकिप्स'... मेरा ख्याल है कि मैं उसे यों बना दूँ कि'ए मैन इज नोन बाई हिज टेबुल' अर्थात् मनुष्य की पहचान उसके टेबुल से होती है।'(110) इनके टेबुल के साथी बेतरतीब स्वभाव के हैं जो निबन्धकार के लिए परेशानी ही बनते हैं।'मेरी जेब' में निबन्धकार'जेब' से इसलिए परेशान है कि खाली रहने पर जेबकट से गाली सुनने का भय है। भरी रहने पर मित्रों की दावत से। इनकी जेब पैरवी के पूर्जों से भरी रहने का दुख भोगती है। अर्थात् इनके व्यक्तित्व में जहाँ मित्रों के प्रति सहानुभूति है वहीं बहानेबाजी के भी गुण हैं। मौके पर यह जेब सारे, संकटों से बचाती है। इसलिए कहते हैं-'अपनी जेब पर मुझको भरोसा है और मैं जानता हूँ कि जब तक जीवन है इसका सहयोग मुझे सदा मिला करेगा।

जेब जिन्दाबाद!'(111)

इसी प्रकार 'मेरे पात्र' निबन्ध में इनकी रचनाशील प्रकृति का परिचय मिलता है जहाँ अपनी निजी अनुभूति के बल पर कहते हैं-'जो लिखना शुरू करे उसको एक बात के लिए बराबर तैयार रहना चाहिए। वह एक बात क्या है? समालोचकों का निर्मम प्रहार।'(112)

'मेरा नौकर' और 'मेरी कलम' में यदि कुछ है तो मात्र भावनात्मक सम्बन्ध। इनमें निबन्धकार की आत्मपरकता है, परन्तु व्यक्तित्व में कोई ऐसा उभार नहीं कि ललित निबन्ध कहा जाय। 'मेरी पत्नी' में अपनी पत्नी के साथ रहने की विवशता झलकती है जहाँ मानसिक रूप से पति के योग्य पत्नी का अभाव खटकता है-एक सार्वजनिक कार्यकर्त्ता, समाज सेवी, साहित्यकार के साथ मानसिक भोंड़ी विचार शैली वाली पत्नी परेशानी का कारण बन जाती है। इसी बात पर बल हैं 'मेरा चुनाव' में चुनाव के मैदान में खड़ा निबन्धकार वोटरों, कार्यकर्ताओं की फरमाइस पूरी करना असम्भव समझता है इसलिए कहता है-'जो अपने अनुभव के कोष में बेतरह वृद्धि करना चाहे वह एकबार चुनाव में उम्मीदवार हो जाये, जो रोजगार के मामले में बेतरह पक्का होना चाहे वह एकबार किसी उम्मीदवार का कार्यकर्ता बन जाये और जो जीवन में खुशामद पाने का अरमान पूरा करना चाहे वह वोटरों के एक गिरोह का सरदार बन जाये।'(113)

अर्थात् इनके व्यक्तित्व में अनुभव के ढेर सारे तत्व हैं, जो सामान्य जीवन जीते हुए कुछ अगुए नेताओं के अनुभव से ऊपर नहीं उठ सके हैं। इन तत्वों

से निर्मित व्यक्तित्व में न कहीं अध्ययन की गहराई झलकती है और न मन का विस्तार ही। इसलिए ललित निबन्धों के लिए अपेक्षित आदर्श व्यक्तित्व का अभाव खटकता है। व्यक्तित्व की सभरता ही ललित निबन्धों को उच्चता प्रदान करती है। कामता प्रसाद सिंह'काम' सामान्य निजी जीवन की आत्मपरक रचना के सफल रचनाकार हैं, स्वाभाविक ऊपरी चेतन मन पर उठे प्रतिक्रियावादी विचारों के धनी हैं।

दूसरी बात यह कि सरल-सहज भाषा के प्रयोग के क्रम में कई स्थलों पर तुकबंदी करने की कृत्रिम कला उपहासजनक लगती है। गोश्त के तर्ज पर गश्त, पोश्त, तोश्त। इसी तरह अर्जी-मर्जी, मर्ज-फर्ज-दर्ज-हर्ज-गर्ज, कर्ज आदि शब्द ढूँढ-ढूँढकर लाये गये हैं।'(114) इनकी वाक्य संरचना में ऐसी तुकबंदी अच्छी नहीं लगती है। स्वच्छन्द मनःस्थिति की अभिव्यक्ति बाधित होने लगती है।

इसके साथ ही मेरा नौकर, मेरी पत्नी, मेरे पात्र आदि निबन्धों में शब्द चित्रात्मक रचना के गुण अधिक हैं ललित निबन्ध के कम। शीर्षक के साथ बंधे रहने की प्रवृत्ति भी कम नहीं है। विषयान्तर में यदा-कदा बहुत थोड़ी दूर भले चले जाते हैं परन्तु कोई महत्वपूर्ण उपलब्धि नहीं ला पाते हैं।

इसके बावजूद ललित निबन्ध होने का एकमात्र कारण यह है कि इन्होंने सर्वत्र सामान्य विषय के बहाने अपनी निजी अभिव्यक्ति दी है, निजी अनुभूतियों को सरस सजीव ढंग से प्रस्तुत किया है। जगह-जगह मनोविनोद करते हुए बढ़ने की प्रवृत्ति है। जैसे अपनी खीझ उतारते हुए' मेरा नौकर' निबन्ध में कहते हैं-'मैं सोचता हूँ कि सबसे पहले इन्सान को ज्योतिषी से यही सवाल करना चाहिये कि मुझे अच्छा नौकर कब, कहाँ और कैसे मिलेगा और यह भी पूछना चाहिए कि कौन ग्रह है जो अच्छे नौकर के मार्ग में बाधा बनकर खड़ा है और कैसे उसका शमन होगा।'(115) अपनी पत्नी से परेशान निबन्धकार का आत्मव्यंग्य भी कई जगहों पर सरस, रोचक आहलादकारी बन उठा है। जैसे-'बात यह हुई कि आम चुनाव में बेहद दौड़-धूप करने की वजह से मिनिस्टर नहीं तो डिप्टीमिनिस्टर तो जरूर होऊँगा ऐसा मैं सोचता था। पर जो लिस्ट निकली उसमें पार्लियामेंटरी सेक्रेटरी में भी अपना नाम नहीं था।'(116) इसी तरह'मैंने साहित्य के मैदान में बड़े-बड़े प्रतिद्वन्दियों को पछाड़ा है, राजनीति के गगन में भी मैंने कितने पहलवानों को चारो खाने चित किया, पर घर में घरनी के आगे मैं हारा हूँ और बेतरह हारा हूँ।'(117)

ऐसे रोचक प्रसंग सर्वत्र मिलते हैं, जिसमें आकर्षण है। कथा कहने की कला में, संवाद शैली के प्रयोग में कुशलता होने के कारण ये पाठक को अपने साथ कर लेते हैं। पाठक थोड़ी देर के लिए इनके साथ हो लेता है जहाँ कुछ उपयोगी बातें मिल जाती हैं-वर्त्तमान जीवन शैली, व्यवस्था, सामाजिक, पारिवारिक, राजनीतिक क्षेत्र का वर्त्तमान स्वरूप इत्यादि। जैसे-'राजनीति ऐसी हो गयी कि बेशर्म और बेहया, बेधर्म और बेदया। चेले हैं जिनको रोज कुछ नहीं चटाइये तो आप को ही चट कर जायेंगे।'(118) या,

'प्रजातंत्र में चुनाव के चक्कर में भी जेब का ही जादू काम देता है।'(119) या,

स्त्रियाँ एक और जहाँ मातृत्व का रूप धारण कर जगत का पालन-पोषण करती है वहीं दूसरी और कालिका के रूप में उनका संहार भी करती हैं। और यह भी कि चुनाव प्रचार में उम्मीदवार मात्र सब्जबाग दिखाया करते हैं जनता को उनसे सावधान रहना चाहिए। क्योंकि वोट लेने के लिए ये कहते हैं-'ले लो बच्चू जो लेना हो, पर तुम्हीं से सूद समेत सब वसूल करेंगे। परमात्मा करे, हम कामयाब हो जायें फिर चाहे तुम हो या हम। इतना सारा कुछ होने के बावजूद भी आज ऐसे ललित निबन्धों को उच्चकोटि के निबन्धों के बीच रखना उचित नहीं लगता है क्योंकि हिन्दी साहित्य में ललित निबन्ध जिस सभर व्यक्तित्व की रोचक अभिव्यक्ति से लगातार अपने स्वरूप में निखार पा रहा है, वहाँ ऐसी रचनाएँ सामान्य से नीचे के स्तर में ही रखी जायेंगी।

इन निबन्धों में आज हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र आदि के निबन्धों के समान विशेषताएँ ढूँढना व्यर्थ है। इतना ही कहा जाना उपयुक्त होगा कि अपनी निजी जीवन की रोचक अभिव्यक्ति है जहाँ किसी विशेष व्यवस्था अथवा रीति का पालन नहीं होने के कारण विश्रृंखलता हैं विभिन्न विचार अभिव्यंजित हो गये हैं, जिनमें आत्मपरकता एवं उपयोगिता है। सरल भाषा में आत्मीयतापूर्वक वार्तालाप शैली अपनाते हुए अपनी अनुभूतियों को निश्छल भाव से बतलाने की प्रवृत्ति है। इसलिए इन्हें ललित निबन्धों के वर्ग में रखना अनुचित नहीं होगा।

(7) जैनेन्द्र कुमार (1905–1988 ई.)

जैनेन्द्र कुमार ललित निबन्धकारों में से एक ऐसे निबन्धकार के रूप में दिख पड़ते हैं, जिनका स्वाधीन मन अधिक से अधिक निजी विचारों में ही भ्रमण करता है इसलिए कभी-कभी लगता है की इनमें मन की मुक्त उड़ान

वाले ललित निबन्ध लिखने की प्रवृत्ति नहीं है। ये मूलतः विचारात्मक निबन्धों के निबन्धकार है। अपने कुल तेरह विचारात्मक गद्य संकलनों में अधिकांशतः गुरू-गम्भीर चिंतन और विचार ही व्यक्त किये है। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि इनके सारे निबन्ध शुष्क भूमि की उपज है, जिनसे पत्तों की खड़-खड़ ध्वनि के अतिरिक्त कुछ नहीं हाथ लगता है। 'सोच-विचार' (प्रथम सं. 1953, पुनरावृत्ति-1973 ई.) निबन्ध संग्रह के निबन्धों-(1) 'आप क्या करते हैं?' (2) 'प्रचार' (3) 'सम्पादकीय मैटर' (4) 'राम कथा' (5) 'रामनाथ की बात' (6) 'दही और समाज' (7) 'बाजार-दर्शन' (8) 'हरे राम' (9) 'मेंढक' (10) 'दफ्तर और' एवं (11) 'होली' में निबन्धकार जैनेन्द्र कुमार निजी अनुभव, मान्यताओं और सामान्यजनजीवन के बीच उठते विभिन्न प्रश्नों का उत्तर, रोचक ढंग से प्रस्तुत करते हैं।

इन निबन्धों में निबन्धकार जैनेन्द्र कुमार उद्भट विद्वान की विद्वता के अहंकार से नीचे उतरकर सामान्य जनजीवन के बीच अनुभवी ज्ञानवान व्यक्ति की भाँति वार्तालाप करते हुए, सामान्य विषयों पर रूचि रखते हुए, कुछ अपनी, कुछ दूसरों की कुछ समाज की, कुछ राष्ट्र की चिन्ताधारा से, सहज ही जुड़ जाते हैं। केवल सोचने वाला साहित्यकार इन निबन्धों में बोलने लगा है। अपने अहं के घेरे से बाहर निकलकर पाठक से अपनत्व बना लिया है। निजी जीवन की गाथा सुनाता है। अपने भीतर के दर्द और कार्य व्यापार क्षेत्र में अपनी स्थिति ठीक उसी प्रकार बतला जाता है, मानो कोई सुहृद मित्र हो। अपने आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के व्यक्तित्व को पाठक के सामने निष्कपट भाव से रख देता है।

इन विशेषताओं के रहते हुए भी जिनके साहित्यिक व्यक्तित्व में दर्शन, चिन्तन-विचार और सृजन की गम्भीरता रची-बसी है। वह चाहे लाख सहज हो जाय, गलबाँही डालले, परन्तु मुँह खोलते ही वही कुछ बतला जाएगा। इसलिए इन निबन्धों में भी उनकी वैचारिकता का प्रभाव है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है। विशेष है विचार-अभिव्यक्ति की कला। इन निबन्धों में जैनेन्द्र कुमार अपने विचारों को कहीं कथात्मक रूप में तो कहीं संवादों में, कहीं कल्पना में तो कहीं यथार्थ रूप में सम्प्रेषित कर जाते हैं। शुष्क रूप में रखकर या पाठकों पर थोपकर आगे नहीं बढ़ जाते हैं। इन निबन्धों में से किसी भी एक निबन्ध को उठाकर देखने पर उसमें सर्वत्र विचार ही विचार

मात्र नहीं मिलते हैं। विचारों की अभिव्यक्ति में आत्मीयता का रंग है, निजीपन की गंध है, कथा-संवाद का रस है और सबसे बड़ी बात यह कि प्रश्नोत्तर पद्धति में विचार खुलते हैं। कहीं-कहीं विषयान्तर में जाकर भेद खुलता है। कहीं आत्म-व्यंग्य में रहस्य उद्‌घाटित होता है, तो कहीं अचानक विचारों के गुच्छे के रूप में पूरा अनुच्छेद उपस्थित होकर विचार प्रधान निबन्ध होने का भ्रम मन में बैठाने लगता हैं जैसे-

'लेकिन इतना तो है कि जहाँ तृष्णा है, बटोर रखने की स्पृहा है, वहाँ उस बल का बीज नहीं है। बल्कि यदि उसी बल को सच्चा बल मानकर बात की जाय तो कहना होगा कि संचय की तृष्णा और वैभव की चाह में व्यक्ति की निर्बलता ही प्रमाणित होती है। निर्बल ही धन की और झुकता है। वह अबलता है। वह मनुष्य पर धन की और चेतन पर जड़ की विजय है।'(120) (बाजार दर्शन)

होली निबन्ध में 'होली' के बहाने भारतीय पर्व-त्योहार का महत्व दर्शाते हुए युद्ध अथवा विरोध को हैय और विरोधी तत्वों के समन्वय को मानव जीवन का पोषक बतलाया गया है परन्तु बीच में काम, कामना और ब्रह्मचर्य पर दार्शनिक मुद्रा में बैठकर निबन्धकार बतला जाता है-

'शायद आदमी अपने दिमाग के जोर से आदमीयत से दूर जा भटका है। एक भेद तो प्रकृति ने उसे आदि से ही दिया है वह स्त्री और पुरूष का भेद। उस भेद का प्रयोजन था सृष्टि। भेद होकर तो वह कष्टकर ही था और उसमें भिन्न होकर स्त्री-पुरूष आपस में अब भी जूझ रहे हैं, लड़ रहे हैं और मिल रहे हैं और फिर लड़ रहे हैं। इस तरह वे सृजन कर रहे हैं... इसको तो हम सचमुच काम का युद्ध कह सकते हैं। काम निसन्देह काम की चीज है। मत सोचिए कि इस युद्ध में कम लोग काम आ रहे हैं। घर-घर इसका मोर्चा है और ममतिक उसका रूप है।'(121)

और फिर आगे यह भी कि'पुरूष रहे और स्त्री से निरपेक्ष रहे- यह असत्य है। निरर्थक नहीं, यह अनर्थक है। स्त्री हो और पुरूष को उपेक्षा देकर वह जीए-यह असम्भवता है, अकृतार्थता है। अधूरेपन को पूजना चल नहीं सकता। ब्रह्मचर्य अवश्य ही परम सत्य है, पर उसका मतलब एकाकीपन नहीं है। जो नारी को नहीं अपनाता, उसे नारीत्व को अपनाना होगा। नर से वही स्त्री बच सकती है जो नरत्वअपने में लाती है। इस आशय में आदर्श अर्धनारीश्वर है।. .. नर को नरत्व के और नारी को नारीत्व के घेरे में कैद रखने के रूप में

जो ब्रह्मचर्य की रक्षा देखते हैं वे सत्य को नहीं देखना चाहते, अपने हठ में ही दृष्टि गाड़ रखना चाहते हैं।''(122)

इन उद्धरणों से स्पष्ट है कि निबन्धकार ने अपने ज्ञान और अनुभव से मानव मन के भीतरी परत के स्वरूप एवं वृत्तियाँ पकड़ ली है। आत्मबल द्वारा इस यथार्थ पर प्रकाश डालने के क्रम में किसी शास्त्र अथवा विद्वान के उद्धरणों का सहारा नहीं लिया है। इसलिए इनकी मौलिक मान्यता ही समझी जायेगी। जो प्रायः सत्य है और सहज रूप में गुढ़ तथ्य की अभिव्यक्ति है। ऐसे ही संदर्भों से युक्त इनके निबन्धों के सम्बन्ध में'सोच-विचार' पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर उचित ही लिखा गया है कि-'इनमें कहानी जैसा रस और विचारों की गहराई एक साथ है। ये जीवन की छोटी से छोटी समस्याओं का बौद्धिक विश्लेषण ऐसी रोचकता के साथ प्रस्तुत करते हैं कि पाठक को जटिल से जटिल विचार-ग्रन्थि की गहराइयों में पैठने का रास्ता मिल जाता है। जीवन की छोटी-छोटी बातें कितना गहन अर्थ रखती है? यह इन रोचक निबन्धों के लघु आकार में भी बड़ी महानता से व्यक्त किया गया है।''(123)

इसी निबन्ध में निबन्धकार ने होली को खुल खेलने का पर्व माना है। जहाँ आवेग अवसर पाकर मर्यादाओं को मन्द कर देता है, विधि-निषेध की जकड़ ढीली पड़ जातीहै और स्त्री-पुरूष पिचकारियों से पानी और कनखियों से प्यार फेंकते हैं। खुली प्रकृति में प्रीत के हाथ होकर निखरे यथार्थ के आवरणहीन क्षण में सुन्दर-असुन्दर सब एकत्व प्राप्त करते हैं।

इनके ललित निबन्धों में विविध विचार उभरते गये हैं-'आप क्या करते हैं?' निबन्ध में गीता में व्यक्त विचार-'कर्म करो। कर्म में अकर्म करो।' से अपने मित्रों द्वारा बार-बार पूछे जाने वाले इस प्रश्न को जोड़कर इसका समाधान ढूँढा गया है।'रामनाथ की बात' निबन्ध में कम्युनिज्म और वैयक्तिक जीवन की समस्याएँ उभरकर सामने आयी हैं।'दही और समाज' में पूंजीवाद एवं समाजवाद के बीच की खाई पाटने का अनोखा रोचक तरीका बतलाया गया है-'उस पूंजीवाद से खुद उसके अस्त्रों से ही लड़ा जा सकता है। पूंजीवाद की जगह समाजवाद चाहिए। समाजवाद के प्रचार के लिए पूंजी चाहिए। इसलिए समाजवादियों को पहले पूंजी बनानी होगी, तभी पूंजी और पूंजीवादियों को चुनौती दी जा सकेगी।''(124)

अपने विविध विचारों की अभिव्यक्ति के लिए इन्होंने विषय भी विभिन्न

प्रकार का चयन किया है। इनके ललित निबन्धों के शीर्षक ही इस विविधता के सूचक हैं। दूसरी बात यह कि निबन्धकार शीर्षक से हटकर विषयान्तर में जब चला जाता है, तब धर्म, राजनीति, संस्कृति, समाज कर्म-अकर्म, व्यवहार, निजी जीवन आदि से सम्बद्ध अनेक विषयों को छेड़ता जाता है। उदाहरण के लिए 'मेढ़क' में वर्त्तमान राजनीतिक व्यवस्था और सामान्य जनजीवन की समस्याएँ ही विषय बनायी गयी है, परन्तु विषयान्तर फौजों की ऐतिहासिक स्थिति से लेकर वर्त्तमान उपयोगिता तक बतला जाता है। शास्त्र एवं अन्य ज्ञान-विज्ञान द्वारा शक्ति की परम्परागत महत्ता पर बल दे दिया गया हैं। हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित निबन्ध'नाखून क्यों बढ़ते हैं' की भाँति युद्ध को मानव की बर्बरता की निशानी कहा गया है। सैनिकों की व्यवस्था और उनके अस्त्रों को जुटाने की प्रवृत्ति सामान्य जनजीवन के विपरीत व्यवस्था सिद्ध की गई है। निबन्धकार का मन कुएँ के मेंढक की निर्विध्न शान्ति से बढ़ते हुए राजनेताओं के दृष्टिकोण को पकड़ता है, राष्ट्र की चिन्ता से आगे बढ़कर पूरे विश्व की मानव जाति की चिन्ता करता है।

'दफ्तर और' निबन्ध में वर्त्तमान शहरी जीवन की भाग-दौड़, मध्यमवर्गीय परिवार की आर्थिक दुःस्थिति, अशान्ति का वातावरण, क्लब का सुखद वातावरण और निजी घर की असंतोषजनक दशा एक साथ उपस्थित है-'घर के लिए बेचारा दफ्तर जाता है, लेकिन दफ्तर उसके लिए मुश्किल से इतनी जगह छोड़ता है कि घर उसे आनन्द का नहीं, बल्कि सिर्फ भोग और कलह की जगह बन रहता है।'(125)

ऐसे ही स्थलों में जैनेन्द्र कुमार ने निजी अनुभव एवं सामाजिक परिवेश की प्रभावजनित प्रतिक्रियाओं को अभिव्यक्ति दी है, जिनमें उनके चेतन मन के ऊपरी परत की विचारशीलता देखी जा सकती है।

ये सारे विषय और विचार छेड़ने से पूर्व निबन्ध की शुरूआत आत्मपरक अथवा निज की बात से होती है। वह भी वार्तालापीय ध्वनि के साथ। जैसे-'एक बार की बात कहता हूँ। मित्र बाजार गए तो थे कोई एक मामूली चीज लेने, पर लौटे तो एकदम बहुत से बण्डल पास थे। मैंने कहा-यह क्या? बोले यह जो साथ थी!'(बाजार दर्शन) इसी प्रकार'रामकथा' निबन्ध की रोचक शुरूआत देखी जाय-'एकबार पड़ोसी सज्जन के यहाँ से निमन्त्रण आया। दशहरा पास आ रहा है, दूर से एक विद्वान पण्डित पधारे हैं, रामायण की कथा होगी-मैं कृपा कर

कथा में सम्मिलित होकर उत्सव की शोभा बढ़ाऊँ।''[127]

अर्थात् निबन्धों का प्रारम्भ कुछ इस तेवर के साथ है मानो कोई आपबीती या कहानी सुनाने जा रहे हैं। बीच-बीच में अपनी निष्कपटता का परिचय कुछ ऐसा लिखकर देते हैं, जिसमें निजी जीवन सम्बन्धी बातें, निज पर व्यंग्य, निज की सरलता, स्वाभाविकता सबकुछ एक साथ मिल जाती है-

किस बड़भागी पिता ने इस दुर्भागी बेटे का नाम रक्खा था 'दया राम'। उन्हें पा सकूँ तो कहूँ पिता तुम खूब हो। बेटा तो डूबने ही योग्य था, किन्तु तुम्हारे दिये नाम से ही वह भोला चतुर मित्रों से भरे इस दुनिया के सागर में उतरता हुआ जी रहा है। उसी नाम से वह तर जाय तो तर जाय... पर आपसे बात करते समय पिता की बात छोड़ूँ... मुझे क्या दोनों को आपके लाभ की बात करनी चाहिए तो मैंने कहा, कृपापूर्वक बताइए क्या करूँ?'[128](आप क्या करते हैं? निबन्ध)

इनके ललित निबन्ध संवादों से भरे हुए हैं। इन्होंने अपने मित्रों, अपनी पत्नी आदि से हुए वार्तालाप को सीधे संवादों में ही रख दिया है। ये संवाद कहीं-कहीं लम्बे और अनावश्यक विस्तार की ऊब पैदा करते हैं-जैसे-हरीश और विमला के संवाद (रामकथा' में)'[129] परन्तु कहीं संक्षिप्त और रोचक भी हैं जैसे-निबन्धकार और उनकी पत्नी के बीच'दही और समाज' में दही जमाने के क्रम में रोचक संवाद।'[130]

कहीं-कहीं तो जैनेद्र कुमार बीच में कथा ही कहने लगते हैं। जैसे-'पड़ोस में एक महानुभाव रहते हैं जिनको लोग भगतजी कहते हैं। चूरन बेचते हैं। यह काम करते जाने उन्हें कितने बरस हो गए हैं।'[131]

'दही और समाज' में तो निबन्धकार'दही' से ही काल्पनिक संवाद में व्यस्त हो जाते हैं, परन्तु बीच में पत्नी का संवाद आ जाता है-'कहा-हजरत सच कहिए कि वह आप हैं, जो इतने दूध को कुछ घण्टे में दही कर देते हैं... दही साहब कुछ नहीं बोले। ऐसा मालूम हुआ कि शरम के मारे वह कुछ और सफेद पड़ गए हैं। मैंने कहा-घबराइये नहीं। श्रीमतीजी के अलावा मैं और किसी से बेजा सलूक नहीं करता।''[132]

मन का स्वच्छन्द विचरण के सम्बन्ध में इनकी अपनी धारणा है कि मनुष्य के भीतर छोटा सा विचित्र मन है जो देश और काल की बाधा से बाधित नहीं होता है।'निबन्धकार स्वयं कुर्सी पर बैठे हैं और इनका मन रामकथा सुनने के

क्रम में अपने बच्चों के राम दशरथ पुत्र राम नहीं बल्कि अद्वितीय, असीम अगोचर अगाध हैं।'(133)

हिन्दुस्तान की धर्मपरायण प्रकृति संसार में अपना गौरव सदियों से कायम रखी है। यह यहाँ के निवासियों के लिए बहुत बड़ी शक्ति है। मानवतावादी दृष्टि को सप्राण बनाये रखने वाली यह शक्ति विश्वशांति बनाने में सफलता दिलायी है। परन्तु विपरीत सोच व्यक्त करते हुए जैनेन्द्र कुमार ने'रामकथा' में कहा है-'विज्ञान आविष्कार कर रहा है, भारत धर्म पर माथा टेके वहीं ऊँध रहा है धर्म भारत का नशा है, वह क्लैव्य है, वह बुद्धिहीनता है।''(134)

इस प्रकार ललित निबन्ध के प्रायः सभी तत्व इन निबन्धों में मिल जाते हैं। जहाँ तक विचार श्रृंखला की बात है तो वह भी प्रायः विश्रृंखल है। विचारों का बदल जाना बीच-बीच में भाव का भरता जाना और कथा-संवाद का उपस्थित होना रोचकता एवं प्रभाव बढ़ाता जाना है। कथ्य एवं शिल्प दोनों दृष्टि से वैविध्य सहज ही देखा जाता है। मनोरंजन तो विचारों से भी होता है आह्लाद का कारण कुछ भी बन सकता हैं। शर्त है-सहज स्वाभाविक अभिव्यक्ति हो, मस्तिष्क को अतिरिक्त बोझ न उठाना पड़े। प्रस्तुत सभी निबन्ध इस दृष्टि से भी ललित निबन्धों की श्रेणी में रखे जाने योग्य हैं। इनकी भाषा सामान्य बोल चाल की भाषा हैं एक विचारक, तत्वचिंतक ने जहाँ भी गूढ़ बातों को रखा है, बिलकुल ऐसे संत की वाणी की तरह जो हजारों की भीड़ को सम्बोधित कर रहा हो।'(135) शब्द चयन कहीं भी इस प्रकार का नहीं है कि पाठक को धर्म-दर्शन की जटिल शब्दावली के जंगल में भटकना पड़े। अंगरेजी, उर्दू फारसी के शब्द भी व्यावहारिक जीवन के क्षेत्र से लिए गये हैं।

इन निबन्धों में दो बातें खटकने वाली है। पहली यह कि भाव अथवा राग पक्ष की अपेक्षा विचार अधिक मुखरित है। तर्क-वितर्क, तक पहुँचने में बाधा पह्नचाते हैं, जहाँ सफल ललित निबन्ध सहज आनन्द प्रदान करता रहता है। दूसरी बात यह कि सहज सामान्य जीवन के प्रश्नों, समस्याओं पर रूचि रखकर भी निबन्धकार के उसी व्यक्तित्व की छाप है, जिसमें कर्म-अकर्म की गीता की वाणी,'(136)समाज, राजनीति के प्रति मानवतावादी दृष्टि से विचार करते जाने की, अपने दृष्टिकोण रखने कीकुछ उपदेशक प्रवृत्ति है।

इसके बावजूद चूंकि आत्मीय वार्तालाप शैली में निबद्ध ये निबन्ध सामान्य स्तर के पाठकों को भी प्रिय लग जाते हैं। एक विचारक अपने को सहज रूप

में रखकर जीवन से जुड़े सामान्य विषयों पर रूचि रखते हुए कुछ हल्के अन्दाज में गूढ़ रहस्यों का भेद खोल जाता है। अपने भीतर संचित विस्तृत अध्ययन एवं अनुभव का सार निष्कपट भाव से सुपाच्य बनाकर प्रस्तुत कर देता है। बीच-बीच में आनन्द का रस भरता जाता है। अतः सामान्य स्तर के ललित निबन्धकारों में अपना स्थान बना लेता है। इनकी ललित निबन्ध कला की प्रकृति अन्य निबन्धकारों से भिन्न है। जहाँ विचार वैविध्य में ही आनन्द प्राप्त करने की अधिक गुंजाइस है। शैली रोचकता बढ़ाने में मदद करती है। शब्द कूड़ा नहीं, हीरा बन गये हैं, जिनकी हमारे जीवन में बहुत बड़ी भूमिका है। इनके निजी विचार जनजीवन से जूड़कर अनेक समस्याओं का समाधान करते हैं।

(8) प्रभाकर माचवे (सन 1917–1991 ई.)

प्रभाकर माचवे के व्यंग्य-विनोद पूर्ण साहित्य में कुछ रचनाएँ ऐसी बन पड़ी है, जिनमें विषयान्तर में जाकर पते की बात कह देना, सामान्य विषय के माध्यम से कुछ विशेष विचित्रता उत्पन्न कर देना और पाठक के साथ आत्मीयता पूर्ण वातावरण बना लेना आदि ललित निबन्ध की विशेषताएँ हैं। ये अपने ललित निबन्धों का विषय-चयन करने में प्रतापनारायण मिश्र के समान सामान्य, तुच्छ विषयों को महत्व देते हैं। व्यंग्य विनोद की दृष्टि से भी बहुत हद तक उनके समकक्ष हैं। इनमें प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा की भाँति विचित्रता उत्पन्न करने का गुण है। शिवपूजन सहाय की तरह विचित्र भाषा का प्रयोग मिलता है।

परन्तु आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय जैसे निबन्धकारों के ललित निबन्धों की गरिमापूर्ण विशेषताएँ इनमें ढूँढ़ना व्यर्थ हैं वस्तुतः प्रभाकर माचवे समसामयिक वातावरण से समस्याओं, व्यवहारों और संगत-असंगत विचारों को लेकर उनकी हँसी उड़ाते हैं, जिसमें मीठी गुदगुदी, गुलाबी मुस्कान छेड़ने की क्षमता हैं। कभी विनोदपूर्ण उक्तियों से हृदय खिल सकता है तो कभी चुटीले व्यंग्य से आंखों की पुतलियाँ चमक सकती हैं। अतः इन्हें हल्की-फुल्की रचना के रूप में ही देखा जा सकता हैं इस दृष्टि से देखा जाय तो मुख्य ललित निबन्ध हैं-

(1) 'एक कुत्ते की डायरी' (2) 'घूस' (3) 'बेरंग' (4) 'घुटना टेक निर्वाण' (5) 'इदं न मम' (6) 'छाता' (7) 'खरगोश के सींग।

इन निबन्धों में मनोरंजन या बकवास मात्र नहीं है, बल्कि बीच-बीच में एक विचारक व्यंग्य के सहारे बहुत कुछ कहकर हमें सचेत कर जाता है। कुछ

विचित्र एवं पते की बात आत्मीयतापूर्वक कहकर थोड़ी देर के लिए हमें सोचने के लिए विवश कर देता है। इनमें इनके निबन्ध 'कान' की तरह मुहावरों की लड़ी मात्र प्रस्तुत नहीं है। केवल शब्द जाल में उलझाने या भाषा चमत्कार दिखने की कला नहीं है। इनकी स्वाधीन मनः स्थिति में सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाएँ, समाज का दर्शन और अपना अनुभूत सच भी समाहित है।

'एक कुत्ते की डायरी' डायरीनुमा शैली में रचित निबन्ध है, जिसमें समाज के वर्त्तमान स्वरूप पर विभिन्न दृष्टि कोणों से प्रकाश डाला गया हैं।जैसे-'मालिक कह रहे हैं कि इन मजदूरों ने आजकल जहाँ देखो वहाँ सिर उठा रखा है। कुचलना होगा इसे। जान पड़ता है मजदूर कोई साँप है। मालिक के मित्र बतला रहे थे कि उत्पादन में कमी हो रही है। हड़तालों के मारे तबाही मची हुई है।... मालिक की लड़की कुछ उद्धृत जान पड़ती है, बाप से मतभेद रखती है। यही तो कुत्तों की जाति और मानव-जाति में अन्तर है-कुत्ता सदा वफादार रहता है, आदमी, ये अहसान फरामोश हो जाते हैं।''(137)

वर्त्तमान अर्थलोलुप समाज की दयनीय स्थिति का चित्रण और उस पर व्यंग्य बहुत ही मारक है-'जैसे मेरी जाति (कुत्ता) के प्राणी अपनी पूँछ हिलाने लगते हैं, वैसे मैंने कई विद्वान, चरित्रवान, निष्ठावान, धर्मवान (माने जाने वाले) महानुभावों को पैसे की सत्ता के आगे पिघलते हुए देखा है।''(138)

साहित्य और सिनेमा समाज का दर्पण है। सिनेमा देखता हुआ कुत्ता अनुभव करता है-'जैसे हम लोगों में प्रेमातुरता होती है वैसे ही इनके चलचित्रों की नायक-नायिकाएँ दिखाती है। कोई खास अन्तर लड़ने-भिड़ने में भी नहीं-जैसे दो श्वान एक हड्डी के लिए लड़ते हैं, दो मानव एक मानवी के लिए या मतके लिए या पराये देश के लिए।...मानव जाति को मैं बड़ा आदर्श समझता था परन्तु वैसी कोई बात नहीं।'(139)

इसी प्रकार 'घूस' निबन्ध में'है ईश्वर! जग है नश्वर फिर भी शाश्वत है रिश्वत'(140) कहकर वर्त्तमान जीवन में पत्नी और बच्चों को मनाने से लेकर हाट-बाजार, कार्यालय के अफसर, यात्रा-पथ के साथी तक घूसखोरी के वातावरण का यथार्थ प्रस्तुत कर दिया गया है।

'बेरंग' निबन्ध में गोरे काले के रंगभेद की त्रासदी झेलते मानव समाज का रूप देखा जाय कि 'एक काले हब्शी को एक गोरी अमरीकन महिला का अधर स्पर्श करने के अपराध पर जिंदा जला दिया गया, दूसरी और एक अंग्रेज ने

एक हब्शिन पर बलात्कार किया, जिस पर उसे बीस डालर'जरीमाना' हुआ और वह भी किश्त से वह भर सकता है-वह छूट गया।'(141)

'घुटना टेक निर्वाण' में पते की बातें कहते हैं-'मनुष्य मात्र कमजोर है और अपने से बड़ी शक्ति के आगे उसके मन में भयकातर भाव जागृत हो ही जाता है।'(142) कितनी संगीन तरीके से उन बातों की और भी मन भटकता हुआ चला जाता है जिसपर सामान्य लोगों का ध्यान कभी नहीं गया, वह इसी बात से पता चल जाता है-

'देखिए, दिन में चौबीस घण्टे होते हैं, आठ घण्टे हम यों ही सोने में गँवा देते हैं, मैं हिसाब करता हूँ। अपने जीवन के $64 \times 8 \times 365 =$ अट्ठारह लाख छह हजार आठ सौ अस्सी घण्टे हमने यों ही बिता दिये।'(143)

'इदं न मम' प्रारम्भिक प्रस्तावना के आगे 'आत्मकथा के नाम पर ललित निबन्ध ही है जिसमें स्व के उद्घाटन के सम्बन्ध में अनेक बातें गीता की पंक्ति, फ्वारबाल और अन्य दार्शनिकों के उद्धरणों के साथ आयी हैं।

'छाता' में देवेन्द्रनाथ शर्मा के ललित निबन्ध 'साइकिल' की भाँति अनेक उपयोगिताएँ दिखलायी गयी हैं जैसे-मित्र से सहानुभूति और उदारता प्रकट करने, कीचड़ से बचने, दूसरे व्यक्तियों से मुँह छिपाने आदि में यह उपयोगी है।

'खरगोश के सींग' में प्रतीकात्मकता और प्रहसन तक ले जाने की कला का दर्शन होता हैं सींग के पर्याय ही अधिक प्रस्तुत हुए हैं। विचित्रता मात्र वहाँ है, जहाँ उसने रिश्वत न लेनेवाला सिपाही, फैशन न करने वाली लड़की, प्रांतीयता से मुक्त पंजाबी, बंगाली आदि देखने का दावा किया हैं अर्थात् 'खरगोश के सींग' देखा है।

इतना सबकुछ करने के पीछे माचवे का मन लालित्य को अधिक से अधिक उभारने में लगा रहता है जिससे इनकी रचनाएँ व्यंग्य, प्रहसन की और अधिक चली जाती है। इनके निबन्धों में बहुत स्वाभाविकता या रागात्मकता नहीं आ पाती है। विषयांतर में जाने की प्रवृत्ति होने के बावजूद कोई दूर की मूल्यवान कौड़ी नहीं ला पाते हैं। इसके नाम पर शहरी जीवन की बिखरी हुई ठीकरियाँ भले ही बटोर लायें। विभिन्न क्षेत्रों का आखों देखा हाल भले बतला दें।

इन निबन्धों में प्रभाकर माचवे का व्यक्तित्व बहुज्ञ, बहुआयामी, दर्शन एवं साहित्य के अध्येता के रूप में न आकर कुछ हुल्लड़, बकवासी, वाक्चातुर्य सम्पन्न विधार्थी के रूप में आया हैं इसे सभर व्यक्तित्व नहीं कहेंगे। इसलिए

लगता है कि इनके ललित निबन्ध ठीक उन शहरी इमारतों के समान हैं जिसमें बाहरी चमक-दमक, आकर्षण और साफ-सफाई तो है परन्तु भीतर का मालिक बहुत कम, कभी-कभी उस घर में आ जाता है। बाहर से लाये गये हल्के-फुल्के सामानों को भाषा के चमत्कार से सजा देता है और मनोरंजन करने में सिद्ध हस्त हो जाता है।

आज हिन्दी ललित निबन्धों के स्वरूप में जिस ऊँचाई को छू लेने की क्षमता आ गयी है उस ऊँचाई तक इन निबन्धों में जाने की क्षमता नहीं है। फिर भी मूल्यांकन का द्वन्द्व तब टकराने लगता है जब ललित निबन्ध का प्रारम्भिक स्वरूप दिख पड़ता है। इसलिए इन निबन्धों को प्रतापनारायण मिश्र और शिवपूजन सहाय के निबन्धों की श्रेणी में रखा जाना ही उचित है। इनमें देवेन्द्रनाथ शर्मा के निबन्धों की भाँति विचित्र एवं पते की बात कहने की प्रवृत्ति भले ही है, परन्तु उनके समान सहज एवं सभर व्यक्तित्व का उभार नहीं हो सका है। आज हमारे पास हिन्दी ललित निबन्ध का जो सम्पन्न साहित्य उपलब्ध है उसके साथ हँसी-खुशी पाकर ही मात्र क्रीड़ापरक रचनाओं को रखना हमारे विवेक की असफलता ही होगी। फिर भी अपनी नैतिकता का आदर्श यदि 'बड़े को पाकर लघु को नहीं त्याग देने' का है तो इन निबन्धों को भी मनोरंजन और विचार के कुछ कणों के साथ व्यंग्याघात के लिए ही ललित निबन्ध-साहित्य के अंतर्गत रख लेना अनुचित न होगा।

(9) शिव प्रसाद सिंह (जन्म—1929—1998 ई.)

शिव प्रसाद सिंह के निबन्ध सहज बातों से शुरू होते हैं। विषय भी सामान्य होते हैं। विषयान्तर में जाने की प्रवृत्तियाँ भी देखी जाती है।'मैं' 'मेरा' की शैली में कई प्रसंग निबद्ध होते हैं। इस दृष्टि से ललित निबन्ध की कुछ विशेषताएँ अवश्य रहती है। इसलिए इन्हें ललित निबन्धों की श्रेणी में रखी जाती है।

परन्तु कुछ निबन्ध तो भावात्मक प्रवाह में बहती हुई अनुभूतियों की नदी ही हैं, जिन्हें मैंने भावात्मक निबन्धों के वर्ग में ही रखने की कोशिश की है। कुछ निबन्ध ऐसे भी है जिनमें आत्मपरकता है। उद्धरणप्रियता है। विषय भी सामान्य है। परन्तु या तो शीर्षक से दूर जाने की प्रवृत्ति नहीं है या फिर पूरे निबन्ध में चिन्तन और विचार ही अधिक प्रभावशाली हो गये हैं। इनमें भी भावों और विचारों का वैसा मणिकांचन संयोग नहीं दिखता है जो भावात्मक एवं विचारात्मक निबन्धों से परे शुद्ध ललित निबन्धों में लालित्य भरता है। इन दोनों प्रकार के

निबन्धों का प्रतिनिधित्व करने वाले निबन्ध क्रमशः हैं-

1.'तीन घेरे एक क्षितिज' जिसमें भाई-बहन के बीच के भावात्मक सम्बन्ध के आँसू बहाये गये हैं।

2.'कहीं कुछ गड़बड़ है' जहाँ वर्त्तमान नयी पीढ़ी और पूरानी पीढ़ी के बीच का मतैक्य-कहीं कुछ गड़बड़ है, के विचार ही भरे हुए हैं। इतिहास और वर्त्तमान दोनों तक दौड़कर भी मात्र यही देखने की कोशिश है जिसमें ज्ञानप्राप्ति की दृष्टि से उपयोगिता है, लालित्य की दृष्टि से नहीं। निबन्धकार ने स्वयं स्वीकार किया है कि मैं हिन्दुस्तानी बौद्धिक मात्र हूँ। इन निबन्धों को देखकर डॉ बच्चन सिंह के कथन पर पूर्ण विश्वास हो जाता है कि'शिव प्रसाद सिंह का'शिखरों के सेतु' भावनात्मक ललित निबन्धों का अच्छा संकलन है।'(144) साथ ही परमानन्द श्रीवास्तव के कथन पर भी कि 'चतुर्दिक' संग्रह के निबन्धों में'शिवप्रसाद सिंह निरन्तर एक चिन्तन की मुद्रा बनाये रहते हैं। सहजता से गम्भीरता की और जाते हैं।'(145) अतः अतिशय भावात्मकता और चिन्तन या गम्भीरता की मुद्रा वाले इन निबन्धों को ललित निबन्ध के अंतर्गत नहीं रखा जा सकेगा।

(10) अज्ञेय (सन् 1911–1987)

अज्ञेय के निबन्ध संग्रहों- 'त्रिशंकु', 'भवन्ती', 'जोगलिखी', और 'आत्मनेपद' में ललित निबन्ध नहीं मिलते हैं। इनमें वैयक्तिक संदर्भों में कुछ निबन्ध लिखे जाकर भी निर्वैयक्तिक हो गये हैं साथ ही लालित्य का कहीं उभार नहीं मिलता है। डॉ. बच्चन सिंह ने संकेत दिया है कि 'अज्ञेय ने कुछ निबन्ध'कुट्टिचातन' के नाम से भी लिखे हैं। कुट्टिचातन के नाम से उनके ललित निबन्धों का एक संग्रह 'सबरंग' शीर्षक से भी प्रकाशित हुआ है।'(146) समीक्षकों ने इस संग्रह की बहुत प्रशंसा की है। सन 1956 में प्रकाशित इन निबन्धों के सम्बन्ध में डॉ. मु.ब. शहा ने कहा है-'कल्पना की उड़ान और विचारों की गंभीरता का सुखद संयोग'सबरंग' के निबन्धों में पाया जाता है।'(147) इनके अनुसार'राष्ट्र के प्रतीक','मार्ग दर्शन','पहला रिपोर्टर','पनीर का टुकड़ा','सभ्यता की न्यामते','कुछ वर्गवाद' और 'दृष्टिकोण' जैसे निबन्ध अपने आप में बेजोड़ हैं। परन्तु श्री वल्लभ शुक्ल इन्हें क्रीड़ापरक निबन्धों की श्रृंखला में रखते हैं। प्रकाशक ने इन्हें'खूब मजेदार नाच-बड़े मजे का नाच' कहा है। खेद है कि रचना मुझे नहीं मिल सकी जिसके कारण मैं इन निबन्धों के बारे में कुछ कह नहीं सकता हूँ।

समीक्षकों द्वारा उद्धृत अंशों के आधार पर तो यही जान पड़ता है कि इन निबन्धों में व्यंग्य-विनोद की वृत्ति अधिक है। कुछ अनावश्यक चमत्कार और भाषा के साथ खिलवाड़ भी है। रंग और राग में व्यस्त निबन्धकार कहीं-कहीं बौद्धिकता चमका उठता है। विचार के कण छिटके हुए मिल जाते हैं। सूक्ष्म निरीक्षण और जीवन के प्रति सचेत दृष्टि एवं खुली हवा में विचरण करने की प्रवृत्तियाँ झलकती हैं।

इसके बावजूद ये रचनाएँ भी प्रभाकर माचवे के निबन्धों के समान व्यंग्य प्रधान हल्की-फुल्की निबन्ध रचनाओं की श्रेणी में ही रखने योग्य होगी। जो निबन्धकार व्यंग्य के बिना जी नहीं सकता हो वह अपने स्वाभाविक व्यक्तित्व में व्यंग्य ही कसता फिरेगा। भले ही उसके भीतर अर्थ की गहराई मिल जाय। आज के सम्पन्न ललित निबन्ध-साहित्य में गहरे व्यंग्य ही व्यंग्य से भरे निबन्धों के स्थान पर मनोविनोद को स्थान देना उचित है। अतः इनके निबन्धों को ललित निबन्धों की श्रेणी में रखना उचित नहीं लगता है।

(11) डॉ. इन्द्रनाथ मदान

डॉ. इन्द्रनाथ मदान ने मन की मुक्त भटकन में स्वयं को केन्द्र बनाकर कई निबन्धों की रचना की है। इनकी रचनाओं में इनकी निजी अनुभूतियाँ आत्मीयतापूर्ण वातावरण में व्यक्त होकर पाठक को मंत्रमुग्ध कर देती है। नित्यप्रति के जीवन की विसंगतियों एवं व्यक्तिगत समस्याओं के बीच बुद्धि और विवेक के कई प्रामाणिक तथ्य उपस्थित होकर कुछ उपयोगी सीख भी दे जाते हैं। हास्य-व्यंग्य के छींटे मन का परिष्कार करते हैं। सामान्य विषयों के माध्यम से जीवन की व्याख्या करने की कला सफल हुई है। विषय विविधता, हल्का विषयान्तर और नवीन रोचक दृष्टिकोण भी इन निबन्धों की विशेषताएँ हैं।

परन्तु 'कुछ उथले-कुछ गहरे' संग्रह के 34 निबन्धों में से निम्नलिखित कुछ निबन्ध ही इस दृष्टि से देखे जा सकते हैं-

(1) समस्याओं के घेरे में (2) आवाजों के घेरे में (3) मशीनों के घेराव में (4) खुशामद और खुशामद (5) काश मुझे भी आता (6) अपना मकान (7) रद्दी टोकरी (8) भविष्यवाणी (9) सहानुभूति दिखाने पर (10) ऋण बनाम उधार (11) बहाने बाजी (12) दिल बहलाने को।

इन निबन्धों में वर्त्तमान जीवन की समस्याएँ, दैनिक जीवन की व्यवहार में आनेवाली नीतियाँ और निजी जीवन की कमजोरियाँ ही विशेष रूप से स्थान पा

सकी हैं। जैसे-'समस्याओं के घेरे में' निबन्ध में'आज तेल का न होना भगवान के होने या न होने से अधिक हैरान कर डालता है, चावल का न मिलना मोक्ष के मिलने या न मिलने से अधिक तंग कर देता है। पुरखे कितने सुखी थे, कितने चिन्ता से मुक्त थे।'(148)

'आवाजों के घेरे में' ध्वनि प्रदुषण का दुख झेलते नगर जीवन की समस्या पर आधारित है, जिसमें निबन्धकार कहता है कि 'मैं गाँव से इसलिए भागा कि वहाँ मरघट का सुनसान था। वहाँ आवाजों के लिए तरसता था और यहाँ आवाजों के नीचे इतना दब गया हूँ कि किताबों की फुसफुसाहट तक सुनने को नहीं मिलती अपनी आवाज को सुनने की तो बात ही दूसरीऔर दूर है।'(149)

'मशीनों के घेराव में' निबन्ध वर्त्तमान मशीनी युग की परेशानी व्यक्त करता है-'कभी सायकल पंक्चर है, तो कभी घास काटने की मशीन कुण्ठित, कभी बेलबूटों पर दवा छिड़कने वाला पम्प रिसने लगता है, तो कभी बिजली का लट्टू बुझ जाता है, कभी ताला बिगड़ जाता है तो कभी पेन, कभी चश्मे का शीशा टूट जाता है तो कभी बिजली के पंखे का पंख टेढ़ा हो जाता है कभी रेडियो-बीमार पड़ जाता है तो कभी टेप मशीन... इनके घेराव में आकर उस पिता की तरह महसूस करने लगता है जो जुकाम के इलाज के लिए डॉक्टर के पास भागता है।'(150)

'खुशामद और खुशामद' में अपने स्वार्थ की पूर्ति के लिए खुशामद करने की रीति का और 'काश मुझे भी आता' में अनपेक्षित व्यक्ति को मिलने देने से इन्कार करने की एवं अपनी वस्तुएँ उधार न देने की कला का रोचक वर्णन है।'अपना मकान' निबन्ध में किराये का मकान ढूँढने की परेशानी के साथ अपने मकान में रहने की भी अनेक पेरशानियों पर प्रकाश डाला गया है।'रद्दी टोकरी' निबन्ध में एक और तो इसकी उपयोगिता बतलायी गयी है परन्तु दूसरी और यह भी बतला दिया है कि अपने सामान्य विषयों पर रचित ऐसे सामान्य निबन्ध भी इतने बुरे, व्यर्थ नहीं है कि इन्हें रद्दी टोकरी में फेंक दिया जाय।

वस्तुतः इन निबन्धों में वर्त्तमान जीवन की वैसी बातें आयी हैं जिनपर जन सामान्य रोज सोचता है, जिसे रोज महसूस करता है।'भविष्यवाणी' में इस प्रथा की निरर्थकता व्यक्त करते हुए इस पर व्यंग्य किया गया है।'सहानुभूति दिखाने पर' में निजी जीवन में सहानुभूति दिखाने के कारण झेले गये कष्टों का ही रोचक वर्णन है।'बहानेबाजी' और 'ऋण बनाम उधार' में भी व्यक्तिगत स्वभाव

को ही व्यक्त करके मनोविनोदी वातावरण प्रस्तुत करते हैं। यहाँ प्रश्न यह उठता है कि हम जिस वर्त्तमान को जी रहे हैं। जिस परिवेश के साथ हमारी ये आदतें जुड़ी हुई हैं, उसमें भरे हुए रस का रसास्वादन निबन्धकार कराता है तो इसे व्यर्थ बकवास क्यों समझा जाय।'दिल के बहलाने को' निबन्ध में निबन्धकार ने स्वयं कहा है-'अकविता-अकहानी में न तो सार होता है और न ही भाषा का संस्कार। अनाटक का अभी सवाल ही पैदा नहीं होता। नाटक के बाद ही अनाटक की रचना हो सकती हैं यदि अकविता-अकहानी लिखी जा सकती है तो बैठे-ठाले क्यों नहीं।'(151)

इस संदर्भ में एक बात ध्यान देने की यह है कि ये निबन्ध बैठे-ठाले मूड के अच्छे निबन्ध हैं अवश्य। फिर भी आज यदि हिन्दी में ऐसे निबन्धों को शुद्ध ललित निबन्ध की श्रेणी में रखा जाय तो सबसे बड़ा खतरा यह है कि हिन्दी साहित्य की अनेक हल्की-फुल्की रास्ता चलते बड़बड़ा देने वाली रचनाएँ ललित निबन्ध होने का दावा करने लगेंगी। जिनमें अभिव्यक्त निबन्धकार के व्यक्तित्व की गरिमा का, अनुभव एवं अध्ययन, प्रतिभा का कोई विशेष मूल्य नहीं होगा। मन की मौज में तो कोई भी वाक्चातुर्थ का परिचय दे सकता है। उसकी बातों में कुछ न कुछ सार होगा ही। बातें एक से शुरू होकर अनेक में फूटती चली जा सकती है। परन्तु इतना मात्र होना ही ललित निबन्ध होने के लिए पर्याप्त नहीं है। तात्पर्य यह कि ललित निबन्ध होने के लिए आवश्यक है कि विषय चाहे कुछ भी हो व्यक्तित्व पूरी सभरता के साथ उपस्थित हो। भटकन चाहे जिस क्षेत्र में हो कुछ विशेष, कुछ रोचक, चौंकानेवाला अथवा ज्ञान-विज्ञान, जीवन के लिए कुछ विशेष उपयोगी तथ्यों को ला सके। इसी में ललित निबन्ध की सार्थकता है। व्यंग्य-विनोद, आत्मीयता एवं आत्मपरक बातें मात्र करके दो-चार कंकड़-पत्थर उठा लानेवाला (जो रास्ते पर प्रायः सभी पथिकों। के पैरों से टकराकर गन्तव्य तक जाने में बाधा उपस्थित कर देते हैं) सफल ललित निबन्धकार होने का अधिकारी नहीं है।

इसके बावजूद ललित निबन्धों की शैलीगत विशेषताएँ होने के कारण ऐसे निबन्धों को बेकार समझकर तो कुड़ेदान में नहीं डाला जा सकता है। इसलिए आवश्यक है कि सामान्य स्तर की आत्मपरक रचनाओं की कोटि में इन्हें स्थान दे दिया जाय। ललित निबन्ध के गौरवपूर्ण स्वरूप को तभी समझा जा सकेगा।

(12) कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर—(जन्म—1906 ई.)

निजी जीवन की अनुभूतियाँ सरस मनोरंजक ढंग से व्यक्त करके पाठकों का विश्वास प्राप्त कर लेने में प्रभाकरजी के भी कुछ निबन्ध सफल बन पड़े हैं। इन्होंने भी अपने घर आँगन की, अपने इर्द-गिर्द की सामान्य बातों को विषय बनाकर कई निबन्ध प्रदान किया। मुख्य रूप से'जिन्दगी मुस्कराई' संग्रह के निबन्ध-(1) 'मैं और मेरा घर' (2) मैं और मेरा पड़ोस' (3) 'मैं और मैं' (4) 'पेड़, पशु, मनुष्य (5) 'धीरे-धीरे जियो' (6) मैं तुम वे सब अधूरे (7) लो भिखारी दूर मजदूर' आदि और (2) 'महके आँगन चहके द्वारा' संग्रह के निबन्ध (1) परिवार एक नजर में (2) घर की तीन कुंजियाँ (3) आकर्षण एक, मध्य बिन्दु दो (4) ये चार साँचे आदि विचारणीय हैं।

इन निबन्धों की प्रकृति आत्मपरक है। निबन्धकार अपने व्यक्तिगत जीवन के घेरे के भीतर स्वाधीन मनः स्थिति में मात्र भटकता नहीं है बल्कि अपने अनुभव की सच्चाई के साथ जीवन की सीख उपदेशक के समान देता है। जैसे-'इसलिए मैं कहता हूँ कि गलत फहमी को दूर करने के लिए शांत रहना जरूरी है और शांति की कुंजी बस यही है कि हम घर में जहाँ अपने अधिकार चाहते हैं, अपने कर्तव्य भी जानें और दोनों को मिलाकर जीवन में चलें।'(152)

अपने सभी निबन्धों में इन्होंने घर-घाट के जीवन की सफलता के लिए तरह-तरह की नीतियाँ रखने की कोशिश की है। जीवन का सुखद संसार बनाना इनका लक्ष्य है परन्तु सीधे विषय पर आधारित बातें हैं-ये घर की तीन कुंजियाँ बतलाते हुए कहते हैं-'इसलिए भाई मेरे, रहना, सहना और कहना की कुंजियाँ अपने पास रखिए और आराम से अपने आकर्षक घर में रहिए।'(153)

ललित निबन्धों में ऐसी उपदेशक प्रवृत्तियाँ क्षम्य नहीं है। साथ ही विषयान्तर में जाने की प्रवृत्ति भी इन निबन्धों में नहीं मिलती है। कथा का सा रस और आनन्द प्रदान करने वाले होने के बावजूद ये निबन्ध निराशा और उदासी की जगह निर्माण और उत्फुल्लता भरने वाले विचारों का आश्रय भण्डार भले ही हों ललित निबन्ध की कोटि में रखने योग्य नहीं है।

अपनी लेखन शैली के विषय में प्रभाकरजी ने स्पष्ट कहा है कि'क्या लिखने की कोई ऐसी शैली नहीं हो सकती, जिसमें लहरें भी हों, सरसता भी हो, प्रवाह भी हो, सन्तुलन भी हो और गहराई भी? मैंने सोचा-मैं ऐसी शैली पर लिखूँगा जिसमें यह सब हो और इस तरह हम जनता को वह देंगे, जिसकी उसे जरूरत है, पर इस ढंग पर कि वह उसे ले सके, पचा सके बिना कोई

बोझ भार उठाये, संक्षेप में ज्ञान, उपनिषद् का पर अभिव्यक्ति लोरियों की।'(154)

निसंदेह इन रचनाओं में इन्हें अपना लक्ष्य प्राप्त हुआ है, परन्तु ललित निबन्ध के रूप में नहीं। भाषात्मक लहरों का सतत प्रवाह और व्यवस्थित इच्छित संतुलन ललित निबन्ध का स्वरूप नहीं है। ललित निबन्ध में तो विचार और भाव मन की मौज में असंतुलित, अव्यवस्थित ढंग से चलते हैं। तरंगों में उठने और गिरने की ही अधिक गुंजाईस होती है। वह कृत्रिम नहर की धारा की लहरें नहीं बल्कि पहाड़-पर्वतों से उतरती हुई उबड़-खाबड़, कहीं समतल की गंभीरता तो कहीं ढलान की तेज रफ्तार से चलने वाली नदियों की धारा की तरंगें हैं। अतः इनके निबन्ध भावात्मक, वैयक्तिक निबन्धों के अंतर्गत रखे जा सकते हैं। अव्यवस्थित ललित निबन्धों के वर्ग में इन्हें रखना उपयुक्त नहीं होगा। ऐसे निबन्धों को ललित निबन्ध के वर्ग से परे रखकर ही आज शुद्ध ललित निबन्ध के स्वरूप को पहचाना जा सकता है। जहाँ कहीं भी रोचक रागात्मक हल्की फुल्की भाषा में जीवन के किसी भी पहलू को पाकर यदि उसे ललित निबन्ध कह देने की आलोचकीय परम्परा का मोह नहीं त्याग सकेंगे तो ललित निबन्धों को पहचानना कठिन ही बना रहेगा।

संदर्भ-संकेत

सं.	पुस्तक का नाम	लेखक/सम्पादक	पृ. सं.
1.	अशोक के फूल	ले.-हजारी प्रसाद द्विवेदी	16
2.	”	”	9
3.	”	”	11
4.	”	”	36
5.	कल्पलता	”	14
6.	”	”	57
7.	हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली	सम्पा.-डॉ. मुकुन्द द्विवेदी खण्ड-9	36
8.	”	”	38
9.	”	”	41
10.	”	”	446
11.	”	”	449
12.	”	”	455
13.	”	”	460
14.	”	”	37
14.	(क) अशोक के फूल	ले.-हजारी प्रसाद द्विवेदी	17
15.	अशोक के फूल	ले.-हजारी प्रसाद द्विवेदी	58
16.	”	”	57
17.	”	”	53
18.	कल्पलता ’	”	20
19.	हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली	सम्पा.-डॉ. मुकुन्द द्विवेदी खण्ड-9	31
20.	हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली	सम्पा.-डॉ. मुकुन्द द्विवेदी खण्ड-9	31
21.	खट्टा-मीठा	ले.-प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा	1
22.	”	”	5

23.	आइना बोल उठा	”	69
24.	”	”	5
25.	”	”	18
26.	”	”	22
27.	प्रणाम की प्रदर्शनी में	”	39
28.	”	”	80
29.	”	”	64
30.	खट्टा-मीठा	ले.-प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा	2
31.	”	”	8
32.	तुम चन्दन हम पानी	ले.-डॉ. विद्यानिवास मिश्र	112
33.	”	”	115
34.	”	”	141
35.	भोर का आवाहन	ले.-डॉ. सम्पा. डॉ. शिव प्रसाद सिंह	1
36.	”	”	34
37.	गाँव का मन	ले.-विद्यानिवास मिश्र	10
38.	”	”	20
39.	”	”	36
40.	”	”	38
41.	तमाल के झरोखे से	”	11
42.	तमाल के झरोखे से	ले.-विद्यानिवास मिश्र	88
43.	”	”	39
44.	”	”	40
45.	विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्ध	सम्पा.-भोला भाई पटेल, राम कुमार गुप्त	83
46.	मैंने सिल पहुँचाई	ले.-विद्यानिवास मिश्र	13
47.	”	”	34

48.	तमाल के झरोखे से	”	74
49.	”	”	92
50.	मैंने सिल पहुँचाई	ले.-विद्यानिवास मिश्र	70
51.	”	”	71
52.	”	”	73
53.	विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्ध	सम्पा.-भोलाभाई पटेल, रामकुमार गुप्त	85
54.	”	”	60
55.	”	”	68
56.	कहनी अनकहनी	ले.-धर्मवीर भारती सम्पा. लक्ष्मीचन्द्र जैन लेखकीय टिप्पणी	
57.	ठेले पर हिमालय	”	32
58.	”	”	33
59.	”	”	34
60.	”	”	34
61.	ठेले पर हिमालय	ले.-धर्मवीर भारती	37
62.	ठेले पर हिमालय	ले.-धर्मवीर भारती सम्पा.-लक्ष्मीचन्द्र जैन	38
63.	”	”	39
64.	पश्यन्ती	”	55
65.	”	”	59
66.	”	”	63
67.	”	”	68

68.	कहनी अनकहनी	”	7
69.	”	”	8
70.	”	”	21
71.	”	”	34
72.	”	”	80
73.	”	”	110
74.	”	”	121
75.	”	”	14
76.	”	”	16
77.	”	”	22
78.	”	”	30
79.	समीक्षा (पत्रिका-नव. दिस.1975 ई.)	सम्पा.-गोपाल राय	52
80.	प्रिया नीलकण्ठी	ले.-कुबेरनाथ राय सम्पा.- लक्ष्मी चन्द्र जैन	29
81.	”	”	32
82.	”	”	72
83.	रस आखेटक	ले.-कुबेरनाथ राय सम्पा.- लक्ष्मी चन्द्र जैन	42
84.	”	”	190
85.	गन्धमादन	”	31
86.	पर्ण मुकुट	ले.-कुबेरनाथ राय	45
87.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	सम्पा.-डॉ. नगेन्द्र खण्ड ले.-डॉ बच्चन सिंह	699
88.	प्रिया नीलकण्ठी	ले.-कुबेरनाथ राय सम्पा.-लक्ष्मीचन्द्र जैन	96

89.	प्रिया नीलकण्ठी	ले.-कुबेरनाथ राय सम्पा.-लक्ष्मीचन्द्र जैन	112
90.	”	”	26
91.	प्रिया नीलकण्ठी	ले. कुबेरनाथ राय सम्पा.-लक्ष्मीचन्द्र जैन	43
92.	”	”	79
93.	रस आखेटक	”	44
94.	”	”	46
95.	”	”	68
96.	विषाद योग	ले. कुबेरनाथ राय	12
97.	”	”	13
98.	”	”	21
99.	”	”	17
100.	”	”	71
101.	”	”	62
102.	विषाद योग	ले. कुबेरनाथ राय	98
103.	”	”	99
104.	”	”	103
105.	प्रिया नीलकण्ठी	ले.-कुबेरनाथ राय सम्पा.-लक्ष्मीचन्द्र जैन	100
106.	गन्धमादन	”	15
107.	रस आखेटक	”	39
108.	गन्धमादन	” आवरण पृ.	00
109.	आसपास की दुनिया	ले.-कामता प्रसाद सिंह ‘काम’	10
110.	”	”	22
111.	”	”	30

112.	आसपास की दुनिया	ले.-कामता प्रसाद सिंह 'काम'	46
113.	”	”	75
114.	”	”	10
115.	”	”	33
116.	”	”	34
117.	”	”	62
118.	”	”	15
119.	”	”	30
120.	सोच-विचार	ले.-जैनेन्द्र कुमार	83
121.	”	”	266
122.	सोच-विचार	ले.-जैनेन्द्र कुमार	267
123.	”	”	आवरण पृष्ठ
124.	सोच-विचार	ले.-जैनेन्द्र कुमार	69
125.	”	”	181
126.	सोच-विचार	ले.-जैनेन्द्र कुमार	77
127.	”	”	33
128.	”	”	14
129.	”	”	37
130.	”	”	74
131.	”	”	81
132.	”	”	72
133.	”	”	38
134.	”	”	34
135.	”	”	42
136	”	”	21

137. प्रभाकर माचवे-प्रतिनिधि रचनाएँ सम्पा.-कमल किशोर गोयनका 162
138. ” ” 164
139. ” ” 164
140. ” ” 164
141. ” ” 169
142. ” ” 180
143. ” ” 181
144. हिन्दी साहित्य का इतिहास सम्पा.-डॉ. नगेन्द्र 699
145. समीक्षा (पत्रिका जून 1973) प्रधान सम्पा.-देवेन्द्रनाथ शर्मा 9
146. हिन्दी साहित्य का इतिहास सम्पा.-डॉ. नगेन्द्र 698
147. हिन्दी निबन्धों का
शैलीगत अध्ययन ले.-डॉ.मु.ब.शहा 454
148. कुछ उथले कुछ गहरे ले.-डॉ. इन्द्रनाथ मदान,
सम्पा.-लक्ष्मीचन्द्र जैन 2
149. ” ” 9
150. कुछ उथले कुछ गहरे ले.-डॉ. इन्द्रनाथ मदान,
सम्पा.-लक्ष्मीचन्द्र जैन
11
151. ” ” 139
152. जिन्दगी मुसकराई ले. कन्हैया मिश्र प्रभाकर
सम्पा. लक्ष्मीचन्द्र जैन 37
153. महके आँगन चहके द्वार ” 41
154. जिन्दगी मुसकराई ” 21

तृतीय अध्याय

ललित निबन्धों का विषयगत अनुशीलन-(1)

ललित निबन्ध विषय प्रधान न होकर विषयी प्रधान होते हैं। इनमें किसी एक ही विषय पर निबन्धकार का ध्यान केन्द्रित नहीं रहता है। वह बार-बार विषयान्तर में जाकर अनेक विषयों को छेड़ता रहता है। इसलिए इन निबन्धों की विषय-विविधता की प्रकृति के बीच से उस प्रभावशाली विषय को चुन लेना उचित होगा जो सम्पूर्ण निबन्ध में किसी न किसी रूप में अधिक ध्वनित होता है। शीर्षक तो बहाना मात्र है। शीर्षक के आधार पर चलकर ललित निबन्धों के विषय को पकड़ पाना कठिन है। एक ही निबन्ध में दो या दो से अधिक विषयों की भी समाँग अभिव्यक्ति हो सकती है। अतः विषयगत अनुशीलन क्रम में उस एक निबन्ध की चर्चा उन भिन्न-भिन्न विषयों के संदर्भ में होना स्वाभाविक है। इस आधार पर प्रस्तुत तृतीय अध्याय में ललित निबन्धों का विषयगत अनुशीलन किया जा रहा है। ललित निबन्ध मुख्य रूप से निम्नांकित विषयों से अधिक सम्बन्ध रखते हैं-

(1) संस्कृति–सम्बन्धी निबन्ध:–

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने ललित निबन्धों में भारतीय सभ्यता-संस्कृति की जड़ तक जाने का प्रयास करते हैं। उस अतीत की गहराई में जाकर देख आते हैं, जहाँ आदिम बन मानुष के अस्त्र नाखून थे। धीरे-धीरे अस्थि, लोहे और आज कारतूस और तोपों का इस्तमाल करके सुख-शांति स्थापित करने का प्रयास किया जा रहा है।'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' शीर्षक निबन्ध में इसे मनुष्य की सहजात बर्बरता की निशानी और पशुत्व कहकर बतला दिया गया है कि'नखधर मनुष्य अब एटम बम पर भरोसा करके आगे की और बढ़ रहा है।'(1)

फिर भी भारतीय सभ्यता संस्कृति में लड़ने-झगड़ने के लम्बे इतिहास में बार-बार मिलते रहने की प्रवृत्ति है। इतिहास बतलाता है कि इसके संस्कार में समन्वय स्थापित करने का भारी गुण है-

'जातियाँ इस देश में अनेक आयीं। लड़ती-झगड़ती भी रही हैं, फिर प्रेमपूर्वक बस भी गयी हैं।''(2)

जाति-धर्म-सम्प्रदाय का भेद-भाव भारत में कभी भी लम्बे समय तक राज नहीं कर सका है और न कर सकेगा। क्योंकि 'देश के विधापीठ-गान्धार से

लेकर साकेत तक एकाधिक बार विध्वस्त हुए। भारतवर्ष कभी जीतता रहा, कभी हारता रहा, कभी सारा भारतीय साम्राज्य समृद्धशाली नगरों से भर गया, कभी शमशान-परिणत जनपदों के हाहाकार में झनझना उठा पर अनुसन्धान जारी रहाँ'[3] इसी पण्डितों की पंचायत' निबन्ध में भारती संस्कृति का संपूर्ण सार प्रस्तुत करते हुए निबन्धकार ने कहा है-'मेरे सामने छह हजार वर्षों की और सहस्त्रों योजन विस्तृत देश की विशाल संस्कृति खड़ी है, उसके इस वृद्ध शरीर में जरा भी बुढ़ापा नहीं है, वह किसी चिरनवीन प्रेरणा से परिचालित है।'[4]

इसी आत्मविश्वास के साथ आचार्य द्विवेदी भारतीय संस्कृति के मूल तत्व-प्रेम, उत्साह, आस्था, विश्वास, शक्ति सामर्थ्य, धैर्य, अनुभवप्रवणता, विधि-निषेध का ज्ञान भारतीयों के रग-रग में समाया देखकर अपने ललित निबन्धों में भारतीय संस्कृति पर गर्व करते हैं। 'जबकि दिमाग खाली है' निबन्ध में कहते हैं-'यह ठीक है कि पाणिनी की सन्तान आज हींग बेचती है और कुमार जीव के सगे सम्बन्धी आज सीमान्त के हिन्दुओं की बहू-बेटियों का व्यवसाय करते हैं और इस बात से भी कोई इन्कार नहीं कर सकता कि कालिदास की विहार भूमि में आज ऐसी सभ्यता (या बर्बरता) का ताण्डव हो रहा है जो चित्त को मथे बिना नहीं रह सकता, फिर भी भरोसा यह है कि वह रक्त बचा तो है।'[5]

इस प्रकार भारतीय संस्कृति से जुड़े इनके सभी ललित निबन्ध सम्पूर्ण भारतीय इतिहास को निचोड़कर जिस रूचि के साथ उपस्थित हुए हैं, अत्यन्त ज्ञानवर्द्धक और प्रशंसनीय है। ऐसे निबन्ध हैं-(1) नाखून क्यों बढ़ते हैं? (2) मेरी जन्मभूमि (3) पंडितों की पंचायत (4) जबकि दिमाग खाली है (5) अशोक के फूल (6) ठाकुरजी की बटोर।

इनके अतिरिक्त 'आम फिर बौरा गये' 'शिरीष के फूल' आदि में भी भारतीय संस्कृति के स्वर जीवित हैं। भारतीय संस्कृति की उपजाऊ भूमि पर ललित निबन्ध लिखने वाले दूसरे निबन्धकार डॉ. विद्यानिवास मिश्रजी हैं। इनमें अतीत की और झाँकने की अपेक्षा अधिक रूचि ग्रामीण लोक संस्कृति के झंकृत स्वरों में खुली प्रकृति के प्रांगण में उछलती-कुदती हुई सजीव आर्य संतानों के जीवन में है। कहीं-कहीं इस वर्त्तमान को परम्परा की तह तक जाकर देखने और तुलना करने की भी प्रवृत्ति मिलती है। इनके ऐसे निबन्ध हैं-

(1) 'गऊ चोरी' जिसमें वर्त्तमान संस्कृति का वह स्वरूप उभरता है, जो

विभिन्न रूप से चोरी कर्म में व्यस्त आधुनिक मानव की संस्कृति है। ऐसे चोर-गाय, भूमि, साहित्य और चित्त की चोरी करने में व्यस्त रहते हैं।

(2) 'धनवा पियर भइलें मनवा पियर भइलें' जिसमें भारतीय कृषि संस्कृति की पुकार शहरी साजन के हृदय को भावों से भर देती है।

(3) 'भोर का आवाहन' और (4) 'संध्या का ध्यान' जिनकी परम्परागत मंत्ररूप ध्वनि नवविवाहित दाम्पत्य जीवन का मंगल गान है। जिसकी पुरइन में और जिसके कमल में-'भारतीय सौन्दर्य अपनी मंगलमयी अभिव्यक्ति चिरन्तन काल से ढूँढ़ता और पाता आया है, सो पुरइन कर्म योग की मूर्तिमती साधना है और कमल भारतीय संस्कृति के सर्व प्रधान गुण समन्वय का प्रतिमान।'(6)

(5) 'बेचिरागी गाँव' में भारतीय संस्कृति के टूटते-बिखरते मूल्यों के प्रति क्षोभ है। क्योंकि 'गाँव की धरती चिल्ला-चिल्लाकर कहती है-' दूर हटो! संस्कृति की मयूरी आज के 'एच' और 'टी' डिजाइन के कलाहीन सत-तल्लों पर जाने से इन्कार करती हुई कहती है कि 'मुझको बख्श दो मुझे तुम्हारे गगनचुम्बी प्रासाद नहीं चाहिए। मैं अरण्य में पली थी।'(7)

और यह भी कि लोक संस्कृति अपना उद्धार स्वयं करने की क्षमता रखती है। इसलिए अपनी आत्मा के श्रृंगार-पुरइन के पात, बेला के फूल, हल्दी-दूब के थाल, कदम्ब की डाल आदि को पाने के लिए शहरी संस्कारों को विसर्जित करने की आवश्यकता पर बल देती है, जो उद्धारकर्ता समझे जाने वालों के लिए असम्भव प्रतीत होता है। भारतीय लोक संस्कृति के निरन्तर लुप्त होते जाने की स्थिति के लिए आत्म-सन्तुष्टि और नपुंसक उपेक्षा को दोषी ठहराती है। विद्यानिवास मिश्रजी लिखते हैं कि'ये जब तक हैं, तब तक बेचिरागी गाँवों की संख्या बढ़ती ही जायगी, और जिस दिन हम इन पर विजय प्राप्त कर लेंगे, उसी दिन सारा अंधकार दीप के आलोक से नष्ट हो जायगा।'

विद्यानिवास मिश्र ने प्रायः सभी निबन्धों में ग्रामीण भारतीय संस्कृति को सामने रखने की कोशिश की है।'मुरली की टेर' में चरवाहै की बेकली में पूरानी पड़ चुकी भारतीय संस्कृति का दर्द समाया हुआ है।

(7) 'आँचलिक मित्रों से' में भी ग्रामीण को बचाने का निवेदन है।

(8) 'काहे बिन सून अँगनवा' निबन्ध तो भारतीय लोक विश्वास-'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' के सन्दर्भ में भारतीय नारी की गरिमापूर्ण अस्मिता का ऐसा परिचय है जिसमें भारतीय संस्कृति का सारा शुभ, सारी श्रीबृद्धि, सारा

सुख, सारी शांति इसी की कोख से निरंतर जन्म लेती हुई दिखती है।

(9) 'शिरीष का आग्रह' में भारतीय संस्कृति का औघड़पन, सुकुमारता और ताप का अद्‌भूत साहचर्य देखा जाता है। तप-साधनारत भारतीय संस्कृति का वह रूप उभर आया है, जिसमें तप ही ज्ञान, तेज, सुन्दरता, सुख-शान्ति और जीवन की गति प्राप्त करने का संवत्सर-रूप यज्ञ है। शेर के दाँत गिनने वाले शिशु की जननी शकुन्तला मातृत्व की वत्सल शक्ति से भारतीय संस्कृति की महिमामंडित संतान-परम्परा को जोड़कर भारतीय माता के मृणाल सूत्र को धरित्री का सम्बल सिद्ध करती है।

(10) 'बर्फ और धूप' निबन्ध में निबन्धकार अन्य देशों की संस्कृति के वर्त्तमान स्वरूप देखकर आया है और भारत की वर्त्तमान बिगड़ती सांस्कृतिक दशा का आंकलन किया है। इनकी मान्यता है कि 'अपनी संस्कृति को अच्छी तरह से जानने के लिए दूसरी संस्कृति का सन्दर्भ आवश्यक है। पर हाँ दूसरी संस्कृति सन्दर्भ मात्र है, वह मूल नहीं, यह ध्यान रखना आवश्यक है।'[8]

इस निबन्ध में हमारे देश के तरूणों की दयनीय दशा का खुलकर परिचय दिया गया है। आज भारतीय किशोर-किशोरियों की पश्चिमी सभ्यता की और ललक भरी दृष्टि इनके भीतर की ऊर्जा समाप्त करके इन्हें एक नपुंसक आक्रोश, कुण्ठा और मौत की खाई में ढकेल रही है।

(11) 'आँगन का पंछी' में इसलिए अपनी संतान की सुरक्षा का ध्यान आ जाता है क्योंकि भारतीय संस्कृति की संवाहिका वही है।' अपने घर में गौरैया का घोंसला न हो और घर निवंश हो जाय' इस भय से गौरैयों की रक्षा चाहते हैं। उस गौरैया की उच्छलता, सहज विश्वास अपनी आनेवाली पीढ़ी में पाना चाहते हैं। उसी पीढ़ी में अपनी विरासत छिनवाकर उसे हँसते-हँसाते आगे बढ़ने की कामना करते हैं।

(12) 'सदा अनन्द रहे एहि द्वारे' में फगुआया भ्रमरानन्द चाहता है कि जिस पूरानी रीति से फागुन की मस्ती पूर्वज मनाते आ रहे थे वही आज भी कायम रहे क्योंकि आज गाँव भर के काका, बाबा का बड़प्पन, फागुन की मस्ती, द्वार-द्वार आनन्द मनाने का उत्साह नष्ट होता जा रहा है। यह भारतीय संस्कृति की अपमानजनक बात है।

(13) 'भरि देहु गगरिया हमारी' और (14) 'मैं मधुवन जाऊँगा रे' में व्यक्त स्वर भी इनकी ग्रामीण संस्कृति के प्रति प्रेम का परिचय देता है। (15) 'होरहा',

(16) 'धान-पान और नीली लपटें' तो भारतीय संस्कृति के सुखद अतीत और वर्त्तमान निरसता को ही व्यक्त करने वाले निबन्ध हैं। (17) 'हल्दी-दूब और दधि-अच्छत' में भारतीय संस्कृति की दूर्वा तितिक्षा की मूर्त व्यंजना है, जिसकी नोक से सौभाग्य रूपी हल्दी छिड़की जाती है।'हल्दी दूब इस देश की संस्कृति को रूप और सौन्दर्य स्पर्श देते रहे हैं, कमल गन्ध देता रहा है; पर दधि-अच्छत रस तथा शब्द देते रहे हैं।'(9) इस संस्कृति को जीवित रखने के लिए लोकजीवन की मंगल साधना में तन्मय होकर, मन से गँवार बनकर, शहरी संस्कारों को धोकर ही साहित्य की अभिव्यक्ति को भरा पूरा बनाया जा सकता है। छछिया भर छाछ से सच्चिदानन्द को भी नचाया जा सकता है। अमृतमय नवनीत प्राप्त किया जा सकता है। मानव जीवन को सार्थक बनाया जा सकता है।

अर्थात् भारतीय संस्कृति की परम्परागत अजस्रधारा के निरन्तर प्रवाह में किसी तरह की बाधा विद्यानिवास मिश्र को स्वीकार नहीं है। इन्होंने बार-बार इस बात पर बल दिया है कि हमारी संस्कृति हमें सरस सम्पन्न, और आनन्दपूर्ण जीवन प्रदान करती है। अतः इसकी रक्षा करना हमारा परम धर्म है।

संस्कृति सम्बन्धी ललित निबन्धों के तीसरे निबन्धकार कुबेरनाथ राय है। इन्होंने आंचलिक क्षेत्रों को बहुत पैनी दृष्टि से देखा है और उसके बहाने पूरे भारत देश की परम्परागत संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का अन्वेषण कर डाला है। (1) 'अन्नपूर्णा बाण भूमि' निबन्ध में मतसा गाँव की बाण भूमि संसार की सबसे उपजाऊ भूमि में से एक है। यह गोमातारूपीणी धरती है, क्योंकि बाण का अर्थ 'गाय का थन' होता है। यह भूमि चार हजार वर्षों से स्तनपान कराती हुई मनुष्य का पोषण कर रही है। यहाँ की भूमि शस्य श्यामला है। धन-धान्य से संपन्न है और पशु-पक्षियों का बसेरा है। तमिल कवियों ने मोहकता के संदर्भ में विषधर सर्पों के फन से नारी की जाँघों की उपमा दी है तो वैसे व्याल यहीं मिलते हैं। इसी धरती में पहले-पहल धान, साँवा उगाये गये। भैसों को पालतू बनाया गया। उसका दूध दुहा गया। यहाँ की खाद्य और रंघन संस्कृति पूरे भारत की प्राचीन संस्कृति है। बादशाही अन्न 'चना' यहीं सर्वाधिक होता है, जो निबन्धकार की दृष्टि से हमारे संस्कारों पर असर डालता है। यह संस्कृति के परम लक्ष्य-मानसिक और शारीरिक आरोग्य प्राप्त करने में अहम् भूमिका का निर्वाह करता है।

(2) 'सनातन नदी अनाम घीवर' में किरात संस्कृति, बौद्ध संस्कृति

यू-क्राइस्ट-संस्कार, असमिया संस्कृति की चर्चा है।

(3) 'छप्पन भोगों की इतिहास-नदी' निबन्ध में वैदिक युग की भोजन संस्कृति का विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसमें दही-भात, माँसोदन, क्षीरोदन, माँसधृतोदन की चर्चा करते हुए निबन्धकार ने लिखा है-'ऋषि कहते हैं कि कोई चाहे कि मेरा पुत्र पण्डित, यशस्वी सभाओं-एसेंबलियों में जानेवाला, प्रसन्न वाणी का वक्ता, सर्ववेदों का अध्येता तथा परमायु हो तो पति-पत्नी दोनों (संभोगपूर्व) साथ-साथ माँस-घी और भात को पकाकर 'माँसोदन' खायें।... मछली द्रविड़ संस्कृति का आशीर्वाद है। अतः सुखाद्य होने पर भी वैदिक श्रेष्ठता जो कृष्ण सार या आज्य माँस, परमान्न और सत्तू को प्राप्त है, इसे प्राप्त नहीं। आज उत्तर भारत में सत्तू किसान संस्कृति का प्रतीक है और मच्छली बाबू संस्कृति का और भारत के श्रम-विमुख जीवन-दर्शन के वंशधरों द्वारा'सत्तूखोर' शब्द एक विशेष सन्दर्भ में उच्चारित किया जाता है।'[10] होमर,इलियड के विचार, ग्रीक यूरोपीय रंघन संस्कृति भारतीय प्राचीन पाक कला से लेकर आज की डिब्बाबंद खाध्य संस्कृति तक का परिचय इस निबन्ध में मिलता है।

(4) 'स्नानः एक सहस्रशीर्षा अनुभव' निबन्ध में स्नान को पंचम पुरूषार्थ का सहोदर मानते हुए इसे भोग और श्रृंगार, धर्म और तपस्या कहा गया है। भारत देश को स्नान-वीरों का देश स्वीकार करते हुए बतलाया गया है कि 'इस स्नान-प्रेम का मूल उद्गम वर्त्तमान भारतीय जाति की आदि संस्कृति निषाद-संस्कृति में है। निषादों की स्नान-शैली थी अवगाहन अर्थात् नदी या सरोवर में स्नान।'[11] वहाँ से लेकर हड़प्पा-मोहन जोदड़ो की संस्कृति और आज की महाभूत जल में स्नान की संस्कृति की ही नहीं बल्कि भौम स्नान (मिट्टी में लोटकर), आग्नेय स्नान (पवित्र भस्म लगाकर), वायव्य स्नान (गोधूलि में), दिव्य स्नान (धूप में) वारूण स्नान (बरसते पानी में कूद-कूदकर), वाङमय स्नान (साहित्य, चिन्तन में डूबकर), मानस स्नान (देव का ध्यान करके) आदि की चर्चा कर दी गई है। ये विधियाँ भारतीय संस्कृति में चिर काल से रची-बसी हैं। इसी प्रकार वयस-स्नान या तारूण्यामृत स्नान, लावण्यामृत स्नान, इसाईयों की'बपतिस्मा' रोमन सभ्यता का धोर विलासी स्नान, तुर्की में स्नान विलास की कला, काशी के दशाश्वमेघ घाट का हड़कम्प और हुड़दंग भरा स्नान-उत्सव का रोचक परिचय दिया गया है।

(5) 'यक्ष-रात्रि' निबन्ध में दीवाली और काली पूजा से सम्बद्ध बातों में

पर्व-त्योहार की संस्कृति पर प्रकाश पड़ा है।

(6) 'मधुमाधव पुनः पुनः' निबन्ध भारतीय संस्कृति के समन्वय में आस्था और रस एवं सौन्दर्य बोध में जीवन देखने की प्रवृत्ति का परिचय देता है। निबन्धकार ने लिखा है-'हम भौतिकवाद और आध्यात्मवाद दोनों का सामंजस्य करके चलते हैं और इनके बीच की एक और कड़ी भी है मध्यमा कड़ी, रजोगुण प्रधान कड़ी अर्थात् प्राणवाद। और इस प्राणवाद का उत्तराधिकार भी हमें प्राप्त है अपने ऋगवैदिक पूर्वज से।'(11d)

(7) 'आभीरिका' स्वयं वैदिक युग की दुहिता है जिसके बहाने पूरे भारत की लोक संस्कृति का परिचय दे दिया गया है।'लोरिकायन' और 'बिरहा' पूर्वी उत्तर प्रदेश के पुरूष वर्ग की लोक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं। हरियाणा से लेकर विहार तक 'लोरकथा' या लोरिक गाथा कहै जाते हैं। इन लोक गीतों में लोक संस्कृति सप्राण हो उठती है।

(8) 'ढलती रात में मालकोश' निबन्ध में कहा गया है कि 'मनुष्य के अन्दर जो कुछ देवत्ववाला अंश है वही स्थूल रूप में धर्म और संस्कृति बनकर प्रकट होता है और धर्म तथा संस्कृति की भूमि अनुर्वर नहीं हो पाती साहित्य और कला के माध्यम से।'(12)

अतः साहित्य और कला धर्म और संस्कृति का प्रहरी, सहचर और प्रस्तोता है। ढलती रात में अलापा गया राग मालकोश अपने स्वर में लोक संस्कृति को भर लिया है।

(9) 'अर्धरात्रि के राग-यक्ष' में बतलाया गया है कि भारतीय संस्कृति में इन रागों और संगीत के प्रति कितनी आशक्ति है? कितना प्रेम? कितनी शांति? यह देह-प्राण-मन के सम्पुटों को सुप्त और निष्क्रिय करके आनन्द प्रदान करता है। भारतीय संगीत अद्वैत वेदान्त का रूपान्तर है। एक ब्रह्म का विस्तार है।'संस्कृति का धूम्रयान है साहित्य और संगीतादि कलाएँ जो हमारे इतिहास के सोम मण्डल में ले जाती है और अमृत का पान कराती है।'(13)

(10) 'सत्तूखोर आर्य' में पुनः आर्य जाति की खाद्य संस्कृति की अभिव्यक्ति हुई है। सत्तू- शर्करा-दुग्ध-धृत और मधु की ढूँढी इतिहास के आदि काल से ही यहाँ की संस्कृति का पोषक है। इसमें सत्तू, खिचड़ी, धेवड़ा, आम की चटनी, आटा, चावल, दूध, मधु, चना, जौ, पुरी-कचौरी आदि सभी खाद्य पदार्थों की संस्कृति और भिन्न-भिन्न रंघन-संस्कृति का यथार्थ अभिव्यक्त है।

(11) 'क्षीर सागर में रतन डोंगियाँ' निबन्ध में यात्रा-मार्गों, बन्दरगाहों, व्यापार, व्यापारिक वस्तुओं-क्रीतदासी, गुलाम कन्याओं से लेकर भारतीय वस्त्र, सुगन्धित द्रव्य, रत्नमालायें, रत्न मेखलाएँ आदि का वर्णन है। विभिन्न प्रकार की नौकाओं का प्रचलन एवं कुशल नाविकों का परिचय देकर भारतीय संस्कृति का विस्तार एवं प्रभाव व्यक्त किया गया है।

इस प्रकार ललित निबन्धकारों में प्रमुखता से हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र एवं कुबेरनाथ राय ही सर्वाधिक सांस्कृतिक जीवन बोधक ललित निबन्धों के रचनाकार सिद्ध होते हैं। इनके अतिरिक्त छिटफुट संस्कृति सम्बन्धी बातें अन्यत्र भी देखी जा सकती है, परन्तु वहाँ सर्वाधिक प्रभाव नहीं मिलेगा।

(2) इतिहास–पुराण–धर्मग्रन्थ एवं प्राचीन साहित्य–सम्बन्धी निबन्ध :–

कई ललित निबन्धकारों ने इतिहास-पुराण-धर्मग्रन्थ एवं प्राचीन साहित्य से जुड़े विषयों को अपने निबन्धों में समाहित कर लिया है।

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने अपने जाग्रत इतिहास बोध के कारण कई निबन्धों में ऐतिहासिक साक्ष्यों द्वारा कथ्य की पुष्टि करते हैं। कहीं-कहीं तो साक्ष्य ही प्रमुख हो उठे हैं और कथ्य सामान्य होकर अपनी पुष्टि के लिए प्रार्थी बने हुए हैं। इतिहास के प्रति सन्तुलित दृष्टि रखने वाले द्विवेदी जी ने प्राचीन शास्त्रों के गम्भीर संदर्भों को भी सहज सुपाच्य बनाकर आधुनिक संदर्भों से जोड़ देते हैं।

1.'अशोक के फूल' के बहाने द्विवेदीजी बोध साहित्य महाभारत और कालिदास के काव्यों में इसकी प्राचीनता के प्रमाण ढूँढ़ लाते हैं। पुराणों का साक्ष्य प्रस्तुत करके बतला देते हैं कि'आर्य' आदि काल से असुर-दानव-दैत्य आदि से संघर्ष करते आ रहे हैं। यक्ष और गंधर्व हिमालय प्रदेश के वासी एक ही श्रेणी के थे जिन्हें भूमिगत निधियों का ज्ञान था। ये धनी और विलास प्रिय थे।

'अशोक-वृक्ष की पूजा इन्हीं गंधर्वों और यक्षों की देन है।'(14) अशोक के फूल और अशोक-वृक्ष से सम्बद्ध कई ऐतिहासिक सत्यों का उद्‌घाटन इस ललित निबन्ध में हो जाता है। जैसे-महाभारत की कथाओं के अनुसार संतानार्थिनी स्त्रियाँ यक्षों के पास संतान-कामिनी होकर जाया करती थीं। परवर्ती धर्म ग्रन्थों से यह भी स्पष्ट होता है कि चैत्रशुक्ला अष्टमी को व्रत करने और अशोक की आठ पत्तियों के भक्षण से स्त्री की सन्तान कामना फलवती होती है। ऐसी

अनेक बातें इस निबन्ध में इन शास्त्रों से स्पष्ट की गयी है।

2.'मेरी जन्मभूमि' निबन्ध में द्विवेदीजी ने भारतीय इतिहास प्रस्तुत करते हुए विभिन्न जातियों की ऐतिहासिक प्रकृति जातिगत स्वभाव आदि स्पष्ट कर दिया है। जैसे- 'उत्तर भारत में अहीर और दुसाध तथा बंगाल के डोम बड़े लड़ाके थे और कानून मानने से सदा इनकार करते थे। चतुर अंग्रेजों ने इन जातियों से चौकीदार का काम लेकर इन्हें वश में किया।'(15)

3.'आम फिर बौरा गये' में 'आम्रमंजरी को मदन देवता के अमोध बाण के रूप में देखा गया है। कालिदास के 'शकुन्तला' नाटक में यह आम्र-मजरी एक बार सकुचा गयी थी।'(16, इस प्रकार कामशास्त्र, धर्मशास्त्र, पुराण के शम्बर असुर आदि की चर्चा हुई है। क्षेमेन्द्र का साहित्य और पुराणों की गवाही भरी पड़ी है।

4.'शिरीष के फूल' में वृहत्संहिता, कामसूत्र, ब्रह्मा, वाल्मीकि, व्यास और कालिदास से लेकर रवीन्द्रनाथ, सुमित्रानन्दन पंत के काव्य तक द्विवेदी जी के कथ्य के सहायक बने हैं। आज यह सब इतिहास की सामग्री ही प्रस्तुत करते हैं।

5.'पण्डितों की पंचायत' में भारतीय इतिहास की घटनाओं को वर्त्तमान संदर्भों से जोड़ने का प्रयास है।

6.'कुटज' और 7.'देवदारू' में भारतीय पुरूषों की ऐतिहासिक संघर्षशीलता का हल्का-झीना आवरण मिलता है, शेष जीवन-दर्शन ही है।

विद्यानिवास मिश्र अपने ललित निबन्धों में ग्रामीण संस्कृति के इतिहास में चले जाते हैं। स्थान-स्थान पर प्राचीन संस्कृति की चर्चा हो गयी है। इनकी ऐतिहासिक दृष्टि के स्रोत एवं प्रमाण लिखित नहीं अलिखित हैं परन्तु अवशेष के रूप में लोकजीवन में मिलते हैं। कहीं-कहीं ऐतिहासिक सत्य का भी विवेचन हुआ है। ऐसे निबन्ध निम्नलिखित हैं-

1.'गऊ चोरी' में कहा गया है कि भूमि चोरी का प्रमाण महाभारत से लेकर लास्की तक मिल सकता है। इसी के कारण विश्व में पचीस वर्ष के अन्तर में दो-दो युद्ध हो गये। एशिया-यूरोप सभी इसमें वर्षों से लिप्त हैं। महाभारत काल का श्रीकृष्ण गोरस चोर, भूमि चोर, चित्त चोर जन्म से ही था।

2.'साँची कहौ व्रजराज तुम्हें रतिराज किधौं रितुराज कियौ है' निबन्ध में निबन्धकार कला की चर्चा छेड़ते हुए चासर, शेक्सपीयर, शैली के साथ कालिदास और बाण की कला तक ही नहीं जाता है बल्कि शिव पुराण की

काम-दहन पूर्व की कला तक चला जाता है।

3.'बेचिरागी गाँव' में तो प्राचीन भारत का इतिहास ध्वंसावशेषों में दिख पड़ता है। यहाँ की संस्कृति इतिहास को मुखर करती है-'सीता की अग्नि परीक्षा, पार्वती का तप, सुदक्षिणा की सेवा, शकुन्तला के स्नेह और गोपी की सहजता की चर्चा करती है।'[17]

4.'मुरली की टेर' सुनते ही महाभारत युग के गँवार गोपाल की आकुल मुरली की ध्वनि का स्मरण हो जाता है। प्राचीन भारतीय साधना का स्वर फिर कानों में गूँजने लगता है।

5.'दीपों यत्नेन वार्यताम' में भारत की वर्त्तमान स्थिति में पुनः महाभारत के निर्मोह ममत्वरहित युद्ध की याद आ जाती है। इसमें धर्म और अधर्म के बीच की लड़ाई का चित्र खींच दिया गया है। महाभारत अत्याचारी शक्ति का संहार करने के लिए ललकार उठा है।

6.'सर्जन के देवता' में वैदिकवाङ्मय में वर्णित ब्रह्मा, विष्णु, महैश की धारणा को सामने रखकर भारतीय प्राचीन चेतना का परिचय दिया गया है।

7.'आ जाऊँगी बड़े भोर' और 8.'तमाल के झरोखे से' निबन्धों में महाभारत काल के कृष्ण और दहैड़ी लेकर घूमनेवाली गोपी के उद्धरण आये हैं। छान्दोग्य उपनिषद् से उद्धरण लिया गया है। 9.'और यात्रा अभी शुरू नहीं हुई' में भागवत ही नहीं, अष्टादश पुराणों की रचनाभूमि भारत के अतीत पर भी प्रकाश डाला गया है।

10.'होरहा' शिव पुराण से 'शिवशंकर खेलैं फाग गौरा संग लिए।'[18] का प्रसंग छेड़ देता है। अर्धनारीश्वर, गंगाधर शिव को जटा खोलकर जगत को अमर जीवन दान देनेवाला बतलाया गया है।

11.'गँवई गाँव के गोसाईं शिव बाबा' निबन्ध में पुराणों में बसा शिव भारतीय लोक जीवन में रमा हुआ दिख पड़ता है। जहाँ शिव-पार्वती के विवाह की एवं शिव के स्वभाव की लोक कथाएँ जन-जन के मन में गाँव के गोसाईं के रूप में बसी है।

12.'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' में रामचरित मानस के राम के निर्वासन के साथ आधुनिक निर्वासित जीवन दशा को जोड़ने का प्रयास है। इसमें रामायण का प्रसंग समाहित कर लेता है।

13.'शिवजी की बारात' तो पुराण से ली गयी कथा है। यह बारात परम्परा,

गणेश पूजा, वृद्ध विवाह आदि के इतिहास को प्रस्तुत कर देता है।

14.'सिव सिर मालति माल' भी शिव पुराण की कथा को आधार बनाकर लिख गया निबन्ध है, जिसमें गंगा और शिव के प्रेम तथा पार्वती की सौंतिया डाह का वर्णन हुआ है।

15.'शिरीष का आग्रह' भारतीय इतिहास में नारी शक्ति के महत्व को बतला जाता है।

इस प्रकार विद्यानिवास मिश्र के उपर्युक्त निबन्ध, इतिहास, पुराण और अन्य धर्मग्रन्थों से सम्बद्ध विषयों को सुरूचिपूर्ण ढंग से व्यक्त कर देते हैं। इनके अधिकांश निबन्धों में लोक-जीवन में बसे, लोक गीतों में पिरोये हुए इतिहास पुराण के प्रसंग अभिव्यक्त हुए हैं।

इतिहास-पुराण और अन्य प्राचीन धर्म-ग्रन्थों के साथ साहित्य विषयक संदर्भों को अपनाने वाले तीसरे ललित निबन्धकार कुबेरनाथ राय हैं। इनके ऐसे निबन्ध निम्नलिखित हैं-

1.'मनियारा साँप' इसमें वृन्दावनवासी श्रीकृष्ण को मणियारा साँप कहकर जयदेव के गीत-गोविन्द, गौड़िय वैष्णव साधना महाप्रभु के महाभाव (मादन) के विवेचन, वात्स्यायन के 'कामसूत्र' तुलसी के 'रामचरित' आदि के संदर्भों से कथन की पुष्टि होती है। प्राचीन साहित्य की मजीठी रंग वाली राधा व्यक्ति-व्यक्ति में वास करती है। वह हँस कर रंग लगाती है और श्रीकृष्ण बनने के लिए विवश कर देती है। चाहे युग या स्थान जो भी हो।

2.'अवरूद्धत्रेताः प्रतीक्षारत धनुष' निबन्ध में द्वापर और त्रेता युग का इतिहास है।'पुराणों में उत्तर भारत को ही त्रेता-द्वापर दोनों का लीला-मंच माना गया है। पर तुलसीदास की कलम का कुछ ऐसा असर पड़ा कि उतर भारत में त्रेता युग की उपासना पर ही अधिक बल है।'[19] इस ऐतिहासिक सत्य के सन्दर्भ में वर्त्तमान को देखने का प्रयास है।

3.'नदी तुम बीजाक्षरा' में 'सरस्वती नदी' की ऐतिहासिकता ही मुख्य विषय है। इसमें महाकवि कालिदास के 'पूर्व मेघ' से इस सत्य को पाकर निबन्धकार प्रोफेसर बर्नाफ की खोज तक बढ़ता है और सिद्ध करता है कि 'यों सरस्वती वैदिक युग की नदी है और मेरी तो धारणा है कि यह वैदिक युग के पूर्व के स्मृति-प्रवाह को भी अपनी संज्ञा द्वारा वहन कर रही है। वर्त्तमान भारत ही नहीं, अखण्ड भारत क्या, उससे बढ़कर वृहत्तर भारत की ऐतिहासिक स्मृतियाँ

इसके नाम के साथ जुड़ी है।'[20]

4.'अन्नपूर्णा बाणभूमि' में हड़प्पा-मोहनजोदड़ो की भोजन-शाला, होमर युग के ग्रीकों, आर्यों की पूरी रंधन-संस्कृति का इतिहास प्रस्तुत किया गया है।

5.'शरद-बाँसुरी और विपन्न मराल' जयदेव के 'गीतगोविन्द और श्री मद्भागवत की रास-लीला का भेद बतलाते हुए पूरानी शास्त्रीय परम्परा में'राधा' को ढूँढ़ता हुआ निबन्ध है। अथर्ववेद वेदांग ज्योतिष तक जाकर निकाला गया निष्कर्ष यह है कि 'राधा' शब्द आभीर लोक गीतों की उपज नहीं है बल्कि उससे पूर्व भी शास्त्रीय महत्व पा चुका था।

6.'विकल चैत्ररथी' में जर्मनी के ध्वंसावशेष के भीतर की ऐतिहासिकता ईसाई-धर्म की स्थापना का अर्थ खोलती हैं

7. 'छप्पन भोगों की इतिहास नदी' वाल्मीकि, होमर, ओल्डटेस्टामेण्ट ही नहीं ऋग्वेद आदि में वर्णित पाक-कला का इतिहास प्रस्तुत करता है। इस निबन्ध में भारतीय एवं यूरोपीय विभिन्न पाक-कलाओं और भोजन करने के तरीकों का वर्णन है।

8.'स्नान एक सहस्रशीर्षा अनुभव' निबन्ध में भी स्नान पर्व का इतिहास वैष्णवों, आर्यों, निषादों, ईसाइयों की अर्थात् भारतीय एवं रोमन सभ्यता में स्नान करने की विधियों एवं महत्व का इतिहास प्रस्तुत हुआ है।

9. 'मन पवन की नौका' निबन्ध भारत के विभिन्न नामों (इण्डिया, हिन्दू-हिन्दुस्तान-भारत-अजनाभवर्ष-कुमारिका द्वीप-द्वीपान्तर जम्बू द्वीप) आदि को पुराण में ढूँढ़ते हुए भारत के विस्तृत क्षेत्र महाभारत के रूप में दिखलाता है। भारतीय इतिहास के हजारों वर्षों का इतिहास इस निबन्ध में बोलता है। सामाजिक संगठन, जीवन, जिजीविषा-जीवन-निषेध, समुद्र यात्रा, नौका का प्रयोग, धर्म-संस्कार के प्राचीन स्वरूप पर प्रकाश डालता है।

10.'क्षीर-सागर में रतन-डोंगियाँ' में भारतीय समुद्री व्यापार का अत्यन्त प्राचीन इतिहास (द्रविड़-सौन्धव सभ्यता) प्रस्तुत है। भारतीय वस्त्र, सुगन्धित पदार्थ, अन्य व्यापारिक वस्तुओं के महत्व एवं व्यापार को इतिहास पुराण एवं धर्मग्रन्थों के संदर्भों द्वारा स्पष्ट किया गया है।

इसी प्रकार 11.'सत्तूखोर आर्य' में आर्य जाति का, 12.'मैं तालपत्र, मैं भोजपत्र' में लेखन सामग्रियों का, 13. अर्द्धरात्रि के राग-यक्ष' में भारतीय राग अर्थात् संगीत का 14.'ढलती रात में मालकोश' में भी भारतीय संगीत का

15.'आभीरिका' में अहीर जाति का इतिहास देखा जा सकता है इनके ऐसे सभी निबन्ध जिनमें संस्कृति का इतिहास देखने का प्रयास है वे इतिहास को प्रस्तुत कर देते हैं।

16.'मेघ, मण्डूक और आदिम मन' में वेद, पुराण, छान्दोग्य उपनिषद् के व्याज से आदिम मन की विभिन्न स्थितियों पर प्रकाश डाला गया है। कहा गया है कि 'प्रारम्भिक या आदि वैदिक साधना मूलतः प्राणवादी थी। इसी से उनमें आदिमता और सकामता की तीव्र गन्ध मिलती है। आर्य जैसे-जैसे सिन्धु के पार पूर्व दिशा में बढ़ते गये, वैसे-वैसे मन और आत्मा के द्वारा उद्घाटित करते गये और उनका स्वभाव वेदान्ती होता गया।'(21)

17.'नारायण और प्रतिनारायण 'महाभारत' और 'रामायण' पर केन्द्रित निबन्ध है, जिसमें यह बतलाया गया है कि नारायण अर्थात् धर्म और प्रतिनारायण अर्थात् अधर्म 'ये दो जीवन-दर्शन सृष्टि के आदिकाल के इतिहास के प्रारम्भ से टकराते रहे हैं। ... हमारे महाकाव्यों का निष्कर्ष है कि दोनों प्रकार के संघर्षों में विजय 'धर्म' की ही हुई है। 'ऐण्टीक्राइस्ट' (प्रतिधर्म) और पाप (अधर्म) दोनों पराजित हो गये।'(22)

18.'अशोक फूल, अब और कितनी रात है? निबन्ध में वाल्मीकि रामायण के अशोक वाटिका प्रसंग की रागात्मक अभिव्यक्ति है। इसमें भी कुछ ऐतिहासिक तथ्य उभारे गये हैं। जैसे-'रामायण काल में साड़ी पहनने की परम्परा नहीं थी। नीचे अधोवस्त्र, वक्षस्थल पर कंचुक-पट के लिए वस्त्र खण्ड और ऊपर उत्तरीय।'(23)

अतः देखा जाता है कि विद्यानिवास मिश्र की भाँति कुबेरनाथ राय ने भी इतिहास- पुराण- प्राचीन-साहित्य एवं धर्मग्रन्थ से सम्बन्धित कई ललित निबन्धों की रचना की है।

(3) धर्म और दर्शन—सम्बन्धी निबन्धः—

यहाँ धर्म से तात्पर्य है हिन्दू-मुस्लिम-सिक्ख-इसाई आदि विभिन्न धर्मों के मूल में घुपा हुआ मानव धर्म,इसका इतिहास और इसकी संस्कृति। दर्शन तत्वों का अन्वेषक है। अतः विभिन्न दृष्टिकोणों से मानव-जीवन की शैलियों-विचारों और आस्थाओं का मूल्यांकन करता है। सार्थक जीवन के लिए किसी ठोस धरातल का निर्माण करता है। इसकी व्याख्या करता है। इसलिए मानव धर्म और दर्शन दोनों मिलकर एक हो जाते हैं। मानव जाति का इतिहास बतलाता है

कि इनका स्वरूप लगातार बदलता रहा है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रों और भिन्न-भिन्न व्यक्ति-समूहों में इनके स्वरूप में भिन्नता है। कई ललित निबन्धकारों ने भी धर्म और दर्शन को विषय बनाकर इसी और संकेत करने की कोशिश की हैं उनमें प्रमुख निबन्ध निम्न लिखित है-

ऐसे निबन्धों के अन्तर्गत सर्वप्रथम आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्धों को लिया जा सकता है

1.'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबन्ध में मानव मन की व्याख्या दार्शनिक ढंग से हुई है। कहा गया है कि' सभ्यता की नाना सीढ़ियों पर खड़ी और नाना और मुख करके चलने वाली इन जातियों के लिए एक सामान्य धर्म खोज निकालना कोई सहज बात नहीं थी। भारत वर्ष के ऋषियों ने अनेक प्रकार से इस समस्या को सुलझाने की कोशिश की थी। पर एक बात उन्होंने लक्ष्य की थी समस्त वर्णों और समस्त जातियों का एक सामान्य आदर्श भी है। वह है अपने ही बन्धनों से अपने को बाँधना।'(24) और आगे गौतम के दार्शनिक विचार-अहिंसा, सत्य और अक्रोधमूलक धर्म का मूल उत्स-आत्म निर्मित बन्धन सहानुभूतिपूर्वक सबके सुख-दुख को देखना तथा गाँधी के विचार-मन का परिष्कार, प्रेम, आत्म-संतोष, कर्मवीरता आदि उघृत कर दिये गये हैं।

2.'शिरीष के फूल' में 'शिरीष' ऐसा अवधूत है, जो सुख-दुख दोनों में समान बने रहकर कबीर की दार्शनिकता-'मस्ती बेपरवाह मनः स्थिति का प्रतीक है।'ब्रह्मा, वाल्मीकि और व्यास की अनासक्ति और सौन्दर्य के बाह्य आवरण को भेदकर उसके भीतर तक पहुँचने की क्षमता रखने वाले भारतीय दार्शनिकों का प्रतीक है।' आदि तथ्य अभिव्यक्त हुए हैं। निबन्धकार ने बहुत ही सार्थक दार्शनिक तथ्य जीवन और मृत्यु के बारे में प्रस्तुत किया है-'जरा और मृत्यु ये दोनों ही जगत के अपरिचित और अतिप्रामाणिक सत्य हैं।'(25)

3.'अशोक के फूल' में कहा गया है कि' स्वर्गीय वस्तुएं धरती से मिले बिना मनोहर नहीं होती।'(26) स्वार्थी मनुष्य की और संकेतित है-' सारा संसार स्वार्थ का अखाड़ा है।'(27) मनुष्य की निर्मम जीवन शक्ति और संघर्ष शीलता देखकर कहा गया है-' सब कुछ में मिलावट है, सब-कुछ अविशुद्ध है। शुद्ध है केवल मनुष्य की दुर्दभ जिजीविषा (जीने की इच्छा) वह गंगा की अबाधित-अनाहत धारा के समान सब-कुछ को हजम करने के बाद भी पवित्र है।'(28)

4.'कुटज' निबन्ध सार तत्व बतलाता है-' लेकिन दुनिया है कि मतलब

है, रस चूस लेती है, छिलका और गुठली फेंक देती है।'[29] फिर भी कूटज की तरह मनुष्य का एक वर्ग जो सज्जन,संतोषी और अपराजित-अविचल है उपकार-अपकार की चिन्ता किये बिना जीवन व्यतीत कर रहा है।

5.'देवदारु' योग साधना का रहस्य बतलाता है' ध्यान, धारणा और समाधि की एकाग्रता से ही योग सिद्ध होता है।' बाह्य प्रकृति के दुर्वार आकर्षण को छिन्न करने का उल्लास ताण्डव है। अन्तः प्रकृति के असंयत फिंकाव को नियन्त्रित करने के उल्लास का नाम समाधि है।[30] 6.'पंडितों की पंचायत' में प्रेम की प्रवलता सिद्ध की गयी है- विधि और निषेध, शास्त्र और पुराण, नियम और आचार, कर्म और साधना, इन सबके ऊपर है, आश्रम और सम्प्रदाय से अतीत है।' [31]

आ. द्विवेदी के इन निबन्धों में अधिकांशतः मानव मन के भीतरी तह तक के दार्शनिक पक्ष को उभारने की कोशिश की गयी है। साथ ही सहज-सार्थक जीवन के लिए उचित मार्ग बतलाया गया है।

प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने भी अपने कुछ निबन्धों में दार्शनिक तथ्यों कर उभारा है। जैसे- 1. मुण्डे-मुण्डे भतिर्भिन्ना' में मत-मतान्तर अर्थात् विचार विभिन्नता को हमारे विकास का भूल कारण बतलाया है। इसी के कारण विश्व का विशाल वाड.मय संभव हुआ है। मानव का इतना विकास हो पाया है। इन्होंने स्पष्ट कहा है कि' पहला व्यक्ति जहाँ तक सोचकर रह गया, यदि दूसरा भी वैसे ही वहीं तक सोचकर रहजाता तो आज हमारे ज्ञान की सीमा कितनी संकुचित होती। सच तो यह है कि यह मतभेद की भावना ही हमें विकास के पथ पर यहाँ तक लायी है और आगे भी ले जायगी।'[32]

2.'ऊँचे चढ़के देखा' में याचकता का त्याग करने के लिए भूमा वै सुखम नाल्पे सुखमस्ति। उध्दृत करके दिखला दिया गया है कि अल्पता का अनुभव करने में सुख नहीं है।

3.'चोर कौन?' में चोरी को एक बौद्धिक चुनौती के रुप में देखना, एक आनन्दकारी कार्य अर्थात्, अपराध न होकर एक प्रीतिकर व्यसन मानना और साथ ही यह भी कि' वस्तुतः चोरों की ही आमद गाढ़ी कमाई की है। वे भी हमारी तरह कोई दूसरा पेशा अख्तियार कर सकते हैं पर सम्भव है दूसरे पेशे में उन्हें निर्जीवता दीखती है। जो थ्रिल, जो साहस, जो उत्साह चोरी में है वह किसी दूसरे पेशे में नहीं और यदि जोखिम है तो लाभ की संभावना भी असीम

है।' (33) चोरी के धन्धें का दार्शनिक विवेचन नहीं है।

इस प्रकार के कई निबन्ध है जैसे- 4. परीक्षा, 5 सदाबहार' जिसमें विचित्रता उत्पन्न करने के लिए कहीं-कहीं अद्धैतवादी दर्शन की कुछ पंक्तियाँ रख दी गयी हैं। 6-' प्रेम न हाट विकाय' में तो प्रेम' को स्पष्ट करने के लिए अध्यात्म और लौकिक एषणाओं के सम्बन्ध में ही दार्शनिक विवेचन हुआ है। फिर भी प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने धर्म और दर्शन को बहुत अधिक नहीं अपनाया है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने अपने कई निबन्धों में विभिन्न विषयों पर दार्शनिक दृष्टि से विचार किया है। जैसे-1. हरसिंगार 'में' प्रेम' तत्व के सम्बन्ध में कहा है-प्रेम इस मन का बन्धन और मोक्ष दोनों है, प्रेम के बन्धन से मन जितना ही दूर भागना चाहता है, उतना ही नगीच खिंचता है और इस बन्धन में जितना ही वह पड़ता है, उतना ही इससे खिंचने की भी कोशिश करता है, अन्त में वह प्रेम के बन्धन की अनन्तता में ही मोक्ष पा जाता है। यहीं सीधा प्रेम योग है।'(34) और यह भी कि' अमृत में भी जड़ता आ जाय, यदि प्रेम की ईर्ष्या उसमें उद्वेलन न पैदा करे। ईर्ष्या के बिना प्रेम निर्जीव हो जाता है, मुर्दा हो जाता है। जो अपने प्रेम-पात्र से जितना ही अधिक पाना चाहता है, उतना ही अधिक अपना प्रेम भी दे पाता है।'(35)

2.'साँझ भई' में ढलती उम्र का दार्शनिक विवेचन है-' भाई, यह यौवन की संध्या है, बड़े- बड़े सपने पंख समेट के सिर झुका के सोने चले गये, अब उछाह ठंडा पड़ने लगा, जीवन की गति धीमी पड़ गयी, गंगा की धारा का वेग मन्द पड़ गया और दिन की रंगरलियों से, फूलों की सतरंगी मुसकान से,' पराग' की चहल-पहल से, भौरों की वंशी से और कोयल की विपंची से लगाव छूटने जा रहा है'(36) अर्थात् यौवन से विछोह की स्मृतियों की यह अन्तिम चित्कार है।

3.' जुमना के तीरे-तीरे' निबन्ध में कर्म का दार्शनिक पक्ष प्रस्तुत है- कर्म पथ में भी अणु-अणु का दर्शन हो सकता है। इस पथ में त्वरा नहीं, गहनता है, पर भय नहीं है। बस अभ्यास की जरुरत है ऊपर निविड़ संघर्ष का अन्धकार होते हुए भी भीतर शीतल शान्ति का आलोक बना रहता है।'(37)

और भी' कर्म-पथ में सबसे अधिक भय मनुष्य को अपने ज्ञान से है। ज्ञान से बढ़कर कोई भ्रामक तत्व इस पथ पर है ही नहीं।' (38) इसलिए' जो अपने प्राणों का मोह छोड़कर ऊँचेकगार से कुछ जाने का बस एक बार साहस कर

सके, उसी की वह धार है। इस धार में कुदनेवाला स्वयं नौका बन जाता है, उसे ले जाने के लिए किसी दूसरी नौका की आवश्यकता नहीं रह जाती।' (39)

4.'घने नीम तरु तले' में जीवन, प्रेम, स्वप्न, आशा, घृणा आदि की लघुता, शरीर की नश्वरता, संसार की तीक्तता पर दार्शनिक दृष्टि डाली गयी है।

5.'बेचिरागी गाँव' निबन्ध में कहा गया है।' जो जीवन की अतल गहराई है, वहाँ पहुँचने के लिए अपार धैर्य चहिए। जो मोक्ष की भी ममता छोड़कर ऊपर जाने की भावना है, उसके लिए निर्भयता और निर्लिप्तता का संबल चाहिए। जो उतरोत्तर विकास की एक श्रृंखला है, उसको ग्रहण करने के लिए संतुलित दृष्टि चाहिए।'(40) तथा जो विश्वरुप की मोहकता है उसको आँखों में भरने के लिए विशद् और उदार दृष्टि चाहिए।' तभी आराधना, जीवन की अन्तिम आकांक्षा और तपस्या की चरम सिद्धि को प्राप्त कर सकते हैं।

6.'मुरली की टेर इस रहस्य का उद्घाटन करता है कि-ब्रह्म की परिभाषा पूर्णता है, जिसमें भटकाव जितना मिले, तृप्ति नहीं मिल सकती। इतिहास से, दर्शन से साहित्य को और साहित्य से कला को अविच्छिन्न देखने की जिसकी प्रवृत्ति होगी, मुरलीधर और हलधर, संगीत और श्रम की युगल छवि उसकी आंखों में समा नहीं सकती।'(41) अर्थात् श्रम और संगीत का विचार और राग का अनुभव उसके लिए कठिन है।

7. पूर्णमदः पूर्णमिदम्' का दर्शन तत्व है-व्यक्ति की पूर्णता और समष्टि की पूर्णता में अन्तर' व्यष्टि की पूर्णता को समष्टि की पूर्णता से अलग कर देने पर भी उसकी पूर्णता जैसी की तैसी बनी रहती है। समष्टि को व्यष्टि की पूर्णता से नहीं, अपूर्णता से भय है, क्योंकि रिक्तता को कहीं भी अवकाश मिला, तो वह फैलती ही चली जाती है। हमारे यहाँ समष्टि की कल्पना पर ब्रह्म में अन्तर्भूत हो गयी और पर ब्रह्म-ब्रह्माण्ड का एक कोना भी रीता नहीं छोड़ते। (42)

8. 'तुम चन्दन हम पानी' निबन्ध में कहा गया है कि' मनुष्य को अपने जीवन संघर्ष से सुरभि अर्जित करने का अधिकार तभी मिलता है, जब वह अर्पित भाव से संघर्ष में रत होता है।'(43)

9. संध्या का ध्यान' धर्म और दर्शन से जुडा हुआ है। इसके गीत मनु, याज्ञवल्क्य, वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और भवभूति के जीवन दर्शन का सार है' ''कुल को नन्दित करने के लिए प्रेम और सेवा ही साध है, प्रेम तरल ज्योति प्रदान करता है और सेवा स्वयं मलिन बनकर जगत की मलिनता दूर करती

है। ठीक उसी तरह प्रतोष-संध्या अमृतवर्ति पूरकर क्षीरोदधि का समस्त नवनीत भरकर विश्व मंदिर में सोम दीप जलाती है।''(44)

10. जीवन अपनी देहरी पर' निबन्ध जीवन-दर्शन का संघर्षपूर्ण पक्ष सामने रखता है। इस निबन्ध का निष्कर्ष है-संघर्ष ही जीवन है। यह संघर्ष व्यक्तिगत स्वार्थ से परे समष्टि गत उपकार के लिए हो तो जीवन का रुप आदर्श हो जाता है। क्योंकि इस तथ्य की पुष्टि आगे भी कई निबन्धों में हुई है।

11. और यात्रा अभी शुरु नहीं हुई में कहा गया है-' जीवन की असली समृद्धि है फूल की तरह हल्का बनना, परिमल परिपूर्ण बनना, अपने लिए नहीं, पवित्र करने वाले पवन-तारने वाली नदी ऊँचे खींचनेवाले हिमशिखरों के लिए, फूल की तरह झूमना-हँसना एक दूसरे से ग्रंथित होना, मालाकार होना, चढ़ना-उतरना, उतरकर प्रसाद रुप में बँटना...। (45)

12.' प्रात तव द्वार पर' काली माई के प्रति धार्मिक अनुष्ठान से जुड़ा निबन्ध है काली माँ की महिमा पर पूरा प्रकाश डाला गया है, परन्तु वहीं तत्व ज्ञान की बात कर दी गयी है' आदमी की मृत्यु कैसी थी, इसी से लोग पूरा जीवन आँक लेते हैं, क्योंकि मृत्यु के द्वार पर आदमी जीवन का साक्षात्कार पूरी वास्तविकता के साथ करता है, पूरी निस्संगता के साथ करता है। और मृत्यु जीवन का सायंकाल नहीं है, प्रभात है।'(46)

इस प्रकार डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने प्रेम, ढलती उम्र, कर्म, तन की नश्वरता, संसार की तिक्तता, मोक्ष, ब्रह्म, मानवजीवन ईश्वर आदि के सम्बन्ध में दार्शनिक विचार व्यक्त किया है। इनके निबन्धों में सहजता के साथ गूढ़ रहस्यों की अभिव्यक्ति है, क्योंकि ये सार संक्षिप्त एवं बोधगम्य भाषा में व्यक्त करने की कला में निपुण हैं। इनकी दृष्टि में सफल जीवन के लिए धैर्य, साहस, संघर्ष, प्रेम श्रद्धा एवं भक्ति अनिवार्य है।

कुबेरनाथ राय ने भी अपने ललित निबन्धों में विषयान्तर में जाकर धर्म एवं दर्शन सम्बन्धी विषय पर ध्यान दिया है।

1.'चण्डी थान' में शिवप्रिया चण्डिका के सम्बन्ध में कहा है कि'यह आद्या है समस्त सृष्टि की आदि योनि है ... यह त्रिपुर सुन्दरी है हिरण्यगर्भ विष्णु और महाकाल रूद्र इसके काम-बाणों से विद्ध होकर ही सक्रिय होते हैं।'(47) यह महामुद्रा शिव-पत्नी न होकर स्वतंत्र, योगिनी प्रेमिका है। यही भैरवी, उग्रतारा, काली है, जिसके चरणस्पर्श से शिव की'चिति' का संचार होता है और वे'शव'

से 'शिव' रूप को प्राप्त करते हैं। इस निबन्ध में सांख्य दर्शन की अनेक बातें आयी हैं। हिन्दी क्षेत्र का पुरूष प्रधान दर्शन और धर्म का कामदंशित आदिम शाक्त साधना तथा तन्त्र के दार्शनिक पक्ष को भी उभारा गया है।

2.'देह-वल्कल' में कुबेरनाथ राय कई अनुच्छेदों में दार्शनिक दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए मिलते हैं। इन्हें इस लोक-विचार पर विश्वास है कि 'सृष्टि में क्षिति, जल, पावक, गगन और समीर की पाँच कन्याओं का सर्वत्र निवास है। देह-देह के भीतर, रूप-रूप के भीतर, वेश-वेश के भीतर में वे ही बैठी है।... प्रत्येक नारी देह में पाँच तत्व, पाँच गुण, पाँच मकार और पंच कन्याएँ निवास करती हैं।'(48) अपनी वैष्णवता और उपासना को स्पष्ट करने के क्रम में, इन्होंने दर्शन-सम्बन्धी अनेक बातें रखी है। उदाहरण के लिए- 'दर्शन तो सदैव से मानता आया है कि यह देह या शरीर एक वरणीय या एक आवरणीय वल्कल मात्र है, परिधान मात्र है, केवल कंचुक है।'(49) इस वल्कल के भीतर बौद्धों के अनुसार शून्य है,वैष्णवों के अनुसार रसो वैस रस रूप नारायण है और शैवों के अनुसार शान्तम् शिवम् अद्वैतम है। फिर भी अन्तः प्रकृति क्या है? अनिर्वचनीय ही रहा है।

3.'जम्बूक' 4.'नदी तुम बीजाक्षरा' 5.'अन्नपूर्णा बाणभूमि' निबन्धों में भी कुबेरनाथ राय की दार्शनिक दृष्टि कम नहीं है। इनमें यत्र-तत्र मानव को दिव्य-दृष्टि युक्त, वाणी का वरदान प्राप्त, परमब्रह्म का परमाणु रूप बतलाया गया हैं पुरूष का पुरूषार्थ सांख्य-दर्शन और योग को धारण किये हुए हैं। धरती गाय की थन की तरह है जो सदा मानव का पालन-पोषण करती है। मानव मन योग और भोग दोनों की और दौड़ता है।

6.'शरद् बाँसुरी और विपन्न मराल' में कहा गया है कि 'सृष्टि विधान इतना मोहक, इतनी दया-माया से भरा न हो तो जीना ही मुश्किल हो जाये।'(50)

7.'उजड्ड वसन्त और हिप्पी जलचर' में शम्बूक को दार्शनिकता का प्रतीक बनाकर अनेक दार्शनिक विचार व्यक्त किये गये हैं परन्तु स्वभाव से दार्शनिक विचार रखनेवाले कुबेरनाथ राय ने यह भी बतला दिया है कि इनका स्वभाव यायावरी है। मात्र दार्शनिक या मुक्त विद्रोही नहीं। रूप-रस-शब्द से प्रतिबद्ध रस आखेटक है।

8.'विकल चैत्ररथी' में'कल्पना ही आत्मशक्ति का, सौन्दर्य बोध का तथा ईश्वरीय बोध का मुख्य स्रोत'(51) के रूप में प्रतिष्ठित है।

9.'किरण सप्तपदी' में प्राकृतिक सृष्टि या माया जगत से परे एक ज्योतिर्मयी सत्ता की उपस्थिति बतलायी गयी है जो अरूणोदय के साथ सहस्र किरणों से बाहर निकलना चाहती हैं।अनेक दार्शनिक मतों को साथ लेकर निबन्धकार का कहना है कि 'भगवान की आद्या शक्ति सारे जगत के मंगल के लिए निरन्तर सक्रिय है।'(52)

10.'सनातन नदी अनाम घीवर' निबन्ध बुद्ध दर्शन के-रूप की लपट, कामना का आखेट, महाकरूणा की मोह की प्रवृत्ति आदि बिन्दुओं को सामने रखता है।

11.'छप्पन भोगों की इतिहास नदी' में आहार-निन्द्रा-मैथुन तीनों को समान रूप से सहज जीव धर्म कहा गया है, परन्तु इसके सेवन में अति का निषेध आवश्यक है क्योंकि-'सीमा के भीतर रतिकर्म देह के भीतर रतिकर्म देह के भीतर की अमृताकला का भक्षण है और भोजन कर्म सृष्टि के मध्य की अमृता कला का। पर सीमा से बाहर होने पर दोनों घातक हो जाते हैं।'(53)

इसाई धर्म ने तो अति भक्षण या बहुभोजन को पाँचवाँ पाप घोषित कर दिया। प्रस्तुत निबन्ध होमर, इलियड से लेकर भारतीय दार्शनिकों द्वारा प्रस्तुत जीवन दर्शन के अनेक पहलुओं को अपने साथ समेट लिया है।

12.'स्नान एक सहस्रशीर्षा अनुभव' निबन्ध भी दार्शनिक विचारों की अभिव्यक्ति में क्या कम है।'स्नान' ही पंचम पुरूषार्थ है। बाहर भीतर की मलहारी क्रिया है। विभिन्न प्रकार के स्नान मानव को स्वच्छ-स्वस्थ मानव बनाये रखते हैं।

13.'मधु माधव पुनः पुनः' में भारतीय भौतिकवाद, अध्यात्मवाद और प्राणवाद के सम्मिलित जीवन दर्शन का परिचय मिलता है।

14.'ढलती रात में मालकोश' 15.'अर्द्धरात्रि के रागयक्ष', 16.'जीव-हंस की रात्रि-प्रार्थना' निबन्धों के स्वरों में भी निबन्धकार की दार्शनिक भावनाएँ लिपटी हुई हैं। इन तीनों निबन्धों में अन्धकार युक्त, भयावह रात्रि निराशा के बीच आशा, मोह-शोक के बीच मुक्ति-हर्ष संचार की कामना से युक्त है। क्योंकि इनमें उसी भारतीय जीवन दर्शन के गान हैं जिसके सम्बन्ध में निबन्धकार ने कहा है-'भारतीय चिन्ताधारा और जीवनदर्शन तथा रस-दृष्टि के अनुसार अशिव के भीतर शिव है, तन के भीतर ज्योति है, रात्रि के भीतर उषा है, अमावस्या के भीतर पूर्णिमा है।'(54)

17.'सत्तूखोर आर्य' जहाँ चावल ही महाशक्ति कहा गया है।

18.'उत्तरा फाल्गुनी के आसपास' जिसमें स्वयं अन्दर की अमृताकला का आविष्कार करना चाहता है। फैशनेबुल दर्शन पर आक्षेप लगाता है।

19.'परास्त नरक' की धोबिन बाँकी, रहस्यमयी है जो सदैव बीच धारा में धोती है और मनोमय आकाश में सोलहवीं कला का प्रसार कर देती है।

'अरे धोबी धोवे अड़ही गड़ही, धोबिन धोवे बिच धार...

आधी रात गहन गहराइल, सोरह किरन पसार...।'(55)

20.'कैक्टस वन की नायिका' जिसमें गरूड़ पुराण में प्रस्तुत लक्षणों की साकार प्रतिमा-मानुषी कन्या मूर्ति निबन्धकार की आँखों के सामने खड़ी हो जाती है। वह मनसा देवी कल्पित ही है परन्तु अपने रूप लावण्य, शारीरिक गठन और चढ़ती उम्र की भंगिमाओं से मुग्ध कर देनेवाली हैं बिहुला कन्या जो तपोबल से निष्ठुर स्थिति को भी सरस बना देती है। जहाँ आदिम युग के जीवन की ओर बढ़ने की इच्छा हो जाती है।

21.'यक्ष-रात्रि' जिसमें यक्ष संयम के सहयात्री हैं। इसमें भारतीय धर्म-साधना-दर्शन आदि का विवेचन हुआ है।

22.'व्यथातीर्थ' में ईश्वर की स्वतंत्र, सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी होने की धारणा समझने के लिए भावना, कल्पना और सहानुभूति को साधन बतलाया गया है। ये सभी निबन्ध धर्म और जीवन दर्शन के तथ्यों से भरे हैं। ये विभिन्न रहस्यों का उद्‌घाटन करते हैं।

संक्षेप में यही कहूँगा कि धर्म दर्शन युक्त विषयों को अपनानेवाले निबन्धकारों के बीच कुबेरनाथ राय का महत्वपूर्ण स्थान है। चाहे 23.'मेघ, मण्डूक आदिम मन हो' या 24.'नारायण और प्रतिनारायण' 25.'मन पवन की नौका' हो या 26.'क्षीर सागर में रतन-डोंगियाँ' कोई भी ललित निबन्ध ऐसे विषयों के संदर्भों से खाली नहीं हैं। इनकी वैचारिक स्वच्छन्द उड़ान के विभिन्न सोपान ही है-धर्म-दर्शन-इतिहास और विभिन्न साहित्य।

धर्म एवं दर्शन-सम्बन्धी निबन्ध जैनेन्द्र कुमार ने भी लिखा है। इनके ललित निबन्ध-1.'आप क्या करते हैं?' में गीता की पंक्ति-'कर्म करो! कर्म में अकर्म करो।' को लेकर दार्शनिक विवेचन हुआ है कि'अकर्म को साधना ही एक कर्म है-वह परम पुरूषार्थ है।'(56) 2.'राम कथा निबन्ध में धर्म और दर्शन की बातें सहज रूप में आयी है। एक और जहाँ ईश्वर की सर्व व्यापकता सिद्ध की गयी

है, वहीं दूसरी और राम की कथा के संस्पर्श से मन की विचित्रता एवं अन्य प्रवृत्तियों का भी परिचय दिया गया है। जैसे-'मन तो मन है, उसके लिए कब यह नियम बन सका है कि वह किसी पण्डित की सुस्वर-कण्ठ-लहरी में गाई जाती हुई राम-कथा में से उठकर और कहीं न जा सकेगा।'(57) इसी प्रकार अनेक तथ्य भी ऐसे आते हैं, जिनमें जैनेन्द्र कुमार की दार्शनिकता झलकती है-'सुन्दरता सब जगह काम आनेवाली चीज है। तपस्वी सुन्दर क्यों न हो? पंडित अपने को सुन्दर क्यों न रखे? कुछ और गुण पीछे भी दीखें, सुन्दरता तो सामने से ही दीखती है। उससे काम आसान होता है। सुन्दरता गुण है। चाहो तो वह आयुध भी है।'(58)

इनके अनुसार व्यक्ति के लिए विवेक और विवेक में अस्वीकृति अनिवार्य है। जीवन को कहीं हीरे की तरह दृढ़ तो कहीं वायु की तरह हल्का बनाना पड़ता है।

3.'हरेराम' में रामनाम अनाम की कृपा को खोजने और पाने के प्रयास को ही निबन्धकार अपना सच्चा पुरूषार्थ समझता है। 4.'होली' में निबन्धकार काम कामना और ब्रह्मचर्य से सम्बन्धित दार्शनिक पक्ष प्रस्तुत करता है-'काम और कामना खराब चीजें नहीं है। चीज खराब ब्रह्मचर्य भी नहीं है। पर दोनों आपस में रूठते हैं तब खराबी पैदा होती है।... ब्रह्मचर्य जो काम और कामना से डरता और द्वेष करता है, जो उनके प्रति मुस्करा नहीं सकता, मेरी समझ से अनीश्वरीय वस्तु है। कौन जाने उसके मूल में ईश्वर न होकर शैतान हो।'(59)

इनकी दार्शनिकता निजी है जिसके कारण ऊब नहीं पैदा होने देती है। ये दार्शनिक मुद्रा में व्यस्त होकर भी नयी अर्थवन्ता के प्रति जागरूक होने के कारण सरसता एवं रोचकता बनाये रखते हैं। इन्हें धर्म, काम, प्रेम आदि मन की ग्रंन्थियाँ खोलने में पूरी सफलता मिली है।

इन निबन्धकारों के अनुसार कहा जा सकता है कि भारतीय संस्कृति में बतलाया गया मानव धर्म प्रेम, सद्भाव, आपसी भाईचारा अद्वैतम् एवं शिवम् का भाव, निःस्वार्थ सेवा, जन-जन का कल्याण करना, व्यष्टि एवं समष्टि का विकास करना है। अहिंसा इसके मूल में है। इस धर्म का पालन करने के लिए प्रत्येक युग में शुद्ध जीवन-दृष्टि अपेक्षित है। अतः कर्मवीर होना, मन का परिष्कार करना, आत्मसंतोष, सत्याचरण, सहजता, सामर्थ्य एवं परिपूर्णता का भाव रखना, उत्साह, साहस, धैर्य, उत्सर्ग, संघर्ष, श्रद्धा-भक्ति पवित्रता आदि

का अवलम्बन धर्म का पालन करने के लिए आवश्यक है। जिस युग में इनकी उपेक्षा होगी, अधर्म-धर्म पर विजय अवश्य प्राप्त करेगा। काम, कामना, स्वार्थ, संचय की ज्वाला धधकेगी और प्रेम, आस्था, विश्वास, जिजीविषा भष्म होती रहेगी। वर्त्तमान युग यही संत्रास, बेचैनी, यही महाकाल की मार से सम्पन्नता में विपन्नता का, सुख सुविधा की पूर्णता में दुख और अपूर्णता का सत्य भोग रहा है। जिसमें कहीं भी जीवन नहीं है, शिव के अभाव के कारण मानव जीवित शव मात्र है। जीवन-दर्शन का सत्य है-'जन्म-जिजीविषा, वृद्धि-मृत्यु' इसे शिवं भाव से भोग लेना ही मोक्ष की प्राप्ति है। प्रायः सभी ललित निबन्धकारों ने इसी जीवन दर्शन को अभिव्यक्त किया है।

संदर्भ-संकेत

सं.	पुस्तक का नाम	लेखक/सम्पादक	पृ. सं.
1.	कल्पलता	हजारी प्रसाद द्विवेदी	6
2.	”	”	9
3.	हजारी प्रसाद द्वि. ग्रन्थावली खण्ड-9	सम्पादक मुकुन्द द्विवेदी	454
4.	”	”	459
5.	”	”	461
6.	भोर का आवाहन	ले. विद्यानिवास मिश्र	38
7.	तुम चंदन हम पानी	”	116
8.	विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्ध	सम्पादक भोलाभई पटेल	89
9.	गाँव का मन	ले. विद्यानिवास मिश्र	82
10.	गन्धमादन	ले. कुबेरनाथ राय	164
11.	पर्ण मुकुट	”	183
11.	(क) ”	”	22
12.	”	”	42
13.	”	”	56
14.	अशोक के फूल	ले. हजारी प्र. द्वि.	12
15.	”	”	38
16.	कल्पलता ”	”	13
17.	तुम चन्दन हम पानी	ले. विद्यानिवास मिश्र	118
18.	गाँव का मन	”	46
19.	प्रिया नीलकण्ठी	ले. कुबेरनाथ राय	65
20.	गन्धमादन		19
21.	विषादयोग	ले. कुबेरनाथ राय	57
22.	”	”	72
23.	”	”	116
24.	कल्पलता	ले. आ. हजारी प्र. द्वि.	9
25.	”	”	25
26.	अशोक के फूल	”	10
27.	”	”	13
28.	”	”	13

29.	हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली-खण्ड-9	सम्पादक मुकुन्द द्विवेदी	30
30.	हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली, खण्ड-9	सम्पादक-मुकुन्द द्विवेदी	35
31.	खट्टा मीठा	ले. प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा	458
32.	प्रणाम की प्रदर्शनी में	”	39
33.	”	”	20
34.	छितवन की छाँह	ले. विद्यानिवास मिश्र	32
35.	”	”	33
36.	”	”	44
37.	”	”	55
38.	”	”	56
39.	”	”	59
40.	तुम चन्दन हम पानी	”	113
41.	”	”	139
42.	”	”	50
43.	छितवन की छाँह	ले. विद्यानिवास मिश्र	170
44.	भोर का आवाहन	ले. विद्यानिवास मिश्र	35
45.	तमाल के झरोखे से	”	93
46.	गाँव का मन ”		67
47.	प्रिया नीलकण्ठी	ले. कुबेरनाथ राय	84
48.	रस आखेटक	”	60
49.	”	”	66
50.	गन्धमादन ”	”	89
51.	”	”	113
52.	”	”	129
53.	”	”	169
54.	पर्ण मुकुट ”	”	62
55.	विषादयोग ”	”	25
56.	सोच-विचार	ले. जैनेन्द्र कुमार	22
57.	”	”	36
58.	”	”	35
59.	”	”	266

चतुर्थ अध्याय

ललित निबन्धों का विषयगत अनुशीलन-(2)

ललित निबन्धों में संस्कृति, शास्त्रों में वर्णित विभिन्न विषय, धर्म और दर्शन सम्बन्धी विषय के साथ वर्त्तमान जीवन से सम्बन्धित अनेक विषय अपनाये गये हैं। इन विषयों की कोई सीमा निर्धारित नहीं की जा सकती है फिर भी अध्ययन की सुविधा के लिए कुछ मूल विन्दुओं का निर्धारण सम्भव है। इस अध्याय में वर्त्तमान जीवन से सम्बन्धित विषय एवं अन्य विषयों पर ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है।

(1) वर्त्तमान जीवन–सम्बन्धी निबन्ध:–

ललित निबन्धों में वर्त्तमान जीवन-सम्बन्धी विषय तीन तरह से व्याख्यायित हैं- (क) इतिहास से वर्त्तमान को जोड़ते हुए (ख) वर्त्तमान से बात शुरू करते हुए अतीत की और प्रस्थान करते हुए (ग) मात्र वर्त्तमान जीवन संदर्भों पर आधारित।

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के ललित निबन्धों में निबन्धकार वर्त्तमान जीवन की ठगी, डकैती, भ्रष्टाचार आदि को देखते हुए समझता है कि आज ईमानदारी का युग नहीं रहा फिर भी मात्र इन्हीं का हिसाब रखकर जीवन कष्टमय बनाना उचित नहीं है। आज भी ईमानदार-सहायक व्यक्ति मिल जाते हैं। अतः संदेह मिटाकर आशा जगाने के आवश्यकता हैं। निराश होना उचित नहीं हैं।यह इसलिए कि'मनुष्य की बनायी विधियाँ गलत नतीजे तक पहुँच रही है तो उन्हें बदलना होगा। वस्तुतः आये दिन इन्हें बदला ही जा रहा है। लेकिन अब भी आशा की ज्योति बुझी नहीं है। महान भारतवर्ष को पाने की सम्भावना बनी हुई है, बनी रहेगी। मेरे मन निराश होने की जरूरत नहीं है।'(1)

2.'पण्डितों की पंचायत' निबन्ध में परिस्थितियों से ग्रस्त वर्त्तमान भारत की स्थिति चित्रित है-'वह पुराना रास्ता छोड़ने को बाध्य है, किन्तु नया रास्ता अभी मिला नहीं। वह कुछ पूराने के मोह में और कुछ नये के नशे में भूल रहा है। किसी दूसरे के दिखाये रास्ते से जाने की अपेक्षा स्वयं रास्ता ढूँढ लेना अच्छा है। चलने दो, इन भिन्न-भिन्न मतों को, इन भिन्न-भिन्न पक्षों को, भारतीय जनमत स्वयंमेव इनमें से अच्छे को चुन लेगा।'(2)

3.'जबकि दिमाग खाली है' में जाति-धर्म-सम्प्रदाय को लेकर मतभेद और

वैमनस्य की स्थितियाँ चित्रित हैं मुख्य रूप से हिन्दुओं की तत्कालीन स्थिति, जो वर्त्तमान से बहुत दूर नहीं है, स्पष्ट करते हुए लिखा है कि 'यहाँ लोगों को कुत्ते-बिल्ली से भी बदतर माना जाता है, क्योंकि वे हिन्दू होते हैं। यहाँ विधवाओं को फुसलाया जाता है और गर्भपात भी कराया जाता है, क्योंकि वे हिन्दू हैं। यहाँ वेश्याओं को मन्दिर में ले जाया जाता है, पर सती अन्त्यज-रमणियों को प्रवेश नहीं करने दिया जाता क्योंकि वे हिन्दू हैं। यहाँ अन्याय को न्याय कहकर चला दिया जाता है। इस समाज में इतनी दुर्बलताएँ इतनी अव्यवस्थाएँ, इतने मिथ्याचार हैं कि यह समाज मरने को बाध्य है।'(3) इन्हें विभिन्न जातियों के बीच की खाई और बढ़ती हुई दिखती है।

4.'अशोक के फूल' निबन्ध में मनुष्य की बदली हुई मनोवृत्ति की और संकेत है-'बदली है मनुष्य की चित्तवृत्ति। यदि बदले बिना वह आगे बढ़ सकती तो शायद वह भी नहीं बदलती। और यदि वह न बदलती और व्यावसायिक संघर्ष आरंभ हो जाता-मशीन का रथ घर्घर चल पड़ता-विज्ञान का सवेग धावन चल निकलता, तो बड़ा बुरा होता। हम पिस जाते अच्छा ही हुआ जो वह बदल गई। पूरी कहाँ बदली है? पर बदल तो रही है।'(4)

5.'वसंत आ गया है' निबन्ध में निबन्धकार की चिन्ता है कि 'हिन्दुस्तान के जवानों में कोई उमंग नहीं है,... सारी दुनिया में हल्ला हो गया कि वसंत आ गया। पर इन कमबख्तों को कोई खबर नहीं कभी-कभी सोचता हूँ कि इनके पास तक संदेश पहुँचाने का क्या कोई साधन नहीं हो सकता?'(5)

6.'मेरी जन्मभूमि' में स्पष्ट किया है कि मनुष्य अपनी इष्ट सिद्धि के लिए अब भी अविचलित होकर भटक रहा है।

7.'नाखून क्यों बढ़ते हैं?' में मनुष्य को पशुता की और बढ़ते देखकर, अस्त्र बढ़ाने की उत्कट लालसा की पूर्ति में लिप्त जानकर, निबन्धकार मानता है कि यह संस्कार से प्राप्त प्रवृत्ति है। हम 'स्व' के बन्धन से आसानी से नहीं मुक्त हो सकते हैं। इसी प्रकार की कई बातें अन्य निबन्धों में भी संकेतित हैं, जो वर्त्तमान से जुड़ जाती है। जैसे 8.'शिरीष के फूल' में आज कालिदास, कबीर, गाँधी जैसे अवधूतों की कमी हो गयी है। ऐसे कठोर सत्य के उद्घोषकों के अभाव में वर्त्तमान जीवन की व्यवस्थाएँ कठिन परेशानी ही पैदा करती हैं। 9.'ठाकुरजी की बटोर' में बतलाया गया है मुसलमान अपनी शक्ति मुसलमानियत का प्रदर्शन करने में खो रहे हैं क्योंकि हिन्दू धर्म के उत्कर्ष

से भयभीत हैं। हिन्दू आवश्यकता से अधिक आत्मविश्वासी हो गये हैं। ऐसी स्थिति में शांति नहीं है। परन्तु आशा है कि जल्द ही-'वह आगन्तुक उत्साह भी समाप्त हो जायेगा और यह अत्यधिक आत्मबोध-मूलक शैथिल्य तो समाप्त हो ही चला है। जब दोनों समाप्त हो जायेंगे तभी रास्ता सूझेगा, तभी शांति आयेगी। तथास्तु।'(6)

वर्त्तमान जीवन-सम्बन्धी विषयों को प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने भी समेटा है। इनके निबन्ध। 'मोटर बनाम साइकिल' में वर्त्तमान युग स्वार्थ से भरा है। इन्होंने कहा है-'आप लाख गुणी हैं, अपने घर में बैठे रहिये। तबतक आपकी खोज-पूछ नहीं होगी जबतक आपसे किसी का कोई स्वार्थ सिद्ध होता नजर नहीं आयेगा। पता नहीं सभ्यता की आखिरी मंजिल पर हम पहुँच चुके हैं या अभी कुछ दूरी बाकी है। यदि बाकी हो तो वह आखिरी मंजिल कैसी होगी? आदमी कहलाने वाले जन्तु को केवल आदमी की शक्ल-सूरत ही रह जायेगी या और कुछ भी?'(7)

2.'ऊँचे चढ़के देखा' में चुनाव में वोट की वर्त्तमान स्थिति पर प्रकाश डाला गया है-'अधिकार सभी व्यक्तियों का समान है। एक व्यक्ति, एक वोट। ये वोट जिसको सबसे अधिक प्राप्त हुए वह सबसे अधिक शक्ति का अधिकारी बन गया क्योंकि वह शक्ति एक उसी की नहीं है, उसके जैसे हजारों-हजार लोगों की है जो अपनी शक्ति, अपने तेज का अंश उस व्यक्ति को दे देते हैं।'(8)

3.'नागफनी' निबन्ध में कैक्टस के माध्यम से वर्त्तमान जीवन के स्वरूप की और संकेत है-'मुझे कैक्टस आधुनिक जीवन का बहुत अच्छा प्रतीक मालूम होता है। आज के जीवन में जो शुष्कता और नीरसता है, जो कंटीली उद्वेजकता है, परिवेश की प्रतिकूलता में भी अस्तित्व की जो विवशता है, और इनके बावजूद जो दुर्दान्त जिजीविषा है वह कैक्टस में मौजूद हैं मनुष्य इसमें अपनी प्रतिच्छवि पाता है और शायद इसीलिए उसे पसंद करता है।'(9)

4.'सफेद झूठ' में वर्त्तमान राजनीतिक भ्रष्टाचार को उभारते हुए कहा गया है-'हमारे लोकतंत्र की इमारत ही झूठ के पायों पर खड़ी है। अब इस नींव पर बने लोकतंत्र से जो लोग सच की या भ्रष्टाचार के उन्मूलन की आशा करते हैं उनके भोलेपन को क्या कहा जाए?'(10)

5.'कृपया गंदा मत कीजिये' और 6.'कहाँ आ गया? निबन्धों में शहर की गंदगी और दफ्तरी जीवन की वर्त्तमान स्थिति की और संकेत है।

7.'प्रेम न हाट बिकाय' में वर्त्तमान मनोवृत्तियों को पकड़ने का प्रयास है। योग, समाधि को आज 'खुल जा सुम-सुम' की तरह एकाएक लाभप्रद स्थिति में पहुँचने का साधन समझा गया है। इस वैज्ञानिक युग में भी अंधविश्वास की और संकेत करते हुए कहा गया है-'किंतु देखता हूँ कि आज जितना अंधविश्वास है उतना तब भी नहीं था जिसे अंधा-युग कहते हैं। एक और मनुष्य अपने को विज्ञानवादी कहता है और दूसरी और तर्कहीन बुद्धिहीन, विवेकहीन पंकिलता में डूबता चला जा रहा है। यह ऐसा विरोध है जिसका समाधान कठिन हैं आज न लोक है, न परलोक, न धर्म है, न अध्यात्म, सब कुछ केवल व्यापार है, व्यवसाय है, वाणिज्य है। आज विज्ञापन के जाल में लोगों को फँसाकर भोग के सारे साधन जुटाना योग का लक्ष्य है। इसमें दिव्य प्रेम तो मरीचिका है ही, सांसारिक प्रेम भी अलभ्य हो गया है।'(11)

वर्त्तमान जीवन-सम्बन्धी निबन्ध डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने भी लिखा है। मुख्य रूप से इनके ऐसे निबन्ध हैं-1.'गऊ चोरी', जिसमें वर्त्तमान युग की चोरी-कला में प्रवीण समाज का चित्रण है। गऊ चोरी से लेकर भूमिचोरी, साहित्य-चोरी, इन्द्रिय चोरी (चित्त चोरी) तक का वर्णन हुआ है। इस समस्या का समाधान बतलाते हुए कहा है-'जानता हूँ, जबतक खेतिहर सरकार न होगी तबतक न तो बैल की ही चोरी बन्द होगी न जमीन ही की चोरी। यह भी जानता हूँ कि राज्यों की छीना-झपटी भी तभी बन्द होगी जब सिद्धान्त मनुष्य के छोटे हो जायेंगे। जबतक मनुष्य अपने बनाये हुए सिद्धान्तों के आगे बौना बना हुआ है, तब तक यह चोरी घट नहीं सकती।'(12)

2.'साँची कहौ व्रजराज तुम्हें रतिराज किधौं रितुराज कियौ है।' निबन्ध भारतीय कला के वर्त्तमान स्वरूप की और ध्यान आकर्षित करता है। आज शिव के काम-दहन पूर्व के उत्कर्षक कला पश्चिम की कला यमुना में मिलने लगी है, जिससे भारतीय कला की गंगा अपनी शक्ति खो रही है। पढ़े-लिखे ही नहीं गँवार अनपढ़ खेतिहर भी अपने राग की एकता का उत्साह खो रहे हैं, उसका स्रोत भी सुख रहा है। इसलिए निबन्धकार कहता है-'हमारी कला की शक्ति अस्ति तक सीमित है, भाति और प्रिय' ये दो पक्ष उसके उभर नहीं पा रहे हैं, उभरने के लिए शिव के नाम और रूप की अनुच्छवि जो चाहिए।'(13) ऐसी वर्त्तमान स्थिति के विषय में कहा है-'अभी तो पश्चिम की सुन्दरी के पैरों का महावर घोलकर फाग खेला जा रहा है और हमारा भोला मनमोहन वरूण

की कृपापात्री की नशीली आँखों में से भरपूर छाकर ऐसा छका हुआ है कि उसे भान ही नहीं कि महावर है कि रोरी, भारती को विवश होकर उलाहना देना पड़ता है।'(14)

3.'बेचिरागी गाँव' में प्राचीन भारतीय संस्कृति का ह्रास बताने के क्रम में वर्त्तमान संस्कृति को सामने रखा गया है। इसमें वर्त्तमान जीवन-शैली पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि 'आराधना की केन्द्र विन्दु, जीवन की अन्तिम आकांक्षा और तपस्या की चरम सिद्धि अपने स्थान से विचलित हो गयी है।'(15)

4.'मुरली की टेर' में कर्म से अधिक भोगवादी वर्त्तमान जीवन की और संकेत है-'आजकल अन्न कमाने से अधिक अन्न खाने पर जोर है।... अनाज उपजाने के लिए प्रचार होता है, पर रोटी के लिए आन्दोलन होता है।'(16)

5.'भोर का आवाहन' में वर्त्तमान साहित्य की रचनाशीलता भी श्रम के अभाव का संकेत देती है-'जो जिन्दगी की तपस्या की श्रम-वारि से भरा नहीं, वह साहित्य छूंछा है और छूंछे घट में मंगलकी अवतारणा कभी भी नहीं की जा सकती।...आज का साहित्य बिजली के पंखे के नीचे का साहित्य है। उसमें श्रम की बूँद उठने नहीं पाती, उठती भी है, तो पल-भर में सुखा दी जाती है, मानो साहित्य में द्रवणशीलता ही नहीं रही।'(17) तात्पर्य यह है कि वर्त्तमान जीवन शैली श्रम से बचकर आगे निकलने की होड़ में हैं इससे अच्छी उपलब्धि प्राप्त नहीं होती है।

6.'न पनिया का वह मामूल है' निबन्ध में वर्त्तमान खान-पान और आबोहवा का अच्छा वर्णन है।-'जीवन का चरपरा आस्वाद कुछ इतना अधिक लग गया है कि कोरे पानी का गिलास अब उपेक्षित की तरह खाने की मेज पर पड़ा रहता है, माँग होती है बियर की, शराब की, नये-नये आकर्षक पेयों की या फिर गरमागरम चाय की, कॉफी की।...साँस लेना भी कम खतरनाक नहीं। एक तरह से जीना ही निरूच्छवास और नीरस हो गया है।'(18) और 'हिलमिल वाली बात नहीं रही, एक-दूसरे के बीच अदृश्य अपरिचय और अजनबीपन की दीवार खड़ी हो गयी, ... आदमी आदमी से कट गया है, बँट गया है, छँट गया है। क्या शहर क्या गाँव पर्व-त्योहार के रंग उजड़ने लगे हैं, ऊपरी तामझाम बढ़ा, शोरशराबा तो खैर ऐसा बढ़ा कि अब कहीं बारात में जाने से भय लगता है ... आज पुकार तनाव दूर करने वाली दवाओं की है, पेयों की है, तृप्ति देने वाली पानी की नहीं है। लोग ऐसा पेय चाहते हैं कि जिससे प्यास

बुझे न बुझे, प्यास जिसे लगती हो, उस व्यक्ति का मन बुझ जाये।'[19] इतना ही नहीं आगे यह भी कहा है कि 'शिक्षा के एक मानव मूल्यनिरपेक्ष प्रवाह ने, स्वार्थ की संकीर्णता ने और किसी भी मानवीय कीमत पर आगे बढ़ने के संकल्प ने मनुष्य को ऐसा खण्डित कर दिया है कि वह रिश्ता-विहीन हो गया है।'[20]

7.'एक घूँट पानी' में वर्त्तमान मानव समाज की आकांक्षा व्यक्त करते हुए निबन्धकार ने कहा है-'हम हैं कि अब भी रस का आखेट करते जा रहे हैं, जंगल को वीरान बनाते चले जा रहे हैं, नदी को बेपानी करते चले जा रहे हैं। ग्राम्य पशु-पक्षियों का पालन भी केवल उनके भोज्य बनाने के लिए करना चाहते हैं, क्योंकि हम जीना चाहते हैं, जीने का पूरा रस चखना चाहते हैं।'[21]

8.'आ जाऊँगी बड़े भोर' निबन्ध में निबन्धकार का कहना है कि 'मुझे दिखता है अपने गाँव के कार्तिक का भोर चिमनी के घुएँ से निगला जा रहा है। जीवन का रस, सर्जन धर्मी जीवन की भीतरी प्यास जिससे बुझती है, वह जीवन का रस भाप बनता जा रहा है, वह भाप भी नीचे द्रव बनकर नहीं उतरता, चीकटगन्धी दूषित हवाओं के घेरे में कैद हो गया है। किसी को गोरस देने के लिए, किसी अपने से लूटकर निहाल होने के लिए जिसे लूटना है, उसके हाथ बिकने के लिए उत्कंठा को पाला मार गया है।'[22]

9.'बर्फ और धूप' में' पश्चिमी देश और भारत के नागरिकों की वर्त्तमान मानसिकता उभारी गयी है।'पश्चिमी देश का युवा वर्ग आत्मरति, मृत्युपीड़ा, जीवन से ऊब, समृद्धि से आकुल, भीतरी कुण्ठा से ग्रस्त, यौन अनुभवों के आनन्द लोक में भ्रमण के पश्चात् शेष नपुंसक आक्रोश में व्यस्त उत्तेजित जीवन जी रहा है। इधर भारतीय बुद्धिवादी नशेबाज तरूण भी परम्परा के दायित्व और समाज से भाग रहा है एकदम विज्ञान जीने के लिए व्याकुल है। विद्युत यंत्रों और पश्चिमी रात्रि-क्लबों की धुँधली रोशनी में जीवन झांकता है फिल्मों, उपन्यासों और नशे में स्वयं को पाना चाहता है परन्तु अंततः असन्तुष्ट रह जाता है।'[23]

10.'अभी-अभी हूँ अभी नहीं' में वर्त्तमान बुद्धिजीवी वर्ग को काफी जागरूक, पटुमीमाँसक और त्रिकालदर्शी बतलाते हुए भी निरूपाय और पंगु कहा है जो विज्ञान के सहारे चल रहा है।

11.'पत्र इण्टेलेक्चुअल भैया के नाम परम्परा जीजी का' निबन्ध में वर्त्तमान विघटनशील षुग-जीवन का मानसिक क्लेश, भटकन, कलह और अन्य समस्याएँ उभारी गयी है। परम्परा जीजी कहती हैं-'पर तुम टूटना-ही-टूटना देख रहे हो।

शिल्पी अपनी मूर्ति तोड़ रहा है, कवि अपने छन्द तोड़ रहा है, दार्शनिक अपनी स्थापनाएँ तोड़ रहा है, वैज्ञानिक पदार्थ और उसके परमाणु तोड़ रहा है और तुम भैया, इन सबके साथ अपने को तोड़ रहे हो।'(24)

12.'मेरा गाँव घर' निबन्ध में आज प्राप्त होने वाले जीवन के पोषक तत्वों की और भी ध्यान दिया गया है। आज पेड़ ठूँठ हो गये हैं, छायाएँ तना बन गयी हैं। पल्लव, कुसुम मात्र दहन बन गये हैं, रस देने और लेने वाली जड़ें उखड़ गयी हैं। दही में वैसी जमावट नहीं। शायद दूध उफनता नहीं, दहैंड़ी सोंधियायी नहीं जाती या घीमी आँच के लिए धैर्य नहीं है। दूध में पानी का मिलावट होता है। बासी-तिबासी ही मिलता है। इस प्रकार ऐसी स्थिति में स्वास्थ्य में गिरावट होना स्वाभाविक है। पोषक तत्व इसके लिए जिम्मेदार हैं।

13.'जयन्ती मंगला काली' निबन्ध वर्त्तमान युगीन जीवन में पर्व-त्योहारों के बदले मूल्य की और संकेत करता है। आज श्रद्धा एवं भक्ति के स्थान पर मात्र औपचारिक ढंग से परम्परागत पर्व-त्योहार मना लिए जाते हैं। इनके महत्व को समझा नहीं जाता है। मन में कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता है। इसलिए कहा गया है-'ये उत्सव आज उपचार हैं, यह दशहरा केवल तमाशा है, यह विजया आत्म-पराजय की बेला है, और यह उल्लास कुण्ठा का आवरण है।'(25)

14.'ड्योढ़े दर्जे का खातिमा' में वर्त्तमान सवारी की गाड़ियों में भीड़ और अलग-अलग वर्ग के डब्बों में अलग व्यवस्थाओं पर व्यंग्य है।

15.'नर-नारायण' में आज की बदलती दृष्टि और मानसिक रूप से ह्रासशील स्थिति का चित्रण है।'नर को नारायण से जोड़नेवाली सरस्वती आज मौन-मुकुलित है। नर में नारायण देखकर 'नमो नारायणाय' के द्वारा प्रणाम के उत्तर में आशीर्वचन देनेवाली परम्परा अब सुषुप्त है, और नारायण की नरलीला के रस-अवगाह की आनन्दधारा आज अवरूद्ध है।'(26) आज के मानव के लिए कहा गया है कि'वह चाहता है कि मनुष्य मनुष्य से प्रेम करे, मनुष्य मनुष्य का विश्वास करे, मनुष्य-मनुष्य की सहायता करे, मनुष्य मनुष्य को उठाये। पर क्यों प्रेम करे कैसे विश्वास करे, किस प्रकार सहायता करे और किस तरह उठाये, यह वह सोचने-समझने की कोशिश नहीं करता।'(27)

धर्मवीर भारती ने भी अपने ललित निबन्धों में कहीं-कहीं वर्त्तमान स्थिति का परिचय देने की कोशिश की है-

1.'लाल कनेर के फूल और लालटेन वाली नाव' में कलासृजन के सम्बन्ध

में कहा है-'ऐसा लगता है कि आज सारे युग का परिवेश प्रतीतियाँ, वातावरण और टेम्परेचर कलासृजन के लिए अनुकूल नहीं है। यह नहीं कि कलासृजन हो नहीं रहा, उच्चकोटि का नहीं हो रहा पर लगता है कि कहीं न कहीं उच्चतम कलासृजन की और इस मूल्यहीन, कला कल्पनाहीन, व्यावहारिक जमाने की चूल बैठ नहीं पा रही।'(28)

2.'रामायण बतर्ज मेरठ' निबन्ध तो मानसिक रूप से फूहड़ वर्त्तमान युग के जीवन का अच्छा नमूना पेश करता है।'रामायण' का अपमान करने से भी बाज न आने वाले लोगों का आदर्श जाने कहाँ खो गया है। राम, लक्ष्मण, भरत, सीता जैसे महिमा मंडित चरित्रों से फिल्मी गीतों का उच्चारण कराने वालें, पार्वती, राधा, सीता जैसी आदर्श भारतीय नारियों की तस्वीरें भड़किली और फैशनेबुल बनाकर पूजा घरों तथा पान दुकानों में टाँगने वालों की रंगीन मानसिकता में क्या कुछ मर्यादा बची रह सकी है। फिर भी धर्मवीर भारती की सोच है कि 'धर्म और संस्कृति के क्षेत्र में थोड़ा कष्ट सहकर भी जनता के अन्दर छिपे हुए कलाबोध पर विश्वास न खोना और उसमें सच्ची सौन्दर्य-दृष्टि और रूचि जगाना, यही एकमात्र रास्ता है।'(29)

3.'ये ठग हटें तो मुसाफिर को रास्ता मिल जाय' में वर्त्तमान धर्मान्धों, भ्रष्ट राजनेताओं और चित्त में व्याप्त अविश्वास, आशंका, डर, द्विविधा ग्रस्त नागरिकों की स्थिति का परिचय है। इस स्थिति में अव्यवस्था सभी क्षेत्रों में जड़ जमायी हुई है। मानव जीवन का आधार कमजोर पड़ गया है। इसलिए'जरूरत है इस गहरे पैठे हुए भय, अविश्वास और अरक्षा की भावना को मिटाकर मनुष्य की मूलवृत्ति उभारने की, जो प्यार और हमदर्दी की है।'(30)

4.'विकासोन्मुख व्यवस्था : ह्रासोन्मुख आत्मीयता' में वर्त्तमान समाज की ह्रासोन्मुख संस्कृति पर विचार करते हुए धर्मवीर भारती ने बहुत उचित लिखा है-'पिछले दस-ग्यारह साल में जीवन के हर क्षेत्र में चाहे जो कुछ विकसित हुआ हो मगर एक चीज धीरे-धीरे कम होती गयी है, वह है मानवीयता, आत्मीयता और हार्दिकता। और उसका नतीजा यह है कि हमारी संस्कृति का हर पक्ष पहले के मुकाबले में थोड़ा श्रीहीन नजर आता है। राजनीति हो, पत्रकारिता हो, साहित्य हो, व्यवसाय-उद्योग हो, सामाजिक जीवन हो, आपको पहले से ज्यादा चमक-दमक मिलेगी, पहले से ज्यादा सजाव सिंगार मिलेगा, पहले से ज्यादा हलचल और जागरूकता मिलेगी-मगर आत्मीयता का एक कण खोजिए, एक

जिन्दादिल इनसान खोजिए मानवीयता का वातावरण खोजिए तो आपको निराश होना पड़ेगा। ज्यों-ज्यों दिन बीतते जा रहे हैं, ऐसे जो रहे-सहै तत्व हैं, वे भी समाप्त हो रहे हैं।'(31)

5.'पागल होना बुनियादी अधिकार' में वर्त्तमान प्रजातांत्रिक व्यवस्था की निष्क्रियता और बुद्धिजीवियों की कुण्ठा तथा उत्तेजित हो जाने की स्थिति दिखलाकर अव्यवस्था ही व्यक्त की गयी है।

कुबेरनाथ राय ने वर्त्तमान जीवन के पहलुओं को कुछ अधिक विस्तार से समेटने का प्रयास किया है। इन्होंने अपने निबन्ध-

1.'सम्पाती के बेटे' में वर्त्तमान स्वार्थी भोगवादी संस्कृति का परिचय दिया है। इनके अनुसार'पारस्परिक समर्पण ही नहीं सहअस्तित्व के अन्य क्षेत्रों में भी अपने उच्छृंखल अस्मिता-भोग पर वह नियन्त्रण रखने की चेष्टा में सदैव लीन रहता है।'(32)

2.'हरी-हरी दूब और लाचार क्रोध' निबन्ध में वर्त्तमान लोकतंत्र के प्रति अनास्था का वातावरण स्पष्ट करते हुए कुबेरनाथ राय बतलाते हैं-'विश्वास मर गया है। विश्वास भरने के कई पार्थिव और मजबूत कारण हैं-...ऐसे परिवेश में भारतीय बुद्धिजीवी कुर्सी, सोना, ताड़-खजूर को उस अक्खड़ ढंग से, उस आत्म विश्वास से जो कबीर-तुलसी में है ललकार नहीं सकता।'(33)

3.'जम्बुक' में इसी और संकेत करते हुए कहा है'आज सारा देश मोहरात्रि से पराजित और अवसन्न है। आलोक के बिन्दु एक के बाद एक बुझते जा रहे हैं। भय से अधिक हताशा का वातावरण है।'(34)

4.'अन्नपूर्णा बाण भूमि' में कृषि संस्कृति और खाद्य संस्कृति में लगातार होते जा रहे परिवर्तन को दिखलाते हुए वर्त्तमान को प्रस्तुत किया गया है-'अफसोस, हमारे गाँव में भी अब लोग इस अद्वितीय श्रेष्ठ भोजन (जौ और चने की रोटी, दूध, घी) को छोड़कर गेहूँ-चावल आदि'नरम चारा' के शौकीन हो गये हैं। जौ या बेझड़ की रोटी और दूध न खाकर बार्ली की बोतल शहर से खरीदकर लाते हैं, या मक्के से बना'हार्लिक्स' लाते हैं और अंगरेजी शब्द कोश दिखा देने पर भी विश्वास नहीं करते कि'बार्ली' माने'जौ'। यह जौ और बेझड़ की पराजय आरोग्य और संस्कृति की पराजय है।'(35)

5.'जल दो, स्फटिक जल दो!' निबन्ध में तो निबन्धकार देखता है कि वर्त्तमान हिन्दुस्तानी परिवेश में प्राचीन संस्कृति से प्रतिष्ठित कामदेव की भी

प्रकृति बदल गयी है। चारो दिशाओं से अन्याय, जाति-वर्ण-सम्प्रदाय भेद, कुव्यवस्था, अवरूद्धता आदि आकर इस बेचारे कामदेव कीखेती को कुछ तो चर डालते हैं और शेष को रौंद कर तहस-नहस कर डालते हैं।'अतः कामदेव अब पुष्पों का षर-सन्धान नहीं करता। यह दक्षिण भारत में ढेले मारता है, उत्तर भारत में प्रेमियों के षीश पर लट्ठ प्रहार करता है, पश्चिम भारत में मोह-मुद्गर से पीटता है और असम बंगाल-उत्कल की भावुकतापूर्ण भूमि में आकर कुछ शील-मुरौवत में आकर सरकण्डे के तीर अर्थात् तुक्के मारता है।'(36)

6.'विकल चैत्ररथी' में निबन्धकार की दृष्टि में'आधुनिक मनुष्य आत्मा को भौतिकवाद के यहाँ बन्धक रख चुका है मात्र शिश्नोदर-विलास के लिए। यह इस विलास को कहता है प्रगति। अपने बन्धक के दस्तावेज को भी समाजवाद-सेक्यूलरिज्म आदि आदि खूबसूरत नामों से अलंकृत करता है और इन शब्दों का प्रयोग गाली-गलौज के लिए भी कर रहा है।'(37) फलतः आज नैतिकता का कोई मूल्य नहीं रह गया है।

7.'सनातन नदी अनाम घीवर' में भी यही बात दुहराई गई है कि विज्ञापनों में घोषित पुण्य आँख के सामने पाप बनकर नाच रहा है।'आज सारा देश बोल रहा है। गाली-गलौज की अपवित्र धारा और-छोर से बह रही है। झूठ इस देश की आत्मा का सहज धर्म बन गया है। होता है संघर्ष जातिवादी शैली में और विज्ञापित होता है वर्ग संघर्ष कहकर।'(38) इसी निबन्ध में देश की खाद्य समस्या को भी सामने रखते हुए निबन्धकार ने कहा है कि'इस देश से धान्य लक्ष्मी भी रूष्ट है।'(39)

8.'नारायण और प्रतिनारायण' निबन्ध में वर्त्तमान मानव जाति के संघर्ष का स्वरूप'धर्म और प्रति धर्म', सत्य और प्रतिसत्य से निर्मित बतलाया गया है। सभी क्षेत्रों में इन्हीं का संघर्ष चल रहा है'पर इनका उपजीव्य और उद्देश्य दोनों भौतिक सुखवाद है। भौतिक सुख के मलद्वार में व्यक्ति को कैद करने के लिए पार्टी और टेक्नोक्रेसी दोनों के माध्यम से ये 'प्रतिधर्म' का व्यूह रच रहे हैं।'(40)

9.'मघु माधव पुनः पुनः' निबन्ध इस तथ्य को रेखांकित करता है कि आज सभी क्षेत्रों में आदर्शों को ताख पर रखकर एक हल्की, फूहड़ मनोरंजक दृष्टि अपनायी जा रही है। पर्व-त्यौहार के गीत भी इसमें कम भूमिका नहीं निभा रहे हैं-'आजकल हमारे गाँव में जो नये होली-गीत बाँधे जाते हैं, वे प्रायः अश्लील

होते हैं, या भोजपुरी और'बंबइया' संस्कारों के मेल से उत्पन्न, भाषा-भाव की दृष्टि से दोगले होते हैं, अथवा व्यंग्य विद्रूप-प्रधान होते हैं।'(41)

कामता प्रसाद सिंह 'काम' ने अपने ललित निबन्धों में वर्त्तमान जीवन की इस मर्यादाविहीन स्थिति को और अधिक स्पष्ट कर दिया है। इन्होंने-

1.'मेरा परिचय' में अपने कर्म क्षेत्रों के वर्णन में अनेक बातें स्पष्ट कर दी है जिसमें शहरी जीवन की ललक में अनेक परेशानियाँ दिखती हैं-चापलूसी, बदनामी, झूठ-फरेब, भ्रष्ट-राजनीति, दलबन्दी आदि में सभी को व्यस्त रहना पड़ता है।

2.'मेरा टेबुल' व्यक्ति-व्यक्ति के भीतर भरी वर्त्तमान अनुशासनहीनता का परिचय दे देता है। यहाँ वर्त्तमान मानव-जीवन की व्याख्या है।

3.'मेरी जेब' ठगी और जेबकतरी की वर्त्तमान बढ़ती प्रवृत्तियों को स्पष्ट करता है। घूसखोरी, पैरवीपरस्त वर्त्तमान को उभारता है।

4.'मेरी पत्नी' में अविश्वास इतना विकसित दिखता है कि सामाजिक कार्यकर्त्ता भी सदा बदनामी ही भोगते हैं। जैसे-'उनकी फर्मायश के मुताबिक उनको गहना बनवा दो तो दुनिया यही कहती है कि यह जनखां है, दिन-रात घर को अगोरे रहता है और लोग कहते हैं कि यह बेईमान है क्योंकि इसने सार्वजनिक पैसे से अपनी स्त्री के लिए गहने बनवाये हैं।'(42)

5.'मेरा चुनाव' वर्त्तमान चुनाव प्रक्रिया की विसंगतियों और दिखावे के चुनावी प्रचार के साथ शोषक प्रवृत्ति पर प्रकाश डालता है-'मैंने मन में कहा कि ले लो बच्चू जो लेना हो, पर तुम्हीं से सूद समेत सब वसूल करेंगे। परमात्मा करे हम कामयाब हो जायें फिर चाहे तुम हो या हम।'(43)

इन्द्रनाथ मदान आदि सामान्य स्तर के ललित निबन्धकारों ने भी वर्त्तमान जीवन की रूप रेखाएँ अंकित करने की और रूचि दिखलायी है।'मदान' ने वर्त्तमान युग के जीवन को औद्योगिक प्रधान, ध्वनि प्रदूषण और अन्य कई समस्याओं से घिरा हुआ बतलाया है। इन्होंने वर्त्तमान मानव जीवन को आवाजों, मशीनों और समस्याओं में ही खोया हुआ देखा है।

ऐसे सभी निबन्ध वर्त्तमान जीवन का यथार्थ समेट कर ले लाते हैं, जिनमें सामान्य से नीचे उतरकर तुच्छ समझी जाने वाली बातें भी जगह पाती हैं। विशेष ध्यातव्य बातें तो हैं ही। इनकी हमारे जीवन के विकास में बहुत बड़ी उपयोगिता है। वर्त्तमान विसंगतियों से उबरने का कोई मार्ग खोजने का प्रयास

इस वर्त्तमान जीवन का स्वरूप जानकर ही किया जा सकता है।

(2) नगर जीवन और ग्राम जीवन–सम्बन्धी निबन्ध :–

ललित निबन्धों में कुछ निबन्ध केवल नगर जीवन से सम्बद्ध मिलते हैं तो कुछ केवल ग्राम जीवन से। कुछ ऐसे भी निबन्ध हैं, जिनमें नगर और ग्राम दोनों क्षेत्रों के जीवन को समेटा गया है। इनमें दोनों को तुलनात्मक दृष्टि से देखने का प्रयास भी है। यह जीवन-दृष्टि प्राचीन से लेकर आज तक की हो सकती है। इसी आधार पर यहाँ प्रमुख निबन्धों में ऐसे विषय प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध 1.'मेरी जन्मभूमि' में 'ओझवलिया' गाँव के जनजीवन का अच्छा चित्रण हुआ है-'इस भूभाग का इतिहास ही निरंतर बनते और मिटते रहने का है। इसलिए यहाँ के निवासियों में एक प्रकार का'कुछ परवा नहीं'-भाव विकसित हो गया है। एक अजीब प्रकार की मस्ती और निर्भीकता इन लोगों के चेहरों पर दीखती है। विपत्ति के थपेड़ों से चेहरे सहज ही नहीं मुरझाते। कठिनाइयों में से रास्ता निकाल लेना इनका स्वभाव हो गया है।'(44) इस गाँव के लोग भगवती काली, हनुमान, पिलेक मैया (प्लेग माता) आदि की पूजा करते हैं। यहाँ रहने वाली जातियाँ कांदू, बनिया, दुसाध आदि अपने पेशे का काम करते हैं।

2.'देवदारू' निबन्ध में ग्रामीण अंधविश्वास को सामने रखते हुए निबन्धकार ने कहा है-'मैंने अपने गाँव के एक महान भूत-भगवान ओझा को देवदारू की लकड़ी से भूत भगाते देखा है। आजकल के शिक्षित लोग भूत में विश्वास नहीं करते। वे भूत को मन का वहम मानते हैं। पर गाँव में भूत लगते मैंने देखा है। भूत भागते भी देखा है।'(45)

प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने अपने ललित निबन्ध 1.'जागल रहिह ऽहो ...ओ... ओ' में ग्रामीण शांत वातावरण का परिचय दिया है-'रात लगभग आधी जा चुकी है। चारो और सन्नाटा है-भयमिश्रित सन्नाटा! शहरों की तरह बिजली के स्ट्रीट लैंप नहीं जल रहे हैं। घोर अंधकार है। सन्नाटा, भयानकता, अंधकार। और मैं गाढ़ी नींद में हूँ। एकाएक वही कक्रश ध्वनि कानों में पड़ती है, खबरदार! और मेरी नींद उचट जाती है।'(46)

2.'कृपया गंदा मत कीजिए' में नगरजीवन की 'गंदगी' का वर्णन है।

3.'कहाँ आ गया' में 'मच्छरों' से भरे पटना शहर और आँखमिचौनी खेल खेलती बिजली की दयनीय दशा का वर्णन है। वहाँ की सड़कों का खास्ता हाल,

चोरी-लूट का वातावरण भीड़-भड़ाकेवाली यातायात की कुव्यवस्था आदि प्रस्तुत करके दफ्तरी जीवन की दुर्दशा व्यक्त की गयी है। साथ ही बर्लिन के नगर की सुन्दर व्यवस्था से इसकी तुलना की गयी है। जैसे-'पटने का महत्व बर्लिन में मालूम हो रहा है। इन भले-मानसों ने इतना बड़ा चिड़ियाखाना बना रखा है : एक से एक अजीबोगरीब जीव-जंतु पाल रखे हैं पर दो-चार मच्छड़ पालते नहीं बना। एक हम हैं जो सारी दुनिया के चिड़ियाखानों को मच्छड़ों से भर देने की ताकत रखते हैं।'(47)

डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने अपने निबन्धों में ग्रामीण संस्कृति को अधिक अपनाया है। अतः ग्राम जीवन-सम्बन्धी विषय की चर्चा अधिक है। इन्होंने नगर के भोगे प्रवास का यथार्थ भी निसंकोच भाव से व्यक्त किया है।

1.'धनवा पियर भइलें मनवा पियर भइलें' में ग्रामीण कृषि जीवन के प्रति मोह एवं प्रवासियों के मन की मधुर व्यथा चित्रित है। इसमें वर्त्तमान कृषि-जीवन को संकट ग्रस्त बतलाया गया है।

2.'बेचिरागी गाँव' निबन्ध में कृषि संस्कृति से उदाहरण लेकर प्राकृतिक उर्वरक की तैयारी का तरीका बतलाया गया है-'सन या पाट कभी-कभी खेत में इसलिए बोकर दबा दिया जाता है कि वह उस खेत की क्षीण उर्वरा-शक्ति को पुनः जीवित कर दे। सन जितना ही घना होता है और जितना ही ऊँचे उठता है, उतनी ही उस लोभी खेतिहर की उमंग भी ऊँची उठती है। वह सोचता है कि जब यह सन उलट दिया जायेगा और इसके रेशे-रेशे गलकर उस खेत की मिट्टी में मिल जायेंगे, तब खेत में अच्छी उपज होगी।'(48)

3.'पूर्णमदः पूर्णमिदम्' निबन्ध में ग्रामीण एवं नगर जीवन के अभाव एवं विभिन्न दृष्टिकोणों से अपूर्णता का अच्छा संकेत है-'आज तो छूंछी गागर गाँव में औंधी और शहर में'उतान' पड़ी है। गाँव उसके छूंछेपन पर कम-से-कम दो बूँद आँसू गिराता ही है, पर शहर के पास एक फीकी-सी हँसी भर है।'(49)

लेकिन इसके बावजूद गाँव में रहने वाला सब कुछ बहा ले जाने वाली सरिता में मैया का दुलार पाता है, श्रम का वारि लेने वाली मिट्टी की सोंधी उसाँस में प्रेयसी का स्पर्श पाता है, अपने टूटे-फूटे घरके भीटे को फोड़कर निकले हुए पीपल में वंश का गौरव पाता है और अपने शोषक के दरवाजे पर युगों से तने हुए बरगद में पिता की घनी छाँह पाता है, पर शहराती आदमी की न कोई माँ है, न प्रेमिका है, न पुत्र है, न पिता है क्योंकि वह वीतराग है या

और भी सही रूप में क्रीतराग है।'(50) आगे यह भी कि ममता, स्नेह, वत्सलता ये सब उसके अपने उपयोग के लिए नहीं है जरूरत पड़ने पर इसकी खरीद बिक्री या उधारी लेन-देन करता है-'शहर में इसका बड़ा सुभीता है। ईमान, सत्य प्रेम, त्याग, सम्मान इन सभी चीजों का बंधा हुआ रोजगार चलता है। मजा यह कि नगद भुगतान नहीं होता, चेक या हुण्डी ही का चलन है, बहुत ही सुरक्षित हिसाब-किताब है।'(51)

4.'भोर का आवाहन' और 5.'सन्ध्या का ध्यान' भारतीय ग्रामीण जीवन का मनोहर चित्र खींच लेने वाले निबन्ध है। साथ ही शहरी जीवन से इसकी तुलना भी की गयी है।

'ऐ भोर रे भइले भिनुसार चिरइया एक बोले ले, मिरूग बन चूगेले

एक भोरे खेतवन हर लेके चल हरवहवा त बहुवर जांते...।'(52) में ही ग्रामीण जीवन और शहरी जीवन के भेद समा गये हैं क्योंकि निबन्धकार ने कहा है कि'एलार्म घड़ी या मिल के भोंपू या सूरज की गरम धूप से जिनकी नींद खुलती है, उनको एक चिड़िया के बोलने के साथ प्रभात-बेला का तादात्म्य कभी सपने में भी नहीं झलकेगा।'(53)'सन्ध्या का ध्यान' में प्रस्तुत लोक गीतों में सुखद, स्वस्थ, प्रेमपूर्ण ग्रामीण जीवन का राग भरा हुआ है। शायद इसीलिए निबन्धकार ने 5.'आंचलिक मित्रों से' निबन्ध में इस ग्रामीण संस्कृति को बचाने का निवेदन किया है।'अपने अंचल को बुरी नजर से, लिस्टालंकार बनने से फ्लैश बल्ब की जलनेवाली रोशनी से, एडीदार जूतियों की उठती धूल से, निर्लज्जता, नयेपन के अभिमान से इसे बचाना इनका लक्ष्य है।'(54)

6.'आ जाऊँगी बड़े भोर' निबन्ध में गाँव के शहरीकरण पर क्षोभ व्यक्त किया है।

7.'अग्निरथ' में महानगरीय जीवन व्यतीत करता हुआ निबन्धकार का ग्रामीण मन पूरानी पड़ चुकी बसंती बहार युक्त पर्यावरण की छवि की कल्पना में डूबने लगता है।

8.'कहो कैसा रंग है' निबन्ध विद्यानिवास मिश्र का अपना नगर एवं ग्राम जीवन का अनुभव है, जिसमें उसकी निजी अनुभूति शहर से अधिक गाँव को चाहती हैं।इन्हें शहर अपना कार्यक्षेत्र होकर भी पराया लगता है। शहर में मनुष्य स्वयं अपना आखेटक लगता है। वहाँ स्वतंत्र आकाश और स्वतंत्र एकान्त नहीं मिलता है। काशी जैसे शहर में कबीर, तुलसी,भारतेन्दु शिवबाबा के फक्कड़पन

में भले ही कुछ मन रम जाता है। इन्होंने दोनों जगहों में रहकर अनुभव किया है कि-'गाँव में मैं बरसों से नहीं रहता, पर गाँव मुझमें न रहे तो मेरा रहना कुछ निरर्थक हो जाता है। जब-जब किसी शहर में, किसी बड़े शहर में खो जाता हूँ, इनसे-उनसे राह पुछते-पुछते एकदम घबरा जाता हूँ अनजाने चेहरे डरावने लगने लगते हैं, राहें अछोर लगने लगती हैं, यात्रा का उद्देश्य बिसरने लगता है, तो भीतर बसा गाँव उँगली थामकर दिखलाता है-उस आदमी को देखो, उसके चेहरे पर एक पहचान की आभा है, वह तुम्हें पहचानता है, तुम उसे नहीं पहचानते, देखो वह पुकार रहा है-बाबू तुम मुझे चीन्ह नहीं पाये, मैं वही औरी कहार हूँ ...।'(55)

9.'मेरा गाँव घर' में ये अपने बचपन के बीते दिनों को स्मरण करने के क्रम में ग्राम जीवन की कई बातें स्पष्ट करते गए हैं। जैसे-'अमराई से होकर स्कूल जाते समय पीपल के पेड़ के पास भयभीत होना' ग्रामीण जन की भयानक किवंदतियों को महत्व देने की बात है। गाँव में खेती-बारी का पेशा अपनाया जाता है। प्रायः कच्ची मिट्टी के घर होते है। सभी जाति के लोग प्रायः मेल-मिलाप से रहते हैं। इसलिए निबन्धकार का कहना है-'कुम्हार का चाक, बढ़ई की रूखानी और दही की दहेड़ी-ये पीछे छूटकर भी पीछे नहीं छूटे।'(56)

नगर जीवन को सामने रखते हुए निबन्धकार ने अपना अनुभव बतलाया है-'एक अजनबी शहर में रहता हूँ, जहाँ हर क्षण चौकन्ना रहना पड़ता है। कोई भय नहीं, बस लगता है कि अपनेपन का फैलाव बस कुछ गड़बड़ कर देता है। लगता है, मुखौटों के बीच मुखौटानुमा भाषा में एक क्षण भी चूक हुई कि नकली जिन्दगी का सुख छिन जायेगा।'(57)

10. सदा अनन्द रहे एहि द्वारे 'ग्रामीण जीवन में पर्व-त्यौहारों का महत्व, होली मनाने की वर्त्तमान एवं अतीत की शैलियाँ, लोकगीतों की ग्रामीण परम्पराएँ और साथ ही आज हुआ उसका ह्रास दिखलाया गया है।

11.'भरि देहु गगरिया हमारी' में ग्रामीण जीवन चैता के लोक गीतों में डूबा हुआ मिलता है।'नहिं आवत चैन हाय जियरा लगि गैलें','सजनी हो, मन मोर मनावै, वसन्त न आवै','एहि ठइयाँ झुलनी हैरानी हो रामा, कासौं मैं पूछूँ' और'भरि देहु गगरिया हमारी, कहत ब्रजनारी राग-रंग के साथ ग्रामीण जीवन के भीतर से अनेक रहस्यों को भी निकालकर सामने रख देने वाली पंक्तियाँ हैं।

12.'मैं मधुवन जाऊँगा रे' ग्रामीण बनजारा जीवन की व्याख्या है जो शहरी

सभ्य शिक्षित जनों के जीवन से जुड़,जाता है-'जाइब रे मघुबनवा। गोइँठवा बीने जाइब रे मघुबनवा।' (58) का रहस्य यह है कि'हम सभी मघुवन में यही तो कर रहे हैं, सूखी कंडियाँ बीन रहे हैं, मघुवन का एहसास हमें न गन्ध से होता है, न रंग से और न होता है तरह-तरह के स्वर-संसार से।'(59)

13.'होरहा' 14.'कटहल' और 15.'धानपान और नीली लपटें' भी ग्रामीण जीवन का विवेचन करने वाले ललित निबन्ध हैं। 16.'आँगन का पंछी' 17.'जयन्ती मंगला काली' निबन्ध की आधार भूमि भी ग्रामीण जनजीवन है।

कुबेरनाथ राय अपने ललित निबन्धों में ग्रामीण और शहरी जीवन को प्रायः डॉ विद्यानिवास मिश्र की ही भाँति देखते हैं। इनका लगाव भी अधिकांशतः गाँव से ही है। ये ग्रामीण संस्कृति में अधिक रस पाते हैं-

1.'सनातन नीम' में निबन्धकार नीम के नीचे रात का अनुभव बतलाता है।'दिन की गरमी से व्यथित हम इसके नीचे रात को खाट बिछाकर सोते हैं। रात के एकान्त क्षणों में इसपर श्रृंगार उतर आता है। दो बाँहों के बीच चाँद झूलता है। ज्योत्स्ना की धवल धारा में हरी नयी पत्तियों को पखारकर पवन हलका-हलका स्पर्श देता है। रात को नींद उचट जाने पर मजा आ जाता है।'(60)

यह सुखद अनुभूति निबन्धकार की व्यक्तिगत अनुभूति होकर समष्टिगत हो जाती है। प्रायः कोई भी सहृदयी ग्रामीण यह रस पा सकता है।

2.'सम्पाती के बेटे' में प्रस्तुत ग्रामीण परिवेश खेत-खलिहान, जंगल बाग-बगीचा, खुला आकाश, मस्त हवा, सुनहली किरणें रसबोध की जितनी सामग्रियाँ जुटा लेती हैं नगर की सोच-समझकर बनायी गयी वैज्ञानिक विधियों को मात कर देती है। इसलिए निबन्धकार कह उठता है-'प्रकृति की मुक्त और अनन्त छवि को सम्मुख पाकर मन के रसबोध का दायरा इतना विस्तृत हो जाता है कि'जिस्म' का वह आकर्षण जो बद्ध सीमित शयनकक्ष के अन्दर'बद्ध' मन को रेशमी माया बुनकर बाँधता है, इस महिमा में विलीन हो लापता हो जाता है। कृष्ण ने राधा के साथ जिस महाभाव की साधना की, जिस काम-गन्धहीन रसबोध की उपासना की उसका श्रेय यमुनातट, करील और कदम्ब की हरीतिमा तथा शरद्पूर्णिमा को है। वे द्वारिका के शयन-कक्ष में क्यों नहीं महाभाव पा गये?'(61)

3.'रस आखेटक' में कुबेरनाथ के लिए ग्रामीण परिवेश रूप-रस-गन्ध से भरा हुआ है। इसने कहा है-'हवा, धरती और हरीतिमा ही मेरी नायिकाएँ हैं।

मैंने कामरूपिणी की निरावरण कटि को देखा है, बंगाल की कालबैशाखी का फहराता आँचल पकड़ लिया है, पक्वतालफलोपम स्तनों वाली कन्याकुमारी से परिचय किया है...।'(62) आगे ग्रीष्म ऋतु में गाँव के वातावरण को विभिन्न दृष्टियों से देखते हुए जनजीवन पर प्रकाश डाल दिया है। रात-दिन, सुबह-शाम को अलग-अलग ढंग से देखा है। जैसे-'ग्रीष्म के अंतिम दिनों में ...रातें शीतल और सुखदायक होती हैं। दिन-भर लू बहती है, हवा में आग का दरिया बहता है और सारा मन खौलता दिमाग उबलता रहता है।'(63) इसलिए यह काल मात्र सौन्दर्य बोध के लिए है, छिछले शारीरिक रति-बोध के लिए नहीं। रतिबोध के लिए तो सबेरे का झुटपुटा या झलफला, ऊषा की लालिमा से पूर्व का नीलारूण क्षण है जो स्वादबोध से सम्पन्न होता है। इसलिए गाँव में जब 'नयी उमर की लड़कियां अंधेरे मुँह महुआ बीनने आती हैं। कभी-कभी बड़ा ही रोमाण्टिक कारबार हो जाता है। आज से नहीं पहले से ही। गाथा सप्तशती में एक वधू गोदावरी तट के मधूक कुंज से कहती है-'है गोदावरी तट के मधूक कुंज, तुम्हारी षाखाएँ पुण्य-भार से पृथ्वी पर्यन्त झुक गयी हैं। परन्तु तुम धीरे-धीरे विगलित पुष्प होना।'ख64, क्योंकि इससे अधिक दिनों तक अवसर प्राप्त होगा। गाँव के लोग महुआ के फूल, नमक और दाल पकाकर रावड़ी जैसा बना भोजन करते हैं। चमार जाति के लोग तो यू.पी. में पशुओं के गोबर से अनपचा अनाज धोकर सुखा लेते हैं। और गरमी के बेकारी के दिनों में खाते हैं।

4.'हरी-हरी दूब और लाचार क्रोध' में गाँवों के देश हिन्दुस्तान का जनजीवन दूर्वा की हरीतिमा में समाया हुआ दिखलाया गया है-'लाख कुचलो, रौंदो, काटो, चीनी चटाओ, मट्ठा पिलाओ पर सब बेकार। रूदन और मरण यहाँ की हरीतिमा नहीं जानती। जीवन कितना हठी है और मृत्यु कितनी पराजित, लाचार और दीन। यह कोई हिन्दुस्तानी हरीतिमा से सीखें।'(65)

5.'जम्बुक' निबन्ध में निबन्धकार ने ग्रामीण जनता के आहार-विहार का यथार्थ चित्रण किया है-'मेरे गाँव में दक्षिण तरफ डोमों की बस्ती है। उनके बच्चे जंगल-जंगल, बाग-बाग, खेत-खेत कोई जड़ी, कोई गाँठ, कोई कंद, चाहे खाद्य हो या कुखाद्य ढूँढ़ते-खोजते-खाते फिरते हैं, मीठी भटकोंई हो या काषाय जड़ें, दोनों को चाव से खाते हैं, ज्वार-बाजरे का डंठल चूसते हैं और बाजरे का'सीका' (नये गुंफ) जानवरों की तरह भरपेट खा जाते हैं।'(66) ग्रामीण जन की धारणा है कि टहट ही धूप में पनबदरा बरसने लगे तो जान लेना चाहिए

कि कहीं न कहीं स्यार मामा का विवाह हो रहा है। यदि स्यार रास्ता काट दे तो बड़ा भारी अपशकुन हो जाता है। पूर्वी भारत में तो श्रृगाल दम्पति को शिव-पार्वती के अघोर-भैरवी रूप का प्रतीक माना जाता है। जिस महिषासुर का त्रिपुर सुन्दरी मर्दन करती है, वह शिव की वासना ही भैंस के रूप में है।

6.'अन्नपूर्णा बाणभूमि' में ग्रामीण कृषि पर आधारित जनजीवन के आहार-विहार उनकी आर्थिक स्थिति और फसलों की उपज का ही वर्णन है।

7.'उजड्ड वसन्त और हिप्पी जलचर' नगर जीवन व्यतीत करते हुए लोगों की जीवन शैली में पड़े पश्चिमी प्रभाव का वर्णन है। इन्होंने आगाह किया है कि 'यह ह्रासोन्मुख युवा संस्कृति, चाहे वह हिप्पी हो या 'ईपी'-दोनों ही, व्यक्तिमुखी और ध्वंसमुखी है। भारतीय युवा इस स्थिति को देखकर सतर्क हो जाये तो अच्छा हो।'(67) क्योंकि 'भँडुओं-रण्डियों-नर्तकियों के लिए सुरमें की शीशी चल सकती है। परन्तु भारत माता के लाखों-करोड़ों नन्हें-मुन्हें के लिए परम्परागत अंजन पात्र धोंधा ही है।'(68) वही धोंधा (शम्बुक) जो एक विराट् दार्शनिक प्रतीक है। सर्वत्र गति, सर्वरूचि और सर्वज्ञान से सम्पन्न जलचर है।

8.'मधु-माधव पुनः पुनः'

9.'ढलती रात में मालकोश'

10.'अर्धरात्रि के राग-यक्ष' आदि में गीत और संगीत (राग) ही ग्रामीण वातावरण को मनोरम बनाये हुए है। इन निबन्धों में ग्रामीण जनजीवन का मधुमय, संगीतमय जीवन मुखर हुआ है।

कामता प्रसाद सिंह के निबन्ध 'मेरा टेबुल','मेरा जेब','मेरी पत्नी' और मेरा चुनाव' नगर जीवन का यथार्थ सामने रखते है।

1.'मेरा टेबुल' में अपने टेबल का उपयोग बतलाते हुए निबन्धकार ने कहा है-'सामान रखना, किताब रखना, खाना खिलाना, चाय पीना, नास्ता करना, ताश खेलना एक काम अनेक।'(69)

2.'मेरी जेब' का परिचय है-'गोया जेब क्या है आजायबघर है। डाक्टर भी जेब में, इन्जीनियर भी जेब में, दवा भी जेब में, दारू भी जेब में, नौकरी भी जेब में, टीका भी जेब में, मिनिस्टर भी जेब में और न जाने क्या सब जेब में।'(70)

3.'मेरी पत्नी' में निबन्धकार ने अपनी पत्नी के सम्बन्ध में कहा है-'हवा में फहराने वाली विजय ध्वजा उनके मन को जरा भी मुदित नहीं करती

क्योंकि उससे उनको एक वैसी साड़ी की प्राप्ति नहीं होती जिसका कोर हवा में फहर-फहर फहराये। प्रकाशकों के यहाँ से छपकर आनेवाली किताबों का गेटअप उनके मन को जरा भी नहीं लुभाता क्योंकि उससे उनके गहनों की सूची में कोई इजाफा नहीं होता है।'(71)

4.'मेरा चुनाव' में वर्णित है चुनावी शब्जबाग और चुनाव के मैदान में हारने का फल-'मसल मशहूर है किसी से एक पुश्त की दुश्मनी हो तो उसको मुकदमें में फँसा दो, दो पुश्त की दुश्मनी हो तो उसको पिंगल पढ़ने में लगा दो और खानदानी दुश्मनी हो तो बस बढ़ा-चढ़ा कर खड़ा करके उसको चुनाव लड़वा दो।'(72)

इस प्रकार सभी संदर्भ नगर जीवन का ही परिचय देते हैं। कहीं भी देखा जाय तो ग्रामीण परिवेश नहीं मिलता है।

जैनेन्द्र कुमार प्रबुद्ध व्यक्ति हैं। इनके निबन्ध इनकी ही अभिव्यक्ति है। अतः 1. आप क्या करते हैं? का वातावरण नगर जीवन का है। सारी बातचीत शिक्षित वर्ग के बीच संपन्न होती है फिर इसने नगर जीवन के बारे में कोई स्पष्ट अनुभव व्यक्त नहीं हुआ है। इसी प्रकार 2.'सम्पादकीय मैटर', 3. 'रामकथा', 4.'दही और समाज', 5.'बाजार-दर्शन' का भी वातावरण नगर-जीवन होने के बावजूद कोई विशेष तथ्य उजागर नहीं हो सका है।

6.'दफ्तर और' वास्तविक रूप में नगर जीवन पर प्रकाश डालने वाला निबन्ध है जिसमें लिखा गया है-'शहर में लोग कामिन्दा रहते हैं। वक्त की उन्हें कीमत है। ये झपट कर चलते हैं...क्योंकि यहाँ काम है। काम है इसलिए पैसा है।'(73)

शहर में मध्यमवर्गीय परिवार की दयनीय स्थिति यह है कि'घर उसका तालेबन्द है और स्त्री पति की कमाई में से नोंच-खोंच कर अपनी आजादी, दिखावट और जेवर बनाने को झींका करती है... धन को काम से अधिक बैंक में और व्यय से अधिक आय में रखना होता है। स्त्री को उसी तरह जगत से अधिक अन्तःपुर और प्रकाश में से अधिक अंधेरे में रखा जाता है।... जहाँ मन को तारना, पत्नी को धर्मपत्नी समझना इत्यादि-इत्यादि अनावश्यक बातें आवश्यक होती है। इससे क्लब और होटल जैसी संस्थाओं को उनकी जगह लेनी होगी।'(74)

प्रभाकर माचवे के 'एक कुत्ते की डायरी' में नगर जीवन का रंग देखा जा

सकता है। इन्द्रनाथ मदान के निबन्धों 'समस्याओं के घेरे में' आवाजों के घेरे में 'मशीनों के घेरे में' आदि में शहरी जीवन की परेशानियाँ अंकित हैं। ऐसे निबन्धों को पढ़कर एक और जहाँ इनकी उपयोगिता ललित निबन्ध के लालित्य का रसास्वादन करने में है, वहीं दूसरी और गाँव छोड़कर शहर की और भागते हुए जनजीवन की मनोवृत्ति और इनकी भूलों को भी देखने का मौका मिलता है। ग्राम और नगर जीवन सम्बन्धी निबन्धों के सभी निबन्धकार अपने अनुभूत सच को सामने रखकर यह बतला देना चाहते हैं कि जिस गाँव की मिट्टी की सोंधी महक छोड़कर हम शहर की कृत्रिम झलक मात्र को अपनाते हैं, उसमें जीवन की वह सरसता नहीं मिलती है।

वर्त्तमान युग की एक बहुत बड़ी समस्या है औद्योगिकरण की। इसी ने गाँव-गाँव से शक्ति और ज्ञान को, श्रम और सम्पत्ति को, सुख-शान्ति और आरोग्य को अपनी कृत्रिम, आड़म्बरी, भोगवादी प्रवृत्ति के कारण खींच-खींचकर शहर के कश्बों में सड़ने के लिए इकट्ठा किया है, करता जा रहा है। मकान पर मकान और फिर उपर कई मंजिलें, एक झोपड़ी की दीवार दूसरी झोपड़ी की दीवार के भीतर की कराह सुनने में बाधा नहीं शमन पाती पर सहानुभूति, आपसी मेल-जोल और उस कराह के प्रति संवेदनशीलता रोकने के लिए चीन की दीवार है।

प्रस्तुत अनेक निबन्धों में व्यक्त यथार्थ पाकर पाठक का मन गाँव की और ललक भरी निगाह से देखने के लिए मजबूर हो जाता है। भले ही वह उधर जाने में समर्थ न हो सके। अमृत तो उसी को मिलेगा जिसमें समुद्र मंथन का सामर्थ्य हो। गाँव का श्रमशील वातायन का सुख श्रम में, संतोष और त्याग में है। भोगवादी, सुविधाभोगी वर्त्तमान जनजीवन मधुवन का, नीम की छाँह का सुख और आरोग्य प्राप्त करने की कोशिश करें। यही इन निबन्धों का कथ्य है। इसी कथ्य में इनकी सार्थकता सिद्ध हो जाती है।

3. निजी जीवन–सम्बन्धी निबन्ध :–

ललित निबन्ध निबन्धकार की आत्मपरक रचना है। अतः स्व की अभिव्यक्ति सभी ललित निबन्धों में मिलेगी। मैं, मेरा की शैली में अनेक संदर्भ मिल जायेंगे परन्तु यह आवश्यक नहीं कि इन सभी निबन्धों में निबन्धकार अपने निजी जीवन को विषय बनाया हो। ऐसे निबन्धों की संख्या सीमित है। अतः प्रस्तुत खण्ड में निबन्धकारों के निजी जीवन से सम्बन्धित निबन्धों की चर्चा हो रही है।

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने ललित निबन्धों में कहीं-कहीं निजी जीवन की बातें रख जाते है। अपने निजी जीवन से सम्बन्धित कई उपादानों को यथार्थ रुप में रखने की इनकी प्रवृत्ति है। जैसे'1वसंत आ गया है, में दो कचनार वृक्षों की चर्चा छेड़ते हुए कहते हैं'दो कचनार वृक्ष इस हिन्दी भवन में हैं। एक ठीक मेरे दरवाजे पर और दूसरा मेरे पड़ोसी के। भाग्य की विडम्बना देखिए कि दोनों एक ही दिन लगाए गए हैं। मेरावाला ज्यादा स्वस्थ और सबल है। पड़ोसी वाला कमजोर, मरियल। परन्तु इसमें नहीं आए और वह कमबख्त कंधे पर से फूल-फूल की ललाई बहुत भाती है।... पर दुर्भाग्य देखिए कि इतना स्वस्थ पेड़ ऐसा सूना पड़ा हुआ है और वह कमजोर दुबला लहक उठा है। कमजोरों में भावुकता ज्यादा होती होगी।'(75) और अंत में यह भी कि 'मुझे बुखार आ रहा है। यह भी नियति का मजाक ही है।... अपने कचनार की और देखता हूँ और सोचता हूँ, मेरी वजह से तो यह नहीं रुका है।(76)

2. मेरी जन्म भूमि 'निबन्ध की शुरुआतही निबन्धकार के निजी जीवन की चर्चा से होती है।' जिस गाँव में साहित्य चर्चा करने के लिए बैठा हूँ उसका नाम ओझवलिया है। यह मेरी जन्मभूमि है। इस गाँव के एक हिस्से को 'आरत दुबे का छपरा कहते हैं। यही वस्तुतः मेरी जन्मभूमि है, परन्तु वह हमेशा से इस गाँव का हिस्सा ही रहा है।' आरत दुबे 'मेरे ही पूर्व-पुरुष थे। उन्होंने ही इस छोटे हिस्से को बसाया था...।'(77)

3.'क्या निराश हुआ जाय? निबन्ध में निबन्धकार ने आपबीती घटनाओं की चर्चा की है।' मैं एकबार रेलवे स्टेशन पर टिकिट लेने गया। गलती से मैंने दस रुपये के बदले सौ रुपये का नोट दे दिया।... थोडी देर में टिकिट बाबू उन दिनो के सैकेंड क्लास के डब्बे में हर आदमी का चेहरा पहचानता हुआ उपस्थित हुआ। उसने मुझे पहचान लिया और बड़ी विनम्रता के साथ मेरे हाथ में नब्बे रुपये रख दिये और कहा, यह बहुत बड़ी गलती हो गयी थी। आपने भी नहीं देखा, मैने भी नहीं देखा।... मैं चकित रह गया। कैसे कहूँ कि दुनिया से सच्चाई और ईमानदारी लुप्त हो गयी है,'(78)

4.'पण्डितों की पंचायत' में स्वयं की उपस्थिति दर्ज करते हुए निबन्धकार ने लिखा है'यह संयोग की ही बात कही जायेगी कि इस बार के एकादशी वाले झगड़े की सभा में मुझे भी उपस्थित होना पड़ा। मैं बिल्कुल ही नहीं जानता था कि काशी के पंचांग-निर्माताओं ने गाँव में रहनेवाले विश्वास-परायण पण्डितों

को आलोड़ित कर दिया है।'(79)

प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने भी अपने कई निबन्धों में निजी जीवन सम्बन्धी विषय को स्थान दिया है। जैसे :-

1. खिलौना 'में अपनी, अपनी पत्नी और बच्चे की मनोदशा व्यक्त करते हुए-' खिलौने की दुकान में घुसने पर अपने चिरंजीव का मचलना मैं बहुत दिलचस्पी से देखा करता हूँ।'(80)

'पर जब मैं किताब की दुकान में घुसता हूँ तो मेरी हालत उनसे कुछ कम दयनीय नहीं होती।'(81)' और मेरी श्रीमतीजी जब कपड़े या गहने की दुकान में पैठती हैं तो उनकी अवस्था मेरी या चिंरजीव कर अपेक्षा कुछ खास अच्छी नहीं होती।'(82)

2.'ताला' 'में' अभी मुझे बाहर जाना है। घर में दूसरा कोई नहीं है जिसपर निगरानी का भार छोडूँ। लखपती नहीं हूँ, मगर घर में सुख-सुविधा की कुछ चीजें तो हैं ही। उनकी रक्षा की चिन्ता स्वाभाविक है।'(83)

3. मैंने उस दिन जाना' और 4 ऊँचे चढ़के देखा' में अत्यल्प स्थानों पर निजी व्यवहारों का वर्णन है, ठीक 5.-दादी 'निबन्ध की तरह' 'दादी' में अपने क्रोध को व्यक्त करते हुए की है-और मेरे क्रोध का तब कोई ठिकाना नहीं रह जाता जब मैं किसी रमणी को देखता हूँ। यदि विधाता सामने रहते तो...क्या बताऊँ? जो व्यक्ति रमणियों का कपोल निर्लोम बना सकता था, वह क्या पुरुषों का नहीं बना सकता था? कम से कम इससे इतना तो सिद्व ही है कि गाल में बाल का होना अनिवार्य नहीं था।'(84)

6.'आईना बोल उठा' में निबन्धकार अपने स्वरुप को झाँकता है।'आईना के सामने खड़ा हूँ, यह जानने को कि मैं कैसा हुँ, और यह प्रश्न न जाने दिल मे कितनी बार उठता मै कैसा हूँ आज तक ठीक-ठीक नहीं समझ पाया।'(85)

और अत में यह भी कि'किसी के पाँवों की आहट मेरा ध्यान खींचे लेती है और आईना मौन धारण कर लेता हैं, पीछे मुड़कर देखता हूँ तो श्रीमती जी मुस्कराती हुई खड़ी हैं'(86)

7.'मोटर बनाम साइकिल' में अपनी आदत के विषय में बतलाया है।-' बिना बुलाये कहीं आने-जाने की मेरी आदत है ही नहीं, यद्यपि मैं बखूबी जानता हूँ कि यह आदत अच्छी नहीं है। पर आदत आदत ही तो है। मैं लाचार हूँ।'(87)

8.'प्रणाम की प्रदर्शिनी में' निबन्ध मे निबन्धकार के मन की तीखी

आलोचना' आडम्बरी प्रणाम' पद्धति के प्रति है। घर से निकलते ही परिचितों से' प्रणाम' प्राप्त करते हुए थक गये निबन्धकार को इससे चिढ़ हो गयी है। इसलिए कहा है-'मैं अपने डेरे से काफी दूर निकल आया हुं और ऐसा लग रहा है जैसे आज की शाम किसी प्रणाम की प्रदर्शिनी में घुम रहा होऊँ। अब जी उब गया है और इस प्रदर्शिनी को अधिक देखने की इच्छा नहीं है। यदि आगे बढ़ूँ तो निश्चय है कि दस बीस प्रकार के अभिवादन अभी और देखने को मिलेंगे। पर अब धैर्य जवाब दे रहा है। प्रणाम की प्रदर्शिनी! प्रदर्शिनी नहीं तो और क्या।'(88)

10. 'छोटी बात' में अपनी बात रखते हुए निबन्धकार का कहना है कि मेरी कठिनाई यह है कि मैं कोई चीज छोटी कहकर नहीं टाल सकता।... अगर सारी सृष्टि ही परमाणुमय तो छोटे की अवहेलना कैसे करुँ? वस्तुतः बड़ा है क्या? छोटे का एकत्रीकृत रुप ही तो। इसलिए मुझे लगता है कि छोटे की उपेक्षा में बड़े की उपेक्षा है। अनुभव मुझे बाध्य करता है कि मैं छोटे को नगण्य न समझूं।

मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ मेरे यहाँ आनेवालों का ताता लगा रहता है। हमारे देश में किसी के दरवाजें पर लोगों की भीड़ लगी रहना भी बड़प्पन की निशानी है। इस तराजू पर मैं भी बड़ा उतरता हूँ, यो अपने को बड़ा मानने की भूल मैंने कभी नहीं की।'(89)

11...कहाँ आ गया' में बर्लिन की 38 मंजिली मकान में ठहरा हुआ निबन्धकार कहता है-'बचपन में हम लोरियाँ सुनकर सोते थे। लोरियों की आवाज के साथ हौले-हौले हिलाना भी नींद जल्दी लाने में सहायक होता था। आज अगर कोई गाना या हिलाना शुरु करे तो आयी नींद भी टूट जायगी।... मुझे आदत हो गयी है। मच्छरों को कोरस सुनकर सोने की जीवन एक ऐसे शहर के साथ जुड़ गया जो मच्छरों के लिए विख्यात है।'(90)

डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने निजी-जीवन की बातें अपने ललित निबन्धों के विषयान्तर क्रम में रख दी है। जैसे 1. हरसिंगार 'में-' मैं खोया और हारा हुआ प्रेम पथिक, मुझे दूसरी राह दिखा करके कोई भटकाये क्यों? आज मेरा सब कुछ भस्मसात्प्राय है। हाँ राख गरम है, ऊपर से आँसुओं भरी बरसात पड़ती रही है, तब भी राख गरम है। इस राख को जुड़वाने जाऊँ तो कहाँ जाऊँ? सिवाय इस पूराने हरसिंगार के।'(91)

2. 'साँझ भई में अपने जीवन के चौथेपन की अनुभूतियाँ व्यक्त की है। इस वय में यौवन डूब चला है, सपने सिमट गये हैं जीवन की गति धीमी पड़ गयी है। जीवन का प्रवाह रुक सा गया हैं,। इसलिए कहते हैं-

'शाश्वत यौवन और अमर सौन्दर्य के पुजारी मुझे क्षमा करें, उनका यह स्वप्न सुख भगवान करें जुगों-जुगों तक बना रहें, हमारे लिए तो यौवन मनिवर्ति यातुंतु ही रहा, हमें तो जो जाके आये वह जवानी' सपना ही बनी रही।'(92) और यह भीं कि इसलिए तो कहना पड़ा सो 'साँझ भई' होने में कसर ही क्या रही? प्रेम गलियों का भिखारी बनकर दर दर ठोकर खा रहा है। और स्वार्थ राजा बनकर इतराता फिर रहा है।'(93)

3.'जुमना के तीरे-तीरे' में विद्यानिवास मिश्र संतोषपूर्वक कहते हैं-'मेरी यह चिरपरिचित चिरचलित धार ही बहुत अच्छी है। भले ही उसके दोनों और करील ही करील हो, भले ही उसकी धारा में विरसता की जड़ता हो, भले ही उसकी लीक लहरदार न हो, पर उसके श्यामल रंग के प्रसार में जो सौन्दर्य है मैं उसी पर मुग्ध हूँ। अपने बहुधन्धीपन में मैं इस सौन्दर्य के प्रति अन्धा हो जाऊँ, यह मेरी अपनी चूक है। मैं बीच धार पकड़कर नहीं चलता, यह मेरी अपनी दुर्बलता है।'(94)

4.'बेचिरागी गाँव' में निबन्धकार ने अपने कछार क्षेत्र में बसे गाँव का परिचय दिया है।

5.'पूर्णमदः पूर्णमिदम्' में लिखते हैं कि 'मैं अपने गाँव से जब लौटने को होता हूँ तो दधक्षत का तिलक लगाकर ज्यों ही देहरी के बाहर पैर रखता हूँ, त्यों ही मेरी बूढ़ी दादी अंचल का एक सिरा माथे पर लगाये आगे-आगे दौड़ती जाती है, घड़ा भरके ठीक दायें रखा है कि नहीं, कहीं छूंछी गागर तो मुँह बाये नहीं पड़ी है? अगर पड़ी है, तो उसे तुरन्त औंधा देंगी।'(95) और यह भी कि 'मैं स्वयं ही इस आत्मवंचना का शिकार हूँ। देहात की परितृप्ति भरी जिन्दगी आज मेरे लिए मृग-मरीचिका है, मैं स्वयं शहर के अभाव में पल रहा हूँ और बात ऐसी कर रहा हूँ कि देहात का वकालतनामा मेरे ही नाम लिखा हो।'(96)

6.'तुम चन्दन हम पानी' में निबन्धकार ने अपने बचपन का जीवन सामने रख है-'पाँच छः वर्ष का था, मैं अपने बड़े पितृव्य के पास जाकर चुपचाप बैठ जाता था और उनका महिम्न स्तोत्रपूर्वक चन्दन घिसना देखा करता था।'(97)

7.'मैंने सिल पहुँचाई' निबन्धकार के जीवन के कार्यव्यापारों का परिचय

देने वाला निबन्ध है। इसमें अपने जीवन में किये गये कार्यों का बहुत ही रोचक ढंग से वर्णन करते हुए निबन्धकार ने कहा है कि 'मैं कई सालों से किस्म-किस्म के पार्सल ढो रहा हूँ, किसी की तस्वीर, किसी की वाणी का टेप, किसी की किताबें, किसी के कपड़े, किसी का डिशरैक किसी का चूल्हा, किसी का केशर, किसी की कलम किसी की छूरी पहुँचाता रहा हूँ। हर बार पहुँचाने में देर हुई है, कुछ प्रमाद से और कुछ विवशता से।'(98) और इसी प्रकार परीक्षा की पुस्तिकाएँ, रिसर्च की सिल पहुँचाने की बात की गयी है। इन्होंने स्पष्ट कहा है-'यही क्यों, लगता है, यह पूरी जीवन-यात्रा (उन्तालीस वर्षों की) ही सिल ढोने वाली यात्रा है।'(99)

8.'काहे बिन सून अँगनवा' में अपनी लड़की मिनी का प्रसंग लाकर उसके प्रति प्रगाढ़ वात्सल्य भाव व्यक्त करते हैं-'मेरी लड़की मिनी अभी भी आती जाती है, पर जो लड़की सत्रह वर्षों तक मेरे घर-मन के आँगन की गौरैया बनी निर्भय फुदकती रही, वही लड़की कहती है-बाबूजी, आप मुझे तो पुछते नहीं, अपनी धेवती को ही पुछते हैं, इसने मेरा अधिकार छीन लिया ... मिनी माँ हो गयी है, आमोदिनी से लड़ती है, उसे छोड़कर अपनी ससुराल जाने लगती है तो एकाएक बड़ी हो जाती है, उसकी आँखें अँसुआ जाती है।'(100)

9.'वसन्त एक दुस्वप्न' में निबन्धकार ने अपने निर्वासित जीवन की व्यथा-गाथा सुनाया है। वसन्त का मधुबिन्दु भी इन्हें असह्य पीड़ा पहुँचाता है क्योंकि इन्होंने कहा है-'मुझे लगता है माधव और मार दोनों की मिली-जुली साँठ-गाँठ है कि इस आदमी को न मरने दिया जाये, न जीने दिया जाये। इसे दोनों की सन्धि रेखा पर लटका दिया जाये, इसके मन की मकड़ी के जाले के एक सूत से।'(101)

इन्होंने अपने निर्वासित जीवन को सपने के रूप में प्रस्तुत किया है-'मैं घर से बाहर कर दिया गया हूँ मैं घर से पूछ भी नहीं सकता, क्यों मुझको ही बेच रहे हो, मैं घर के प्रति सबसे वफादार था, इसलिए मैं पूरी तौर से अनुगत था, इसलिए सबसे अधिक तुम्हारे सुख-दुख की चिन्ता करता था इसलिए या मैं कभी मचलता नहीं था चुपचाप चल दिया।'(102)

10.'जीवन अपनी देहरी पर' निबन्धकार के संघर्षपूर्ण निजी जीवन-सम्बन्धी निबन्ध है, जिसमें इनकी रचनाशीलता एवं रचनाकार व्यक्तित्व का परिचय मिलता हैं। इसी तरह दूसरा निबन्ध 11. और'यात्रा अभी शुरू नहीं हुई' भी

इनकी रचनाशीलता का ही परिचय देता है।

12.'मेरे राम का मुकुट भीग रहा है' में अपनी संतान के प्रति मोह की करूणा उमड़ पड़ी है। संगीत के कार्यक्रम में जाकर देर रात तक नहीं लौटने और इसी बीच वर्षा होने के कारण इन्हें लगता है 'आने वाली पीढ़ी पिछली पीढ़ी की ममता की पीड़ा नहीं समझ पाती और पिछली पीढ़ी अपनी संतान के संभावित संकट की कल्पना मात्र से उद्विग्न हो जाती है। मन में यह प्रतीति ही नहीं होती कि अब संतान समर्थ है, बड़ा-से-बड़ा संकट झेल लेगी। बार-बार मन को समझाने की कोशिश करता, लड़की दिल्ली विश्वविधालय के एक कॉलेज में पढ़ाती है, लड़का संकट बोध की कविता लिखता है, पर लड़की का ख्याल आते ही दुश्चिंता होती, गली में जाने कैसे तत्व रहते हैं। लौटते समय कहीं कुछ हो न गया हो और अपने भीतर अनायास अपराधी होने का भाव जाग जाता...।'(103)

13.'कहो कैसा रंग है' में ललित निबन्धकार विद्यानिवास मिश्र ने अपना परिचय ललित निबन्धकार के रूप में स्वयं दिया है

'होली-दिवाली अखबारों के विशेषांक निकालने को लाचार करती है और तब मुझसे माँग होती है-ललित निबन्ध भेज दीजिए, वसन्त आ रहा है।... मैं अपनी बात कहूँ, मैं अपने भीतर कोई रचनाकार होने का दम्भ नहीं पालता, पर दुर्भाग्यवश ऐसी विधा का लेखक हूँ, जिसको लोग कम अपनाना चाहते हैं।'(104)

14.'छितवन की छाँह' में विद्यानिवास मिश्र ने अपने जीवन और व्यक्तित्व सम्बन्धी यथार्थ प्रस्तुत कर दिया है। जैसे-'छितवन की उन्मादिनी सुरभि के साथ इस परिचय का एक कारण है, गन्ध को ही मैं परम तत्व मानता हूँ। बचपन से ही इस पार्थिव तत्व की और मन अधिक दौड़ता रहा है,...।'(105) निबन्धकार ने इसे यौवन के चढ़ाव और उतार का मापदण्ड कह कर दो आत्म कथाएँ प्रस्तुत की है। छितवन की पहली पहचान मरघट जाने के रास्ते पर और दूसरी पहचान अपना गौना कराके लौटते समय-'जेठ के दिन थे, छितवन के गन्ध की मादकता कुछ स्थिर हो चली थी। इसे छितवन में मधुमय बन्धन भरे आनेवाले गृहस्थ जीवन की आधी झलक थी और छितवन में थी उसके स्थिर प्रेम के नीचे बैठी हुई वासना।'(106)

15. 'बर्फ और धूप' में अपनी धारणा स्पष्ट करते हुए निबन्धकार ने कहा है-'मुझे न पश्चिम का पूर्व मुखी होना अच्छा लगता है, न पूर्व का पश्चिममुखी

होना। आत्ममुखी व्यक्ति ही सही माने में दूसरे के प्रति उदार होता है, जिसको स्व जितना ही सही माने में प्रिय होता है, उतना ही वह पर को भी स्निग्ध दृष्टि से देख सकता है।'(107)

16.'अपनी प्रासंगिकता' वस्तुतः निबन्धकार की निजी-जीवन व्यवस्था का चित्र प्रस्तुत करता है। इसमें निजी निवास अर्थात् घर का ही विशेष वर्णन है। इन्हें एक और लगता है कि मैं बेघर हूँ तो दूसरी और यह भी कि बेघर हो ही नहीं सकता हूँ। उदाहरण के लिए-'जरा रूकिए, मैं बेघर कहाँ हूँ, जाने कितने घर मुझे दबाए हुए हैं। कितने घर हैं जो मुझे अदृश्य पाश में बाँधे हुए हैं। मैं निपट घर-पोसु आदमी, बेघर कहाँ हूँगा और उस बेघर करने वाले चरवाहे से आंख मिचौनी खेलकर दौड़ते रहने का जोखिम उठाने वाला नासमझ खिलाड़ी।...मैं संन्यासी नहीं बनना चाहता, मैं लोक सेवक नहीं बनना चाहता, पर एक घर चाहता हूं, जो घर कहीं नहीं हैं। मुझे न भाड़े का घर चाहिए न रैन बेसरा घर चाहिए, न अपने पन के कागजी दावे वाला घर चाहिए, मुझे केवल घर चाहिए'(108)

17. 'मेरा गाँव घर' में निबन्धकार का बचपन का ग्रामीण जीवन बोलता है। उसकी स्मृति ही शहरी जीवन की निरसता और बनावटीपन में सरसता का मधु घोलता है, वास्तविक अस्तित्व को निखारता रहता है। ग्रामीण वातावरण में व्यतीत निजी जीवन का परिचय देते हुए विद्यानिवास मिश्र ने कहा है- हमलोग इस गाँव में जमींदार नहीं थे, पर हमारे बाबा जाने कब से गाँव के मुखिया थे...छुटपन में उन्हीं के साथ खाता-जागता। उनके साथ खेत खलिहान जाता। प्रत्येक खेत का इतिहास वे बताते, प्रत्येक परिवार की कहानी सुनाते। उनके कारण मुझे आदमी में, आदमी की उपजायी हर एक फसल में गहरी दिलचस्पी हुई। शहर में रहकर भी अगर शहरी तटस्थता से उबरा हुआ हूँ, तो बस गाँव में, उस परिवेश में पलने का ही फल है।'(109)

18.-'अभी-अभी हूँ अभी नहीं 19. सदा अनन्द रहे एहिद्वारे' 20.'भरिदेहु गगरिया हमारी' में भी अल्प ही सही, परन्तु निजी-जीवन की बातें समा गयी हैं।

21.-'घान-पान और नीली लपटें विदेश में रहते हुए निबन्धकार को अपनी पत्नी के साथ बीते दिनों के वार्तालाप की चर्चा है तो 22.'हल्दी-दूब और दद्यि-अच्छत' में स्मरण हो आता हैं। दूर्वाक्षतों से सौ बार चूमा गया अपना अतीत जब' तीस पैंतीस कुल कन्याओं की सेना मस्तक से लेकर जानु तक

अपनी उँगलियों से दूब-अच्छत लेकर वय, शक्ति और उमंग के अनुरुप बल लगा-लगाकर एक के बाद एक दबाती जा रही थी। इसी व्यापार को चूमने की संज्ञा देकर गीत उच्चारित हो रहे थे मै चूमने से खीझता जा रहा था; पर भीतर-ही-भीतर मुझे ऐसा लग रहा था कि जैसे दूब-अच्छत के संयोग द्वारा आश्रय हरियाली की शुभ कामना मेरे अंग-अंग को अभिमन्त्रित कर रही हो।'(110)

23.'गाँव का मन' निबन्धकार के ग्राम जीवन एवं शहरी जीवन के अनुभवों से युक्त निजी जीवन सम्बन्धी बहुत अच्छा ललित निबन्ध है। क्योंकि इसमें इन दोनों परिवेशों में रहने की और निजी अनुभूति की सच्चाई सार रुप में प्रस्तुत हो गई है।-'ऐसा गाँव का मन और शहर का सुख-विलास, ऐसी अनढकी सच्चाई की झलक और अपने अत्यन्त आत्मीयों के बीच झूठ के बिना काम न चलने की लाचारी, ऐसी जीवन की पीड़ा और ऐसी मृत्यू के हादसे के बारे में केवल कूतुहल का भाव यह द्वन्द्व मुझे कहीं रहने नहीं देता, जीवन के लिए, हरी धरती के लिए, खुले आकाश के लिए तरसाता रहता है लाल बत्तियों से घुरवाता रहता है और डर दिखाता रहता है तुम्हारी खाल उतार ली जाएगी।'(111)

24. 'दिये बाती का मेल' निबन्धकार के निजी जीवन के कई क्षेत्रों के कार्यव्यापारों का परिचय दे देता है। स्वयं निबन्धकार ने स्वीकार करते हुए कहा हैं-'लगता है कि बाती मिलानी मुझे अभी नहीं आयी, नहीं ही आयी। कभी स्नेह उतरा गया, कभी बाती में स्नेह भिन न सका, कभी दिये में बाती का ठीक सिरा ठीक जगह पर नहीं रख सका। हाँ सब सरञ्जाम ठीक हो तो बाती उकसाने में मैं जरुर प्रवीण था और अब भी शायद हूँ...सत्रह वसन्त बीते, एक बाती मैंने भी मिलायी थी और अत्यन्त मधुर कण्ठों से उलहना सुना था' ललन तुम्हें आवेला मेरवै न बाती! प्यारे, तुम्है बाती मिलानी नहीं आती।'(112)

और अनुभव करते हैं कि वास्तव में'दिया बाती जलाने की मेरी हर कोशिश चुकती ही चली गयी। बचपन में एक बार दीवाली के दिन मैंने का दों की पूरी डेहरी भस्तसात् कर डाली! शादी की बाती मिलाते समय अपनी ही उँगलियाँ जला लीं। 1942 में बलिदान का दीप जलाने की साघ भभककर बुझ गयी। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के 'सबद महल' में साहित्य-साधना का दीप जलाने चलातो महल ही ढह गया।'(113)

इसी प्रकार 25-'डयोढे दर्जे का खातिमा', 26-डेरी बनाम खेती 27-

'मेरी रुमाल खो गयी' 28 नर नारायण 29- 'इकाई बनाम दहाई' और 30 बनजारा मन' इनके निजी जीवन के विभिन्न पक्षों को उभारकर यथार्थ रुप में रख देने वाले ललित निबन्ध हैं।

धर्मवीर भारती ने निजी जीवन की रोमाँचक धड़ियों, संघर्षशील रचना काल के अनुभवों और सामाजिक स्थिति के प्रति अपनी प्रतिक्रियाओं को विषय बनाकर कई ललित निबन्धों की रचना की।

1.-'फूल पाती' में इनके आँगन की गहगहाकर फूल उठी रातरानी बेहद नशीली महक में इन्हें बहाकर ले जाती है। अंधेरे में सुगन्ध की एक लहर आकर अंग-अंग भिगोकर, रोम-रोम सिहराकर फिर लौट जाती है। कई फूल कई बीमारियों में लाभ पहुँचाने वाले होते है तो कई फूल खतरनाक भी हैं। ये सारी बातें इन्होंने पत्र के रुप में प्रस्तुत की है जिसमें इनके निजी जीवन के रंग मिलते हैं। इन्होनें स्वयं कहा है 'मैं तो खुद फूलों में डूब-डूब कर वही हो गया हूँ।'(114)

2.'लाल कनेर के फूल और लालटेन वाली नाव' में इनका साहित्य सर्जक जीवन मुखर हुआ है। इन्होंने कई कहानियों की रचना प्रक्रिया का वर्णन करते हुए कहा है-'मुझे लगाकि यह बिलकुल झूठ बात है कि हम दूसरों के मन को अपने मन से जोड़कर उसे सार्थकता प्रदान करते हैं। वस्तुतः दूसरे का मन शीशे के ग्लोब में बन्द जापानी फूल की तरह होता है जिसे हम शीशे के पार से देखते तो है पर उस तक पहुँचाने का, उसे छुने का कोई तरीका नहीं।... हर आदमी अपने में आबद्ध है, बिलकुल ... दुनिया की कोई भाषा नहीं जो पृथक व्यक्तियों के निगूढ़तम मर्म के बीच वास्तविक सेतु का काम कर सके। कोई भी एक-दूसरे के सामने बेलौस, मुक्त निर्व्याज रुप से खुल नहीं पाता... खुल सकता ही नहीं... फिर लगता है कि कहानी क्यों कही जाये।'(115) इसलिए मन में उपजी कहानियां लिख नहीं पाते हैं। ये कहते हैं 'कहाँ गये लाल कनेर के फूल और कहाँ गयी लालटेन वाली नाव? यहाँ तो सिर्फ रात के ढलते पहर की चटक चाँदनी है और खामोशी है और अथाह अकेलापन है और मैं हूँ।'(116)

3. 'शुक्रतारे वाली शाम' में भी इनकी साहित्य-सृजन सम्बन्धी अपनी अनुभूतियाँ व्यक्त हुई हैं। इनका कहना है कि सृजन के लिए जीवन प्रवाह में स्वय जादू की तरह बंधकर स्थिरता का क्षण ढूँढना पड़ता है क्योंकि 'जब तक वह स्थिरता का क्षण नहीं मिलता हम कला-सृजन नहीं कर पाते। जीवन जीयें

सांस लें उम्र बीतती जाए पर जब तक वे क्षण नहीं मिलते नहीं कर पाते-नहीं कर पाते।'[117] इसमें सर्वथा निजी मधुर क्षणों की सुन्दर अभिव्यक्ति भी होती है। जहाँ संभवतः अपनी पत्नी अथवा प्रेमिका को सम्बोधित करते हैं। अर्थात् इन्हें स्थिरता का क्षण मिल जाता है।

कुबेरनाथ राय ने अपने कई निबन्धों में निजी जीवन को अभिव्यक्ति दी है। प्रायः यथार्थ रुप में अपनें को प्रस्तुत करना, अपने परिवेश को सच्चे स्वाभाविक रुप में रख कर पाठक से अपनत्व बना लेना, इनकी कला की विशेषता है।

1.'सनातन नीम' में इनका विधार्थी जीवन बोलता है। प्राइमरी शिक्षक स्वर्गीय यदुनाथ सिंह का गणित पढ़ाना और उनके कठोर अनुशासन में कष्ट झेलना याद हो आता है। इसलिए कहा है।'पर इस नीम का छाया में घटित होनेवाली कुछ दुःखद स्मृतियाँ भी है।'[118]

2. 'मनियारा' साँप' में अपने स्वभाव का चर्चा करते हुए' मेरा मन बचपन से ही यायावर है। यह अतीत के कजरी वन में प्रायः भटका करता है। वैष्णव संस्कृति और भाव-साधना के प्रति आकर्षण तो मुझे आनुवंशिक रुप में मिला है।'[119] इसलिए'कभी-कभी ऐसा लगता है कि राधा पीछे से कुंकुम मलकर भाग गयी है। मैं उसकी हँसी स्पष्ट सुनता हूँ देवत्व के ये क्षण सदैव नहीं आते। पर कभी-कभी आते हैं। देवता स्वयं प्यार का भूखा है। वह सबके पास जाता है।'[120]

3. 'अवरुद्ध त्रेताः प्रतीक्षारत धनुष' में अपने जीवन की व्यथा पर प्रकाश डालते हुए-'कलकत्ते में पन्द्रह रुपये प्रतिघण्टे के हिसाब से तीन घण्टे सवेरे और पच्चीस रुपये प्रतिघण्टे के हिसाब से दो घण्टे शाम को टयूशन कर के दिन में सिटी कॉलेज ज्वाइन करने वाला और प्रति मास पैंतालीस रुपये अपने छोटे भाई और विधवा माँ को भेजने वाला बलिया जिले का दरिद्र विधार्थी, जो अपने दुर्भाग्य रुपी रावण कें मुँह पर तड़ाक से तमाचा मारने को उद्धत है और पी. एच. डी. का स्वप्न देख रहा है।'[121]

4.'चण्डी-थान' निबन्ध में अपना पुराना मिडिल स्कूल ग्राम जीवन और चण्डी देवी के प्रति निजी धारणाएँ आदि व्यक्त की गयी हैं।

5.'निर्वासन और नीलकण्ठी प्रिया' में अपने मन की इच्छा व्यक्त करते हुए कहा है 'मैं निर्वासन बरदाश्त नहीं कर पाता हूँ। अवश्य मुझे अकेलापन चाहिए जहाँ मैं अपने' स्व' के साथ रह सकूँ... इस ज्वर से, इस निर्वासन से

मैं मुक्ति चाहता हूँ, विराम चाहता हूँ, क्षमा चाहता हूँ। लगता है कि यह ज्वर, यह निर्वासन मेरे 'स्व' को कोल्हू में पेर रहा है-मेरी गाँठ-गाँठ टूट रही है।'(122)

6.'रस आखेटक' निबन्ध में बचपन और कर्मशील युवा उम्र की बातें आयी है। साथ ही यह भी कि 'मैं रस आखेटक हूँ पर मैं क्षणों का आखेट करता हूँ एक प्रगाढ़, लम्बे अनुभव का आखेट करने की सामर्थ्य बीसवीं शती के क्षण भोगी मन को नहीं मिलीं है। एक हलकी मादकता, चेहरे पर उदित होती हुई-चाँदनी-जैसी प्रसन्नता, वेणी के फूलों की गन्ध का झोंका, एक रेशमी नरम स्पर्श इससे अधिक भोगने की सामर्थ्य हम में नहीं।'(123) इसी मनोदशा में इन्होंने अपनी जन्मभूमि में ग्रीष्मावकाश के मास-दो- मास रस भोग किया है।

7. 'देह वल्कल' में अपने जीवन का लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति निर्धारित करके इसके लिए प्रार्थना करते हुए कहते हैं-' जन्मान्तर से मेरा कोई मतलब नहीं। मेरे लिए एक जन्म की तृषा काफी है और वर्षा-नदी झरना किसी से भी मिल जायेगी एक बूँद : और यह तृषा मिट जायेगी ... हाँ। यदि देना ही है तो एक पवित्र शंख दो... तुम्हारे आहवान को इसी शंख के गद्य-गम्भीर स्वर में मुक्त भाव से बेदाम जन-जन बाँटता फिरुँगा...मुझे न तो विराट् से एकाकार होना है, मोक्ष लेना है।'(124)

8. 'नदी तुम बीजाक्षरा' में अपना आक्रोश व्यापकता, विस्तार के विरोधी, भूमान्धातिनी, समुद्र-यात्रा-निषेधक पोथी के प्रति व्यक्त करते हुए कहते हैं- 'एक दिन जब पूज्य पिताजी सोये रहेगे, उनके सिरहाने से अपने छोटे भाई की मदद से वह फटी दीमक लगी किताब निकाल लाऊँगा और आग लगा कर फूँक दूँगा। बस, हिन्दू धर्म शुद्ध हो जायेगा। तब हिन्दू धर्म के लिए एक नयी पोथी लिखनी पड़ेगी और उसे अब बूढ़े पिताजी क्या लिखेंगे उस नयी किताब को मैं लिखूँगा... आखिर मेरी बात भी तो आनी चाहिए, कि आजीवन मैं हाँ, कहारी हाँ का ठेका ही पीछे से भरता रहूँगा।'(125)

9. 'चित्र विचित्र' में वयः सन्धि पर चढ़ी युवा वर्ग की चित्तवृत्ति अंग प्रत्यंग से रति संकेत और अविराम मुद्रा परिवर्तन को देख कर अपना अनुभव बतलाते हैं-'मैं पुरुष, मैं पुरुरवा, मैं इस सारे कपट को जानता हूँ। मैने बाग-बगीचे, घाट-घाट, स्कूल-कॉलेज, राह- बाजार, स्टेशन-सिनेमागृह, जंगल-झाड़, जाग्रत-स्वप्न अनेक अवस्थाओं में इन युगल खंजनों की लीला को भिन्न-भिन्न भूमिकाओं में देखा है।'(126)

10. 'विकल चैत्ररथी' में अपने अंतर्मन का यथार्थ उभार कर रख देते हैं- 'मुझे चाहे जो सजा मिले पर मैं तो जन्म से ही चैत्ररभी हूँ, नाम से, स्वभाव से और निष्ठा से। मैं बार-बार यक्षों के चैत्ररभी उद्यान में कल्पना में जाकर मुझे सुख मिलता है क्योंकि ईश्वर नारी और प्रकृति-इन तीनों में मेरी घोर आसक्ति है।'(127)

11. 'किरण सप्तपदी' में एक पत्नीव्रत को पुरुषों का महान त्याग कहते हुए अपनी स्थिति बतलाया है कि' यद्यपि मेरा नाम परशुराम, हनुमान, भीष्म आदि बड़े-बड़े शरीफों की पाँत में नहीं आता तो भी मैं इस दृष्टि से किसी से कम त्यागी नहीं। परन्तु मैं इस त्याग की क्षति पूर्ति करता हूँ प्रकृति और कविता के माध्यम से, इसी से इस वसन्त-सम्पात के महालग्न के अवसर पर मैंने प्रातः रश्मि की तरुण किरण के साथ यारी बाँधी है।'(128) इसी यारी में इन्होंने फाल्गुन के तरुण किरण का स्वागत किया है। किरण सप्तपदी के विभिन्न चरणों का आत्मीयता पूर्वक वर्णन किया है।

12. 'उत्तराफाल्गुनी के आस पास' में अपने आप को' साठा में पाठा की उक्तिवाली गंगा की कछार का निवासी बतलाते हुए जो दूसरी और उत्तरा फाल्गुनी का अन्तिम पानपात्र मेरे होठों से संलग्न है। क्रोध मेरी खुराक है, लोभ मेरा नयन-अंजन है और काम-भुजंग मेरा क्रीड़ा सहचर है। इनकी ही मैं क्रमशः विद्रोह प्रगति और नवलेखन कहकर पुकारता हूँ।'(129) साथ ही यह आकांक्षा भी कि 'मैं चेष्टा करुँगा कि अपने अन्दर की अमृता कला का आविष्कार करके इस उतराफाल्गुनी-कला को बीस-बाइस वर्ष के लिए अपने अन्तर में स्थिर-अचल कर दूँ, बाहर-बाहर चाहे शरद बहै या निदाध हू-हू करे।'(130)

13. 'अर्द्धरात्रि के राग यज्ञ में कल्पना को योग मानते हुए रामायण महाभारत आदि साहित्य के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करते हैं। यह इसलिए कि इनकी धारणा है-'यदि यह कल्पना-योग नहीं रहता तो मुझे तंग करते, मुझे भीतर-भीतर विकृत और विकलांग कर डालते। इसी कल्पना-योग के सहारे मैं उन अवदमनों के उत्पीड़न से बचा रहता हूँ।'(131)

14. 'जीव हंस की रात्रि प्रार्थना' में निबन्धकार के मनोयोग की वही मुद्रा मिलती है, जिसके आधार पर मैंने कहा है कि रस आखेटक कुबेरनाथ राय, रुप,रस, गंध, राग रंग से भीगे कामान्ध भौंरे की तरह देह वल्कल तक को भेदकर योग निन्द्रा में लीन हो जाते हैं। इस निबन्ध से पुष्ट है कि जब रात्रि

का सम्पूर्ण वातावरण काम-सीत्कार से भर उठती है, काम कक्षों में महासुख का मोती पिघलने की अनुभूति होती है और चेष्टा करने पर भी नींद नहीं आती तब भी निबन्धकार का मन कहता है 'लेटे-लेटे' रात्रि सूक्त का मनन करुँ जिससे मन को मोह विमुख और काम-विमुख करके प्रार्थना की दशा में उद्‌वाहित कर सकूँ, जिससे इस मोह-रात्रि और काम-रात्रि का रुपान्तर कर सकूँ प्रार्थना-रात्रि में।'(132)

15.'गंग गच्छति गंगा' में अपनी एकांत प्रियता का परिचय देते हुए कहते हैं-'यों मेरा स्वभाव भी कुछ ऐसा है कि एकान्त में मुझे बड़ा सुख मिलता है। एकान्त मेरी वामी है। मेरा विश्वास है कि एकान्त से दूध झरता है और झरते दूध का पान कोई योगी, कोई तक्षक, कोई भोगीतो अधिकार पूर्वक करता ही है, मेरे जैसे लोग भी, जिनके ललाट पर जन्म से ही तेल भस्म मिश्रित शनिश्चरी टीका है, मौका मिलने पर छककर पान करते हैं।'(133)

16. 'निषाद बाँसुरी' में अपने आदिम निषाद मन को इस जन्म में भी निषाद युवक और गंगा से अपनत्व बनाते हुए पाकर कहते हैं-किसी जन्म में मैं गंगातीरी निषाद अवश्य था अन्यथा इस नदी के प्रति इतनी मोह-माया, इसमें इतना माँ-जैसा भरोसा और बल क्यों अनुभव करता।'(134) साथ ही यह भी कि' मैं भी इस आदिम निषाद से वंचित नहीं हूँ। मेरी खेती बारी हरबा-हथियार के मध्य वह कृष्णकाय आदिम निषाद अपने को व्यक्त कर रहा है।'(135)

17. 'यह लो अँजुरी भर कामरुप' निबन्ध में निबन्धकार का ग्रामीण जीवन बोलता है। वहाँ का अनुभव बहुत ही सरस है- 'मैं दस से पाँच तक अपने काम में रहता हूँ। तब यह गाँव अस्तीत्वहीन रहता है मेरे लिए। पर ज्योंही साँझ होती है, दो फर्लांग दूर बसा हुआ यह गाँव पास आने लगता है। मैं अपने वातायन से उस पर उतरती बलाकाओं को देखता हूँ।---एक दिन, दो दिन नहीं, लगातार तेरह-चौदह वर्ष से मैं इस गाँव से आती कीर्तन ध्वनि की लोरी सुनते-सुनते निद्रालोक में प्रवेश कर रहा हूँ। (136)

इसके अतिरिक्त कई निबन्धों में आत्मपरक बातें कहीं-कहीं मिल जाती हैं, जिसमें निजी जीवन-सम्बन्धी बातें हैं।

'कामता प्रसाद सिंह' काम' के निबन्ध शीर्षक से ही निजी जीवन से समबद्ध लगते हैं। वस्तुत : इनमें निजी जीवन की बातें ही अधिक हुई है-

1. 'मेरा परिचय' निबन्धकार के कर्म और उसकी यथार्थ स्थिति का ही

परिचायक है। इसमें इनका स्वभाव भी स्पष्ट हुआ है-घुमक्कड़, भुलक्कड, अक्खड़, फक्कड़ बतक्कड, तो ये हैं ही, भोगी, रोगी जो भी हो सकते हैं परन्तु ढोंगी नहीं है।'(137)

2.'मेरा टेबुल' हो या 3.'मेरी जेब' इनके जीवन में धटित घटनाओं का सुरुचिपूर्ण वर्णन ही करता है।

4. 'मेरी पत्नी' और 'मेरा चुनाव' में भी निजी जीवन की कहानी के अतिरिक्त कुछ नहीं है। जैनेन्द्र कुमार ने निजीजीवन सम्बन्धी कुछ ललित निबन्ध लिखा है।

1. 'आप क्या करते हैं। यह प्रश्न इनके साथ जुड़कर इनके जीवन और कर्म को व्यक्त कर जाता है। ये इस प्रश्न का उत्तर बतला जाते हैं कि'मैं भी बात करता हूँ और कभी-कभी तो बहुत बढ़िया बात करता हूँ-सच, आप दयाराम को झूठा न समझें। काम-बेकाम की बातें लिखता भी हूँ-अपने धर में ऐसे बैठता हूँ जैसे कौंसिलर कौंसिल में बैठता है, बच्चों पर नवाब बना हुकूमत भी चलाता हूँ-लेकिन, यह सब करके भी बड़ी आसानी से छोटा आदमी और निकम्मा आदमी बना हुआ हूँ। इससे मुझे कोई दिक्कत नहीं होती।'(138)

2. 'सम्पादकीय मैटर' में जैनेन्द्र कुमार की सम्पादकीय जीवन गाथा है।'पर मैं एडीटर हूँ...मैं कुछ तो हूँ। यानी मैं आत्मा हूँ। अपने को जड़ मानकर नहीं जी सकता और सच पूछा जाय, जो मेरा लेखन अथवा जो मेरा कर्म आत्म अभिव्यक्ति रुप है, वही तो सच और प्रभावक मालूम होता है, नहीं तो सब ढकोसला ही मालूम होता है।'(139)

3.'रामनाथ की बात' में अपने धरेलू जीवन की बातें विस्तार ले लेती हैं-'कैपिटल हूँ इस धर में मैं पति। इससे लेबर' में हुई पत्नी। किन्तु मैं हूँ बेदाम! अतः पत्नी के लिए है केवल शुद्ध काम।'।(140) इसके साथ ही है पति-पत्नी के बीच केवल झगड़ा और सहानुभूति पूर्ण आनन्ददायक व्यवहार।

4.'दही और समाज' में तो दही जमाने के बहाने पति पत्नी के बीच का रोचक संवाद ही दोनों के बीच परिवारिक प्रेम का रस भर देता है। इन्होंने कहा है-'हमारी श्रीमति में जरुर छल है, यही तो बल है। इसी से तो उनके आगे दूध बिचारा दही कैसे न हो रहेगा।'(141)

प्रभाकर माचवे ने भी अपनी व्यंग्यात्मक शैली में निजी बिचारों को निजी अभिव्यक्ति दी है। इनके निबन्धों में ऐसे स्थल बहुत कम है।

1.'घूस' निबन्ध के अंत में कहते हैं- 'अब मेरी यानी हिन्दी के एक गरीब लेखक की आप पाठकों से यही इल्तिजा है कि कुछ लेखकजनों को भी घूस दिया कीजिए। वे आपके भाषण मूफ्त लिख देंगे। फोटो छपा कर जीवनियाँ लिख देंगे। जरूरत पड़ी तो आपकी पत्नी के नाम गद्य-काव्य भी लिख देंगे।'(142)

2.'घुटना टेक निर्वाण' में दक्षिण कोरिया में बौद्ध भिक्षुणियों की तीन वर्षों से चली आ रही घुटनों पर बैठने की साधना का समाचार पढ़ कर निबन्धकार कहता है कि'यह समाचार पढ़कर मेरा पुराना घुटने का दर्द जाग उठा है।'(143)

3.'इदं न मम्' में ही निजी जीवन की बातें विशेष रुप से आयी हैं, परन्तु इसमें व्यक्त यथार्थ पर काफी संदेह होता है। फिर भी बातें ऐसी भी हैं जो इनके लेखकीय जीवन से सम्बद्ध और सत्य हैं। इन्होंने स्वयं कहा है-'बहुत निजी जीवन खोलकर रखने के पक्ष में मैं नहीं हूँ।'(144) और यह बतला जाते हैं कि 'मैं अच्छी तरह जानता हूँ कि मेरे भीतर एक सर्जक भी हैं और एक आलोचक भी। पर मैने कभी भी एक को दूसरे पर हावी नहीं होने दिया। मस्तिष्क और हृदय के सहकार्य और सन्तुलन से ही कला की सृष्टि और उसका रस ग्रहण संभव है।'(145) इससे अधिक निजी जीवन सम्बन्धी बातें इनके निबन्धों में और कहीं नहीं मिल पाती है।

इन्द्रनाथ मदान ने निजी जीवन-सम्बन्धी अपने निबन्धों में वर्त्तमान युगीन समस्याओं का धेराव ही अधिक व्यक्त किया है। 1.' समस्याओं के धेरे में' निबन्ध में कहा है-'यदि समस्या एक हो तो छुटकारा पाने की सोच सकता हूँ लेकिन जब समस्याएँ ही समस्याएँ हों तो अभिमन्यु की तरह इनके चक्रव्यूह में धिर जाने के सिवा और चारा ही क्या है।'(146)

2.'आवाजों के घेरे में' 3.'मशीनों के घेराव में आदि निबन्धों में इसी प्रकार के अनुभवों से परेशान जीवन की प्रस्तुति है। इन्होंने बतलाया है कि 'इनके घेराव के कारण अगर मैं मानवीय और प्राकृतिक संसार से कट कर अकेला और यान्त्रिक हो गया हूँ, तो यही मेरी नियति है। एक छोटा-सा घर और उसमें एक छोटासा व्यक्ति अगर इस तरह बाहर से कटजाने पर विवश है, तो इस बड़ी दुनिया और मानव-नियति क्या होगा, जो दानव आकार के कल-कारखानों से धिरती जा रही है और इन के अधीन होती जा रही है'(147)

4. 'काश मुझे भी आता! में 'मेरी रात की नींद इतनी गहरी नहीं होती जितनी दोपहर के बाद की।...अकेला होने के कारण रात का डर रगों में रच

गया है या शायद इसलिए कि दिन के खालीपन में सोचने के बजाय सोना बेहतर समझता हूँ।'[148] इसी तरह दूसरे निबन्ध 5.' अपना मकान' में अपना मकान बनवा कर भी दुविधा में पड़ना इस उम्र में भी एक साथी की आवश्यकता महसूस करना आदि निजी जीवन की बातों से अधिक कुछ हाथ नहीं लगता है।

6.'सहानुभूति दिखाने पर' ऐसा निबन्ध है जिसमें गुलाब राय के निबन्ध हाथ झारि कै चले जुआरी' की तरह ही कई बार इन्हें सहानुभूति दिखाने का अनुचित कष्ट भोगना पड़ा है।

इस प्रकार कई निबन्धकारों ने निजी जीवन को विषय बनाया है और अन्य विषयों के साथ विषयान्तरित रुप में अपने जीवन के रंग-ढ़ंग, अपने स्वभाव, व्यवसाय और समस्याओं के अति रिक्त अनेक तथ्यों को प्रस्तुत किया है। ऐसे निबन्धों से निबन्धकारों के निजी व्यक्तित्व को समझने में एवं इनकी जीवन शैली जानने में मदद मिलती है।

4. प्रकीर्ण विषयक निबन्ध

ललित निबन्ध विषय-विविधता के साथ विषयान्तर में जाकर समेटे अनेक विषयों का समन्वित गद्य है। इसमें समाहित विषयों की कोई सीमा नहीं होती हैं। ऐसी स्थिति में मात्र तीन-चार शीर्षकों के अन्तर्गत विषयगत अनुशीलन अपूर्ण ही नहीं अत्यल्प भी होगा। इसके विपरीत यदि सभी विषयों को अलग-अलग शीर्षक दिया जाय तो अत्यधिक विस्तार में जाने की आवश्यकता होगी, जो यहाँ असम्भव है। इसलिए इस चतुर्थ अध्याय के चौथे खण्ड में वैसे महत्वपूर्ण विषयों की संक्षिप्त चर्चा प्रस्तुत की जा रही है जिन्हें इसके पूर्व स्थान नहीं मिल सका है।

क) प्रकृति प्रेम-सम्बन्धी निबन्ध

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने' अशोक के फूल' शिरीष के फूल','कुटज', देवदारु' आम फिर बौरा गये। प्रकृति के प्रांगण से श्रद्धा पूर्वक लिया है।ये सभी शीर्षक मानव जीवन के प्रतीक बन गये हैं। इनकी दृष्टि में'इन छोटे-छोटे, लाल-लाल पुष्पों में कैसा मोहन भाव है।... लेकिन पुष्पित अशोक को देखकर मेरा मन उदास हो जाता है।'[149] इसी तरह 'शिरीष के फूल' में निबन्धकार शिरीष के पेड़ को घूप वर्षा, आँधी, लू सहते हुए देखकर इसे पक्का अवधूत मानता है जो वायुमण्डल से रस खींचकर इतना कोमल और कठोर हो सका है। यह गाँधी से लेकर कविन्द्र खीन्द्रनाथ ही नहीं कालिदास जैसे अवधूतों तक

का प्रतीक है जिसके प्रति निबन्धकार की भावाभिव्यक्ति है- 'मैं जब-जब शिरीष की और देखता हूँ तब-तब हुक उठती है-हाय, वह अवधूत आज कहाँ हैं।'(150) वसन्त पश्चमी से पूर्व ही स्मरण होता है-बचपन मे कई बार आम की मंजरी हथेली पर रगड़ी है'(151) क्योंकि ऐसा करने पर विच्छू के डंक का असर नहीं होता है ऐसा बतलाया गया था। ये सम्पूर्ण इतिहास में जाकर अंत में पाते हैं कि आम्रमंजरी उस अचरज का संदेश लेकर आयी है जिसमें मनुष्य, विशाल विश्व और प्रकृति का आश्चर्य भरा हुआ है 'कुटज' एक छोटा सा पेड़, बड़े पत्तों वाला, फूलों से लदा मुस्कुराता हुआ इन्हें अपना परिचय देने के लिए आकर्षित करता है।

यह इतिहास के पन्नों से, अपनी प्रकृति से अपनी अपराजय जीवन शक्ति की घोषणा करता है। अपनी निर्भयता, अपने स्वाभिमान और निः स्वार्थ भाव का परिचय देता है-जीता है और शान से जीता है-काहे वास्ते किस उद्देश्य से? कोई नहीं जानता। मगर कुछ बड़ी बात है। स्वार्थ के दायरे से बाहर की बात है।'(152) देवदारु जरठ, खूँसट सनकीसा लगनेवाला होकर भी आ. द्विवेदी को सुन्दर लगता है, क्योंकि' देवदारु की उर्ध्वशिखा सौरभ मेरे हृदय में एक विशेष उल्लास पैदा करती है

पाषाण की कठोर छाती भेदकर यह देवदारु न जाने किस पाताल से अपना रस खींच रहा है... उर्ध्वलोक की और... कुछ दिखा रहा है।'(153) इसलिए भी कि यह शानदार वृक्ष के बारम्बार कम्पित होने में एक मस्ती है, युग-युगान्त की संचित अनुभूति है 'झूमता है तो ऐसा मुस्कुराता हुआ मानो कह रहा हो मैं सब जानता हूँ, सब समझता हूँ... हजारों वर्ष के उतार चढ़ाव का ऐसा निर्मम साथी दुर्लभ है।'(154)

इस प्रकार आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी प्रकृति में ही मानव का इतिहास, वर्त्तमान जीवन की प्रेरणा और आदर्श के मानदण्ड देखने में अपनी रुचि का परिचय देते है।

प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने 'नागफनी' (कैक्टस) के शौकीन फैशन परस्त वर्त्तमान प्रकृति प्रेमियों के हवाले से इसमें देखी जाने वाली' जिजीविषा' का उल्लेख किया है। इसी के बहाने कमल, शिरीष, बेला, चमेली, जूही की कोमलता और सौन्दर्य के साथ सुगंध की चर्चा में रुचि ली गयी है। कैक्टस को आधुनिक जीवन का अच्छा प्रतीक माना गया है। इसमें विलायती सभ्यता की प्रतिच्छाया

देखकर कहते हैं

''विदेशी फूल चटक-मटकवाली पाश्चात्य सभ्यता के प्रतीक है, जो गुण की चिन्ता नहीं करते, केवल रुप से सबों की बाँध लेने का प्रयास करते है।'(155)

'नागफनी' निबन्ध की तरह 'सदाबहार' निबन्ध में भी वातावरण और परिवेश से अप्रभावित रहनेवाले लोगों के लिए प्रतीक रुपमें इस नाम के पौधे का परिचय दिया है-'यह हमेशा मस्त रहता है, हरा-भरा, ताजा, मौसम के प्रभावों से अछूता। चाहे जाड़े का पाला हो, चाहे आग बरसती धूप, चाहे मूसलाधार वर्षा, इसकी मस्ती में, रुप-रंग में कोई फर्क नहीं पड़ता, सदा हँसता-मुस्कुराता रहता है। दूसरे फूलों या पौधों में साल में एक बार बहार आती है, वह भी कुछ दिनों के लिए। यह तो सदाबहार है।'(156)

डॉ. विद्यानिवास मिश्र अपनी ग्राम्य-प्रियता के कारण प्रकृति की गोद में ही भ्रमण करते हैं ये उल्लास के साथ धीरे-धीरे नष्ट होते प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति क्षोभ भी व्यक्त करते हैं। इनके ऐसे निबन्धों की संख्या कम नहीं है कि सबमें उपस्थित प्रकृति चित्रण और प्रकृति प्रेम का स्वरुप सीमित दायरें में समेटा जा सके। अतः संक्षेप में प्रस्तुत है थोड़ी सी बातें और प्रमुख शीर्षक-

1. छितवन की छाँह 2. हरसिंगार 3. जमुना के तीरे-तीरे 4. धने नीम तरु तले 5. एक धूँट पानी 6. आ जाऊँगी बड़े भोर 7. तमाल के झरोखे से 8. मेरा गाँव घर 9. आँगन का पंछी 10. मैं मधुवन जाऊँगा रे 11. कटहल 12. अग्निरथ 13. शिरीष का आग्रह 14. बर्फ और धूप के अतिरिक्त भी कई निबन्ध।

इन निबन्धों में प्रकृति चटक चाँदनी में खिली सौन्दर्य की मूर्ति अद्भूत रहस्यमयी सृष्टि, अनुराग भरे स्वर की उद्धोषिका, मानव जीवन की संरक्षिका, प्रेरणा के स्रोत आदि कई रुपों में अनायास ही दिख पड़ती है क्योंकि' हरसिंगार के फूल की ढरन ही धैर्य की अन्तिम सीमा है, मान की पहली उकसान है और प्रणय वेदना की सबसे भीतरी पर्त।'(157) जमुना के तीरे-तीरे' चलता हुआ निबन्धकार ने अनुभव किया है'उस किनारे जाता हूँ तो बबूल की छाँह मिलती है, करील के कुंज मिलते हैं और मिलते हैं कुश-परास, आगेरेती और चिलचिलाती धूप या कड़ा जाड़।'(158) वैशाख की धूप में जब महुआ अपना रस टपका कर पात-पात रह जाता है, आम की मंजरी झहरा जाती है, वसन्ती पुष्प रस बांटकर मुरझा जाते हैं। तब भी लेखक ने इस यथार्थ को देखा है कि

'चिलचिलाती धूप और हहकारती लू में नीम झीने फूलों में झूम उठता है।'[159]

धर्मवीर भारती ने तो 'फूल पाती' निबन्ध में प्राकृतिक उत्पादन' फूलों के प्रति अपनी आत्मीयता इतनी जतायी है कि लगता है इनके जीवन का अंग-अंग फूलों से ही अपना प्राप्य वसूल रहा है। इन्होंने कहा भी है-'मुझे भी कभी-कभी लगता है कि मैं समय को फूलों के कलेण्डर में बाँध दूँ। दिशाओं को फूलों की पंखुरियों में बसा दूँ, मन के हर आरोह-अवरोह को और भावना के हर आवेग को फूलों की पर्तों में दबा दूँ और यहाँ निखिल सृष्टि फूलों का जाल बन जाय और मैं इसका रसमर्म पाने के लिए उतना ही आकुल हो उठूँ जितने जायसी...'केहि विधि पावौ भौर होई?'[160]

'लाल कनेर के फूल और लालटेन वाली नाव' निबन्ध की शुरुआत 'अजब सी चाँदनी रात है। बादलों की हलकी झीनी परत और नीचे उमसती हुई धरती, कुछ उजाले, कुछ अंधेरे में खड़ा हुआ आँगन का आम।'[161], पंक्तियों से होकर दूर-दूर तक धने अंधेरे में शांत जल में तैरते हुए नाव और चटक चाँदनी में कटहल की टहनियों पत्तियों को भेदकर पार करती हुई किरण का भी मनोरम दृश्य उत्पन्न करता है।

'शुक्रतारे वाली एक शाम' में इस संध्या का चित्रण कितना सुन्दर है 'गन्धराज और शिरीष के पीछे से घीरे-घीरे शुक्रतारा उठ रहा है। थोड़ी देर बाद वह मेरे आँगन में चमेकगा-कितना प्यारा लगता है अपने छोटे से फूल-बसे धर के आँगन में रजनीगन्धा के फूल जैसे उजले शुक्रतारे का रात भर महकना. ..।'[162],

कुबेरनाथ राय के निबन्ध डॉ. विद्यानिवास मिश्र के निबन्धों की तरह अधिक से अधिक प्रकृति से सानिध्य बनाये रखने वाली हैं। इनका रुप-रस-गंध का ही नहीं आत्मज्ञान और अनुराग का भी स्रोत प्रकृति ही बन गयी है। ऐसे उल्लेखनीय निबन्ध है...

1. सनातन नीम 2. सम्पाती के बेटे? 3. रस आखेटक 4. देह वल्कल 5. हरी-हरी दूब और लाचार क्रोध 6. जल दो स्फटिक जल दो 7. किरण सप्तपदी 8. मुकुलोद्गम 9. कैक्टस वन की नायिका

इन निबन्धों के अतिरिक्त वे सभी निबन्ध जिनका शीर्षक या वर्णित विषय किंतु एवं मास विशेष से सम्बद्ध है। ऐसे निबन्धों की चर्चा आगे इसी क्रम में होगी। ऐसे सभी निबन्धों में प्राकृतिक छटा छितराई हुई मिलती है

जहाँ निबन्धकार कुबेरनाथ राय प्रेम-राग- द्वेष-जीवन का यथार्थ-कल्पना का सुख-संघर्ष की प्रेरणा और विभिन्न मनोभावों के आरोप और मनोवांछित सुख-दुख को अनुभूतिपूर्ण सरस रुचिकर अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं।'

(ख) ऋतु और मास-सम्बन्धी निबन्ध :-

ऋतुओं को विषय बनाने वाले में सर्व प्रथम आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का नाम आता है। इनका ऐसा एकमात्र निबन्ध है-' वसन्त आ गया है।'डॉ. विद्यानिवास ने भी लिखा है।- बसन्त न आवै'

2) साँची कहौं ब्रजराज तुम्हें रतिराज किद्यौ रितुराज कियौ है, जिसमें कहा गया है।'बसन्त पूर्व और पश्चिम दोनों में नवयौवन की मस्ती का प्रतीक माना गया है। रति की भावना का मुदित रुप किसलय, कुसुम, केसर और मधु की ऋतु में अनुबिम्बित हो पाता है।'(163)

3. धनवा पियर भइलें मनवा पियर भइलें'- इसमें आषाढ़, सावन, भादों और अगहन मास का ग्रामीण परिवेश चित्रित है। 4. सदा अनन्द रहे एहि द्वारे में फागुन का वर्णन है। 5. आ जाऊँगी बड़े भोर' इसमें कार्तिक महीना गाँवों में काम काज का महीना बतलाया गया है। जिसमें भोर का वातावरण चित्रित है। 5. वसन्त : एक दुःस्वप्न' और 7. भरि देहु गगरिया हमारी' में एक ही चेतना है 'मुझे फागुन चैत बराबर उदास करते है'(164) 8. अग्निरथ'-जहाँ हिन्दुस्तान का बसन्त महा-दहन है, उन्मोदी गंध से बेखबर अवधूत और झक्कड़ है, घर-पोसू नहीं।

धर्मवीर भारती का ऋतु-सम्बन्धी निबन्ध है-बसन्ती समाचार' जिसमें प्रकृति को राजनीति के साथ जोड़ा गया है। बसन्त का बहार विभिन्न देशों में भिन्न-भिन्न रुपों में मनाने के तरीके वर्णित हैं।

कुबेरनाथ राय के ऐसे ऋतु एवं महीने सम्बन्धी निबन्ध है-1.'रस आखेटक' जिसमें ग्रीष्म ऋतु का ताप और मानव मन में उसके सुबह, शाम और रात्रि में प्रभाव पर चर्चा है।

2. 'चित्र-विचित्र' में शरद शिशिर के आगमन का सुख, उत्तरा फाल्गुनी भी अर्थात्-शरद शिशिर और हैमन्त तीन ऋतुओं का मिलाजुला शीत-ऋतु का वर्णन है।

3. 'जल दो स्फटिक जल दो' पावस किंतु से सम्बन्धित निबन्ध है। साथ ही बसन्त आदि ऋतुओं का भी चित्रण है।

4. 'शरद बाँसुरी और विपन्न मराल' में शरद पूर्णिमा घोडशी रुप धारण करके उपस्थित है।

5. 'उज्जड़ वसन्त और हिपी जलचर' में चित्र-विचित्र बसन्त संन्यास जैसा गांजा की नयी खिल्ली-मलने लगता है।

6. 'मुकुलोद्गम' में विशेष रुपसे वसंत ऋतु के चैत मास और सामान्य रुप से पूरे वर्ष के सभी महीनों की चर्चा है। अंगरेजी और हिन्दी महीनों के नामकरण की व्याख्या भी इसमें मिलती है।

7.'मेध, मण्डुक और आदिम मन' में वर्षा ऋतु का वर्णन है।

8.'मधु माधव पुनः पुनः वसन्त ऋतु सम्बन्धी मनोहर चित्र प्रस्तुत करता है।

9.'पुनः हेमंत की संध्या में दिसम्बर जनवरी मास की ऋतु चर्चा है।

10.'मानस-कूप और कोटर-पिशाच' में जेठ वैशाख मास का वातावरण है।

इस प्रकार हम ऋतु एवं मास सम्बन्धी विषयों को ललित निबन्धों में यत्र-तत्र अपनाया हुआ पाते हैं।

ग) राष्ट्र प्रेम-सम्बन्धी निबन्ध

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध' वसंत आ गया है' में राष्ट्र के कल्याण के लिए नवयुवकों को प्रोत्साहित किया गया है। इसमें राष्ट्रप्रेम की सुगन्ध मिलती है। इसके अतिरिक्त सीधे राष्ट्रप्रेम से सम्बद्ध विषय हैं-(1)' क्या निराश हुआ जाय?' 2)' पण्डितों की पंचायत निबन्धों के कुछ अनुच्छेदों में।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र के ऐसे निबन्ध हैं-1. आहुति दो' आहुति की वेला है 2)' दीपो यत्नेन वार्यताम् 3)' अभी-अभी हूँ अभी नहीं।'

धर्मवीर भारती के (1) ये ठग हटे तो मुसफिर को रास्ता मिल जाय' 2) विकासोन्मुख व्यवस्था : हासोन्मुख आत्मीयता' 3)' पागल होना बुनियादी अधिकार' और 4. शब्द बदले प्रकाश में' निबन्धों में भी राष्ट्र की चिन्ता व्यक्त हुई है।

इस प्रकार अनेक विषय ललित निबन्धकारों ने अपने निबन्धों में समाहित कर लिया है। शरीर के अंगों से लेकर मनोभावों तक साहित्य से लेकर लोक संगीत, विभिन्न राग ही नहीं रंग भी, धर्म- भावनाओं के साथ पूजा स्थलों तक, दैनिक व्यवहार में आने वाले सामानों से लेकर हाट-बाजार तक इसके विषय बनें हैं। मन की मौज में कब कोई निबन्धकार किस विषय से टकरा जायेगा और उसके अवगुणों को उकेर देगा। कब भटकते हुए किस विषय पर रुचि ले

लेगा कहा नहीं जा सकता है। अतः संक्षेप में यही कि धरती से आकाश तक ही नहीं उससे परे की असीम सत्ता तक इसके विषय बनें हैं। ऐसी स्थिति में विषयों की गणना अथवा उसकी किसी निबन्ध में उपस्थिति का आंकलन निश्चय ही स्वतंत्र रुप से पर्याप्त अवसर और स्थान की अपेक्षा रखता है।

संदर्भ-संकेत

सं.	पुस्तक का नाम	लेखक/सम्पादक	पृ. सं.
1.	हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली खण्ड-9	सम्पादक मुकुन्द द्विवेदी	450
2.	”	”	460
3.	”	”	461
4.	अशोक के फूल	ले. हजारी प्र. द्विवेदी	15
5.	”	”	17
6.	”	”	60
7.	खट्टा मिट्ठा	ले. देवेन्द्र नाथ शर्मा	45
8.	आईना बोल उठा	”	81
9.	प्रणाम की प्रदर्शनी में	”	10
10.	”	”	28
11.	”	”	79
12.	छितवन की छाँह	ले. डॉ. विद्यानिवास मिश्र	42
13.	”	”	75
14.	”	”	76
15-	”	”	113
16.	तुम चन्दन हम पानी	”	139
17.	भोर का आवाहन	”	5
18.	तमाल के झरोखे से	”	34
19.	”	”	34
20.	”	”	36
21.	”	”	43
22.	”	”	70

23. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्ध	सम्पादक-भोलाभाई पटेल, रामकुमार गुप्त	89
24. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्ध	सम्पादक- भोलाभाईपटेल रामकुमार गुप्त	107
25. आँगन का पंछी और बनजारा मन	”	82
26. ”	”	116
27. ”	”	121
28. ठेले पर हिमालय	ले. धर्मवीर भारती	43
29. कहनी अनकहनी	”	9
30. कहनी अनकहनी	ले. धर्मवीर भारती	22
31. ”	”	25
32. ”	”	80
33. ”	”	185
34. ”	”	194
35. गन्धमादन	”	39
36. ”	”	84
37. ”	”	112
38. ”	”	153
39. ”	”	160
40. विषाद योग	”	73
41. पर्ण मुकुट	”	19
42. आस पास की दुनिया	ले. कामता प्रसाद सिंह काम	62
43. ”	”	73

44. अशोक के फूल	हजारी प्रसाद द्विवेदी	35
45. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली खण्ड-9	सम्पादक मुकुन्द द्विवेदी	38
46. खट्टा मीठा	देवेन्द्रनाथ शर्मा	11
47. प्रणाम की प्रदर्शनी में	”	38
48. तुम चन्दन हम पानी	विद्यानिवास मिश्र	115
49. ”	”	146
50. ”	”	146
51. ”	”	147
52. भोर का आवाहन	”	3
53. ”	”	2
54. मैने सिल पहुँचाई	”	99
55. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्ध	सम्पादक- भोलाभाई पटेल रामकुमार गुप्त	62
56. गाँव का मन	”	13
57. ”	”	15
58. ”	”	38
59. ”	”	39
60. प्रिया नील कण्ठी	ले. कुबेरनाथ राय	25
61. ”	”	73
62. रस आखेटक	”	41
63. ”	”	45
64. रस आखेटक	ले. कुबेरनाथ राय	47
65. ”	”	180
66. ”	”	190
67. गन्धमादन	ले. कुबेरनाथ राय	105

68. गन्धमादन	ले. कुबेरनाथ राय	107
69. आसपास की दुनिया	ले. कामता प्रसाद सिंह	20
70. ”	”	29
71. ”	”	60
72. ”	”	63
73. सोच विचार	ले. जैनेन्द्र कुमार	179
74. ”	”	181
75. अशोक के फूल	ले. हजारी प्रसाद द्विवेदी	17
76. ”	”	18
77. ”	”	34
78. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली खण्ड-9	सम्पादक मुकुन्द द्विवेदी	448
79. ”	”	454
80. आइना बोल उठा	ले. देवेन्द्रनाथ शर्मा	2
81. ”	”	3
82. ”	”	5
83. ”	”	6
84. ”	”	22
85. ”	”	88
86. आइना बोल उठा	ले. देवेन्द्रनाथ शर्मा	91
87. खट्टा मीठा	”	44
88. ”	”	54
89. प्रणाम की प्रदर्शिनी में	”	23
90. ”	”	37
91. छितवन की छाँह	ले. विद्यानिवास मिश्र	31
92. ”	”	45

93. छितवन की छाँह	ले. विद्यानिवास मिश्र	47
94. ”	”	59
95. तुम चन्दन हम पानी	”	144
96.”	”	148
97.”	”	169
98.”	”	139
99.”	”	143
100. तमाल के झरोखे से	”	38
101. ”	”	73
102. विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्ध	सम्पादक-भोलाभाई पटेल, रामकुमार गुप्त	75
103. ”	”	31
104. ”	”	61
105. ”	”	72
106.”	”	77
107.”	”	91
108.”	”	113
109. गाँव का मन	ले. विद्यानिवास मिश्र	11
110.”	”	80
111.”	”	88
112. आँगन का पंछी और बनजारा मन	83 113	86
114. ठेले पर हिमालय	ले. धर्मवीर भारती	36
115.”	”	41
116. ”	”	44

117. पश्यन्ती	”	56
118. प्रिया नीलकण्ठी	ले. कुबेरनाथ राय	27
119. ”	”	36
120. ”	”	40
121. प्रिया नीलकण्ठी	ले. कुबेरनाथ	68
122. ”	”	112
123. रस आखेटक	”	41
124.”	”	74
125. गन्धमादन	”	25
126. ”	”	70
127. ”	”	119
128. ”	”	124
129. विषाद योग	”	15
130. ”	”	21
131. पर्णमुकुट	”	54
132. पर्णमुकुट	ले. कुबेरनाथ राय	58
133. निषाद बाँसुरी	”	24
134. ”	”	29
135. ”	”	32
136. ”	”	203
137. आस पास की दुनिया	कामता प्र. सिंह काम	9
138. सोच विचार	ले. जैनेन्द्र कुमार	21
139. ”	”	31
140. ”	”	45
141. ”	”	75
142. प्रभाकर माचवे	सम्पादक कमलकिशोर गोयनका	168

प्रतिनिधि रचनाएँ

143. ”	”	181
144. ”	”	204
145. ”	”	205
146. कुछ उथले कुछ गहरे	ले. इन्द्रनाथ मदान	3
147. ”	”	13
148. ”	”	22
149. अशोक के फूल	ले. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	7
150. कल्पलता	”	28
151. ”	”	12
152. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली खण्ड-9	सम्पादक-मुकुन्द द्विवेदी	33
153. हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली खण्ड-9	सम्पादक-मुकुन्द द्विवेदी	41
154. ”	”	42
155. प्रणाम की प्रदर्शनी में	ले. देवेन्द्रनाथ शर्मा	9
156. ”	”	55
157. छितवन की छाँह	ले. डॉ. विद्यानिवास मिश्र	27
158. ”	”	54
159. ”	”	128
160. ठेले पर हिमालय	ले. धर्मवीर भारती	36
161. ”	”	37
162. पश्यन्ती	”	62
163. छितवन की छाँह	ले. विद्यानिवास मिश्र	71
164. गाँव का मन	”	34

पंचम अध्याय

ललित निबन्धकारों की जीवन-दृष्टि

भारतीय सभ्यता-संस्कृति पर आधारित है। इसकी प्रवाह पूर्ण जीवन-धारा ने कई उतार-चढ़ाव पार करने के क्रम में संधर्षों से झागदार लावण्य पायी है। अतः इसमें सत्यं शिवं सुन्दरम् का भाव एक साथ भर गया है। इस भारतीय जीवन-दृष्टि में आज भी अनेक विसंगतियों के बावजूद आशा, विश्वास, प्रेम, सौन्दर्य, सत्य विचार, त्याग, बलिदान, ममता, करुणा, स्वाभिमान, मानवीयता आदि के स्वर लहरा रहे हैं। इस जीवन-दृष्टि में स्वयं को सम्पूर्ण में विलीन कर देने की और सम्पूर्ण को स्वयं में समाहित कर लेने की अदम्य लालसा ही श्रेष्ठ है। समाजवादी विचार का यह प्रकाश पुंज ललित निबन्धों की अमूल्य निधि मानी जायेगी।

1) जीवन–दृष्टि के प्रमुख पक्ष–

व्यक्तित्व-विविधता के अनुसार जीवन-दृष्टि के भी कई पक्ष हो सकते हैं। ललित निबन्धकारों ने मानव जीवन को भिन्न-भिन्न दृष्टि से देखने का प्रयास किया है। इनमें निम्नलिखित प्रमुख जीवन-दृष्टियाँ स्पष्ट होती है।

क) मानवतावादी
ख) यथार्थवादी
ग) आस्थावादी
घ) भोगवादी या उपयोगितावादी
ङ) उत्सर्गवादी
च) समन्वयवादी
छ) आधुनिकतावादी
ज) आदर्शवादी
झ) व्यक्तिवादी
ञ राष्ट्रवादी या समाजवादी
ट) अस्तित्ववादी

जीवन-दृष्टि के ये विभिन्न पक्ष ललित निबन्धों में स्पष्टतः उभरकर सामने आते हैं।

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी मानवतावादी जीवन-दृष्टि रखते हुए मानवता का हनन करना पशुता की निशानी बतलाते हैं। ये कहते हैं 'मनुष्य की पशुता को जितनी बार भी काट दो, वह मरना नहीं जानती।'[1] इसके बावजूद इसमें निहित 'स्व' का बन्धन इसे आदर्शवादी बनाये रखता है। इसी बन्धन के कारण द्विवेदी जी के अनुसार'उसमें संयम है, दूसरे के सुख-दुख के प्रति समवेदना है, श्रद्धा है, तप है, त्याग है... इसलिए मनुष्य झगडे-टंटे को आदर्श नहीं मानता,

गुस्से में आकर चढ़-दौड़ने वाले अविवेकी को बुरा समझता है और वचन मन और शरीर से किये गये असत्याचरण को गलत आचरण मानता है। यह किसी भी जाति या वर्ण या समुदाय का धर्म नहीं है। यह मनुष्य मात्र का धर्म है।'(2)

इस दृष्टि से आ. द्विवेदीजी गाँधीवादी मानववाद के पोषक हैं। इन्होंने गाँधीजी के विचारों को संक्षेप में रखते हुए कहा है- 'एक बूढ़ा था। उसने कहा भी था बाहर नहीं, भीतर की और देखो। हिंसा को मन से दूर करो, मिथ्या को हटाओ, क्रोध और द्वेष को दूर करो, लोक के लिए कष्ट सहो, आराम की बात मत सोचो, प्रेम की बात सोचो, आत्म-तोषण की बात सोचो काम की बात सोचो। उसने कहा था प्रेम ही बड़ी चीज है...।'(3)

इस मानव समाज के ईर्ष्या द्वेष-अत्याचार भरे वातावरण में भी मानवतावादियों को अवधूत बनकर रहना पड़ता है। इस और संकेत है, शिरीष के फूल' देव दारु और 'कुटज' जैसे निबन्ध। निबन्धकार की मान्यता है कि इन विसंगतियों को उसी प्रकार सहना चाहिए जिस प्रकार ये वृक्ष धूप वर्षा, आँधी लू जैसी विरोधी परिस्थितियों को सहते हैं। साथ ही जीवन रस चूस कर सदैव त्याग-बलिदान का परिचय देते हैं।

इन्हीं निबन्धों में अस्तित्ववादी जीवन-दृष्टि के कई सबूत पेश किये गये हैं। इन वृक्षों में अपनी भावना का आरोप करते हुए अपने स्वाभिमान का परिचय देते हैं-'कुटज क्या केवल जी रहा है? वह दूसरे के द्वार पर भीख माँगने नहीं जाता, कोई निकट आ गया तो भय के मारे अधमरा नहीं हो जाता, नीति और धर्म का उपदेश नहीं देता फिरता अपनी उन्नति के लिए अफसरों का जूता नहीं चाटता फिरता, दूसरों को अपमानित करने के लिए ग्रहों की खुशामद नहीं करता, आत्मोन्नति के हेतु नीलम नहीं धारण करता... दाँत नहीं निपोरता, बगलें नहीं झाँकता।'(4)

इनकी दृष्टि में मनुष्य उपकार और अपकार से परे इतिहास विधाता की योजना के अनुसार जी रहा है। इससे किसी को सुखमिल जाय तो कोई बात नहीं। मन को अपने वश में रखकर आडम्बर रहित जीवन जीना ही अच्छा है। मिथ्याचारों से दूर रहकर जीवन जीना वैरागी का जीवन है जिसमें दुख नहीं, सुख ही सुख है।

द्विवेदी जी महान जीवन मूल्यों के प्रति आस्था बनाये रखने और भौतिक वस्तुओं के संग्रह करने की प्रवृत्ति का निषेध भारत की परम्परावादी जीवन

दृष्टि मानते हैं। इनके अनुसार आज भी जब इनकी रक्षा विकट समस्या बन गयी है' उसे देखकर हताशा हो जाना ठीक नहीं है। लोभ मोह, काम-क्रोध आदि विकार मनुष्य में स्वाभाविक रुप से विद्यमान रहते हैं, पर उनको प्रधान शक्ति मान लेना और अपने मन और वुद्धि को उन्हीं के इशारे पर छोड़ देना बहुत निकृष्ट आचरण है।'(5)

जीवन में लाख उपेक्षाएँ सहना पड़े 'अशोक के फूल की तरह किसी का स्वार्थ पूरा न कर पाने के कारण भले ही भूला दिया जाय। समाज का दृष्टिकोण बदल जाय फिर भी मनुष्य को उसी वृक्ष की भाँति अपनी मस्ती में झूमना चाहिए। क्योंकि निबन्धकार ने देखा है कि अनेक परिवर्तनों के बावजूद अशोक का कुछ भी तो नहीं बिगड़ा है। कितनी मस्ती में झूम रहा है। कालिदास इसका रस ले सके थे-अपने ढंग से मैं भी ले सकता हूँ, अपने ढंग से। उदास होना बेकार है।'(6)

इसके अतिरिक्त आ. द्विवेदी राष्ट्रप्रेमी बनकर एक और जहाँ राष्ट्रवादी विचारधारा से ओत-प्रोत होना मानव जीवन का आदर्श मानते हैं वहीं युवा एवं वृद्धों को भी इस और ध्यान देने की प्रेरणा भरते हैं। इनकी मान्यता है जीवन में उत्साह सक्रियता आदि स्वयं ही लाने की चीज है। इसलिए कहा है-'वसंत आता नहीं ले आया जाता है। जो चाहे और जब चाहे अपने पर ले आ सकता है।'(7)

इस प्रकार द्विवेदीजी की जीवन दृष्टि में संघर्ष, सहानुभूति संतोष, निष्पक्षता, सहनशीलता, आस्था और विश्वास, स्वाभिमान, स्वावलम्बन, मिथ्याचारों से दूर रहकर जीवन जीने की कला आदि का जीवन में बहुत बड़ा महत्व है। ऐसा जीवन सार्थक है। ये सारे तत्व आदर्श मानव के जीवन में होते हैं। ऐसे जीवन दर्शन से युक्त मानव ही मानवतावादी बनकर संसार का कल्याण कर सकता है। अवधूत बनकर जीवन जी सकता है। और वह भी मस्ती के साथ। प्रत्येक युग में ऐसे मानव हुए हैं और प्रत्येक युग को ऐसे मानव की आवश्यकता है।

प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा अपने ललित निबन्धों में साइकिल ताला, खिलौना आदिवस्तुओं को उपयोगितावादी दृष्टि से देखते हैं। इससे यह बात तो अवश्य सिद्व होती है कि इन्हें वर्त्तमान अर्थ प्रधान युग में उपयोगितावादी दृष्टि प्रिय है।

ये विचित्र चौंकाने वाली बातें करने के क्रम में जो कुछ कह जाते हैं उसका भी अभिप्राय अनिवार्य और उपयोगी तरीके अपना कर ही जीवन जीने पर बल देना है। जैसे पहरुओं की अपेक्षा रेडियो सेट से यह काम लेना मनोरंजन

और धन की रक्षा करने के अलावा सरकारी व्यय में करोड़ों की बचत करना उपयुक्त होगा। मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना नयी बातों और मानवता को आगे बढ़ाने में उपयोगी है।

इन्होंने बल दिया है कि वर्त्तमान को ही हमें जीना चाहिए'भविष्य की चिन्ता से अपने को परेशान करने से क्या फायदा? जाने तब के लोग, जाने तब की दुनिया।'(8)

वर्त्तमान युग के जीवन-दर्शन में निबन्धकार बतला जाता है कि इस अर्थ प्रधान युग में बडप्पन का मापदण्ड ईमानदारी, प्रतिष्ठा और ऐसे ही आदर्शों को नहीं माना जाता है। मोटर बनाम साइकिल' में मोटरवाले सेठ की ही पूछ होती हुई दिखलायी गयी है साइकिल वाले की नहीं। आज प्रणाम करने की श्रद्धा, भक्ति, अभिवादनशील पद्धति भी मात्र प्रदर्शनी होकर रह गयी है। 'मनुष्य मुँहसे' प्रणाम कहता है पर हृदय से झुकता नहीं, झुकना चाहता नहीं। उसके हृदय में न श्रद्धा है न भक्ति; फिर भी ऊपर से शिष्टता के प्रदर्शन के लिए' प्रणाम' शब्द का उच्चारण कर अपना कर्तव्य पूरा कर लेता है... आज का मनुष्य कोई पाबन्दी नहीं रखना चाहता... आचार में, व्यवहार में, आहार में विहार में। फिर यदि प्रणाम एक ही तरह से किया जाय तो व्यक्ति स्वातंत्र्य की रक्षा कैसे होगी।'(9)

आँखे, दाढी, तक को उपयोगितावादी दृष्टि से देखनेवाला यह निबन्धकार इन्हें भगवान की भूल मान बैठता है। युद्ध के लिए हथियारों के निर्माण पर अन्धाधुंध खर्च की और नजर डालते हुए कहता है-'जितने पैसे विनाश के लिए खर्च किये जाते हैं, उतने निर्माण के लिए खर्च किये जाते तो संसार स्वर्ग से भी आगे निकल गया होता।'(10)

इनकी दृष्टि में आर्थिक मापदण्ड के आधार पर कोई छोटा या बड़ा नहीं है। कबीर की भाँति इन्हें भी' ऊँचे चढ़के देखा तो घर घर एके लेखा' का जीवन सत्य प्राप्त हो गया प्रतीत होता है। इसलिए कहा है।'हम सभी अल्पता से पीड़ित हैं इसी से दुखी हैं। यह और बात है कि किसी की अल्पता एक पैसे तक सीमित है और किसी की लाख तक।'(11)

सौन्दर्य के मामले में भी प्रत्येक व्यक्ति अपनी दृष्टि से सुन्दर है। यह विचार देवेन्द्रनाथ शर्मा के निबन्ध आइना बोल उठा में है। इन्होंने' नागफनी' में स्पष्ट कहा है कि'सभी दृष्टियों से जिसके जीवन की सार्थकता समाप्त हो चुकी

है, उसकी भी जिजीविषा ज्यों की त्यों बनी है।'[12] अर्थात् मनुष्य में असीम जिजीविषा का दर्शन होता है।

मनुष्य के सतत् विकास क्रम में यौवन और वार्धक्य का संधिस्थल मादक और स्वप्निल होता है। परन्तु निबन्धकार ने दूसरी वयः संधि को रेखांकित किया है कि'जीवन में एक ऐसी वयः संधि भी आती है जब राग से विराग और भोग से योग अधिक प्रिय लगने लगता है।'[13] इन्होंने प्रेम को व्यापार न कहकर अपनी यथार्थवादी दृष्टि का परिचय दिया है।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि देवेन्द्रनाथ शर्मा मानव जीवन के प्रति उपयोगितावादी, उपभोगवादी, यथार्थवादी दृष्टिकोण रखते हैं। भाग्यवाद या आदर्शवाद के प्रति इनकी कोई आस्था नहीं है। पारम्परिक मान्यताओं के विपरीत आधुनिक यथार्थवादी दृष्टिकोण ही इन्हें प्रिय हैं। इनका मानना है कि मनुष्य वर्त्तमान को ही व्यवस्थित ढंग से स्वंतत्रता पूर्वक भोगे। स्वयं को सुन्दर और सबके समान सम्पन्न समझे। जीवन के उतार चढ़ाव को यथावत संघर्ष में ही देखे। यही आज की जीवन दृष्टि है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र अध्ययन और अनुभव की दृष्टि से जितने सम्पन्न हैं उतने ही जीवन के प्रति अपना दृष्टिकोण व्यक्त करने में भी समर्थ हुए हैं। इनकी दृष्टि में मानव जीवन की सार्थकता' हरसिंगार' की तरह किसी चातक की पुकार की प्रतीक्षा नहीं करते हुए, किसी चपला के परिरम्भ की चाह नहीं रखते हुए सात्विक प्रेम के लिए बिना राज बाज के केवल त्याग और उत्सर्ग में है। अपना शुभ्र अनुराग दान में, काम की दश दशाओं में सबसे चरम दशा मृत्ति है वहीं प्रेम को पूर्णता मिलती है। कर्म को जीवन में महत्व देनेवाले विद्यानिवास मिश्र सिधाई और सच्चाई को धूर्तता के सामने कमजोर पाकर भी अपने नसीब के कारण अपनाये रखना चाहते हैं। इनकी दृष्टि में सरल, सहज आदर्श जीवन का माँग है।'थोड़ा कमाये, उससे वह थोड़ा ही खर्च करें, थोड़े से मित्र रखे पर बिना किसी प्रतिदान की शर्त बदे, थोड़े से लोगों में रमे-घूमे और थोड़े समय भी जिसके साथ रहे, उनमें और मौंज भर देने की क्षमता रखे, उन थोड़े से लोगों को भी तजने की क्षमता हो पर, बिना मन में तितास लिए हुए क्या इससे अधिक भी चाहने की आवश्यकता है।'[14]? जैसा कि इनके मित्र का सिद्धान्त है।

आध्यात्मिक दृष्टि से भारतीय संस्कार को महत्व देने वाले इस निबन्धकार का विचार है कि 'तत्वत : हमी चन्दन हैं, हमी पानी हैं। हमीं होरसा है, हमीं

कटौरी हैं, जिसमें चन्दन रखा जाता है। हमीं अर्चनीय देवता हैं और हमीं अर्चक भक्त है, पर यह हमारा विस्तार बोध भी तभी जगता है जब हम प्रभु को चन्दन और अपने को पानी मानकर चलते हैं। (15)

राष्ट्रवादी विचारों को जीवन में महत्व देनेवाले विद्यानिवास मिश्र देश प्रेम के लिए आहुति देने का आह्वान करते हैं। राष्ट्र की समृद्धि के लिए सतत् प्रयत्नशील भ्रमरानन्द कहते हैं कि'जिसकी पितृभूमि पर दूसरे काबिज हो जाएँ, उस पुत्र के उत्पन्न होने से क्या लाभ और उसके मरने से ही क्या हानि?(16) भारत और पाकिस्तान के बीच की लड़ाई का संदर्भ उठाते हुए कहते हैं-'सत्य के लिए लड़ो, स्वधर्म के लिए लड़ो।... यह लड़ाई जिस आदर्श के लिए है, वह हमारा है, वह बाहर से नहीं आया है तुम बाहर से हाथ न पसारो।

... इस लड़ाई में मोह क्यों हो, उताप क्यों हो।'(17) हिन्दुस्तान की इस सत्य और न्याय की लड़ाई को सर्वाधिक महत्वपूर्ण बतलाते हुए यह भी प्रेरणा भरते हैं कि 'यह राष्ट्र के अन्तः करण की लक्ष्मी की पूजा का उत्सव है। दीया उसके उपयुक्त जलाओ'(18)

इनके राष्ट्र प्रेम के प्रमाण हैं-देश की ग्रामीण जनता। मिट्टी की सोंधी महक। राष्ट्र की भाषा। पारम्परिक भारतीय जीवन दृष्टि के विभिन्न पहलुओं से युक्त व्यक्तित्व। साहित्य के माध्यम से राष्ट्रहित में योगदान करके अपने आपको तृप्त करने की उत्कट अभिलाषा आदि।

विद्यानिवास मिश्र ग्रामीण जीवन को नगर जीवन से अधिक प्रिय अधिक पोषक और उपयुक्त मानते हैं। यह पूर्व ही बहुत बार कह दिया गया है कि इन्हें गाँवो की संस्कृति में रुचि है। पर्व-त्योहार, गीत-संगीत, रीति-रिवाज, प्रकृति से प्राप्त इनके रग-रग में बसकर यही बतलाते हैं कि जीवन का सुखद, आनन्दप्रद वातावरण गाँवों में है।

इनकी जीवन दृष्टि में सहजता, स्वाभाविकता, कर्मठता मानवीयता, निःस्वार्थ भावना, त्याग आदि ही जीवन को सार्थक बनाने वाले गुण हैं। संक्षेप में भारतीय संस्कार ही जीवन का आदर्श संस्कृति का सार है।

धर्मवीर भारती की दृष्टि सौन्दर्य और प्रेम की और चली जाती है। प्रकृति के फूल-पत्तों, चाँद की चाँदनी, समुद्र की लहरें आदि प्रेमिका के प्रति सात्विक प्रेम का एहसास करा देती है-'जिन्दगी को फूलों से तौलकर, फूलों से मापकर फेंक देने में कितना सुख है।'(19) मानवीय सम्बन्धों के विषय में यह भी कि 'ये

जो सारे सम्बन्ध है, जिन्हें हम संज्ञा और व्याख्या में बाँध सकते हैं-मित्र का, संगिनी का, बहन का, पत्नी का, प्रेमिका का, माँ का, अभिभाविका का-ये सारे इस परिवर्त्तन-प्रवाह में बह जाने वाले सम्बन्ध हैं। इनका अतिक्रमण कर हीं हम जो सम्बन्ध जोड़ते हैं... वह अपने सम्पूर्ण अस्तित्व का दूसरे के सम्पूर्ण अस्तित्व से सम्बन्ध होता है। वह अपने आप हम पर आच्छादित होता है। या... रक्त की बूँद-बूँद में अपने आप प्रस्फुटित होता। प्राणों के स्थान पर वहीं रह जाता है। श्वास प्रश्वास में वहीं संचरित होता रहता है और इसलिए न उसे खोकर हम जीवित रहने की कल्पना ही नहीं कर पाते।'(20)

संक्षेप में यही कि धर्मवीर भारती प्रकृति और मानव के सम्बन्धों के भीतर मजबूत समन्वयकारी सूत्र प्रेम में ही जीवन की सार्थकता मानते हैं। यह प्रेम निश्छल, सात्विक गुणों से आपूरित होकर परमात्मा के साथ आत्मा का संयोग बन जाता है। यह मात्र रुप-रंग और भोग की लालसा से ऊपर जाकर असीम तृप्ति प्रदान करता है। परन्तु उस ऊँचाई तक पहुँचाने में रोमाँस बाधा बन जाता है।

धर्मवीर भारती विभिन्न धर्मों का सम्मान चाहते हैं। ये वर्त्तमान युग के धर्मकर्म में बढ़ती जा रही फूहड़ता, प्रदर्शन, बाह्याडम्बर, अश्लीलता आदि का विरोध 'बतर्ज मेरठ' निबन्ध में करते हैं। सीता, पार्वती, राधा या शकुन्तला के अपमान की रक्षा करके सनातन धर्म के अस्तित्व की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझते हैं।

ये चित में व्याप्त अविश्वास, आशंका, का निराकरण करके स्वस्थ व्यक्तित्व निर्माण पर बल देते हैं। इससे समाज की विसंगतियों को दूर किया जा सकता है। मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाकर ह्रसोन्मुख आत्मीयता को पुनः स्थापित करने का विचार देते हैं। इसमें ही सुन्दर, स्वस्थ, सम्पन्न राष्ट्र के निर्माण की उम्मीद की जा सकती है।

'हम राष्ट्रनिर्माण की बात करते हैं, लेकिन राष्ट्र के निर्माण की जो नींव है, वह है इन्सानी रिश्तोवाली आत्मीयता, जो जनता के मन में सुरक्षा, आश्वासन और मिठास के भाव पैदा करती है।... हमारी संस्कृति की जो महत्वपूर्ण उपलब्धियाँ थी (आत्मीयता पारिवारिकता, मधुरता, इनसानियत) उन्हें अगर हमने नष्ट हो जाने दिया तो फिर वह कभी भी पूरी न हो सकेगी।'(21)राष्ट्र निर्माण की चिन्ता में ये बतला जाते हैं कि शासन, सता, बुद्धिजीवी चिन्तक और मनीषी

ही जागरुक होकर यह कार्य करते हैं।

अतः धर्म को राजनीति से अलग रखकर प्रेम, सहानुभूति पूर्ण भेदभाव रहित जीवन को महत्वपूर्ण माननेवाले धर्मवीर भारती मानव जीवन के लिए आत्मीयतापूर्ण सम्बन्ध, प्रकृति, मानव समाज और राष्ट्रहित में क्रियाशीलता को आवश्यक मानते हैं। इनका दृष्टिकोण मानवतावादी, समन्वयवादी, आस्थावादी और आशावादी है।

कुबेरनाथ राय जीवन के प्रति आस्थावान, निराशा और पराजय के विपरीत उल्लास और विजय, मस्ती और स्वाभिमान को महत्व देनेवाले निबन्धकार हैं। निरसता इनके सामने नहीं फटकती हैं, सरसता का पारावार उमड़ता है। प्रेम और भक्ति, कल्पना और यथार्थ, जीवन सत्य और उसका श्रृंगार सब कुछ एक साथ उपस्थित होकर मानव जीवन का सुखद संसार बना देता है।

इनको 'सनातन नीम' में जीवन शव साधना मात्र दिखता है। इसके फूल में आनन्द और तृप्ति का, इसकी हल्कीगंध में क्षण भर के उल्लास और मुक्ति का एहसास होता है। तात्पर्य यह कि जीवन सुख और दुख दोनों से बना है। इसमें मधुरता और कटुता दोनों है। अतः ये जीवन में दोनों को महत्व देते हैं।

ये जीवन में प्रेम का महत्व समझकर ही, मनियारा साँप 'में राधा के मजीठी प्रेम का स्वरुप दिखलाते हैं और रति का रहस्य खोल देते हैं। सम्पाती के बेटे' में गृध-युग्मों का प्रणय व्यापार देखते हैं। सबसे बड़ी बात यह कि यह सब विशेष आवेश और अवस्था की विशेष अनुभूति मात्र मानते हैं जिसकी माँग मन के अन्दर का व्यक्तित्व करता है'समस्त जीवन दर्शन होने का सामर्थ्य इसमें नहीं है।'(22) इनके अनुसार प्रेम तो सहअस्तित्व में है। सम्पूर्ण का अकेले भोग में वह नहीं मिल पाता है। बल्कि दूसरी अस्मिताओं से संयुक्त करके पारस्परिक भोग में ही यह सम्भव है'एक दूसरे को मुष्टिगत रुप में रखना, एक दूसरे को अधिकृत रखना इसी की परिष्कृत विधा का नाम है प्यार।'(23) अर्थात् नर-नारी के बीच के आकर्षण प्रणय-व्यापार का रसास्वादन और उसमें तृप्ति और आनन्द प्राप्ति का दृष्टिकोण इनकी आदर्श जीवन दृष्टि है।

यही कारण है कि 'देहवल्कल' में निबन्धकार सम्पूर्ण सृष्टि और, नारी-देह में 'नग्न वक्ष' का कवच देखता है। तथा उसके भीतर में रस-रुप नारायण का निवास। इसी शान्तम शिवम अद्धैतम से आत्मीय सम्बन्ध बनाकर प्रणय का पारस्परिक रसभोग करना दार्शनिक-सत्य है। इन्होंने कहा भी-'इस धनमय,

शिश्न योनिमय, रिपुमय जगत् के अन्दर जो कोई भाव, ध्यान या अनुभव हमें धन, शिश्न-योनि और रिपु की क्षुद्र सीमा से ऊपर उठाकर किसी अपेक्षाकृत शुद्धतर अनुभूति की ओर ले जाये... उसे ईश्वरनुभूति की ही एक कोटि माना जाना चाहिए।'(24)

नये कवियों ने जिस सृष्टि को क्रुद्ध ललित, मधुर माहुर, नारी के सर्प फणाकार जधन देश की तरह मोहक, विषाक्त और पूराने कवियों ने कच्चे नरम कदली-खम्भ सी हरित-माँगलिक और मोहक परन्तु निस्सार माना है। निबन्धकार उसका सारा वल्कल भेदकर भीतरी सार- 'ईश्वरानुभूति' प्राप्त करना ही प्रेम का लक्ष्य माना है। इसलिए मैंने पूर्व ही कहा है कि-कुबेरनाथ राय रुप-रस-गंद्य-राग-रंग से भीगे कामान्ध भौंरे की तरह देह-वल्कल तक को भेदकर योग निन्द्रा में लीन हो जाते हैं। यह नये साहित्य का नया अध्यात्म भी हो सकता है। इसे आंगिक स्पर्श की क्षणिक अनुभूति अथवा क्षणबोध के बीच सनातन का अन्तर्भोग कह सकते हैं। जहाँ उपस्थित विद्युत संचार और प्राण शक्ति अभिव्यक्ति की भाषा को निर्गुण, निरंजन बना देती है। रसभोग के इसी दृष्टिकोण को रखकर निबन्धकार ने सम्पूर्ण सृष्टि का रस-आखेट किया है। यही इस रस-आखेटक निबन्धकार का प्राप्य है। प्रेम-प्रणय-व्यापार सम्बन्धी जीवन दृष्टि है। इनके शब्दों में-'मैं तो मन्दजन, मौलिमणि, दुर्विनीत रजोगुणी-तमो गुणी वैष्णव हूँ और ईश्वर को इस से अधिक न कभी जाना, न पहचाना। मुझे तो लगता है कि इतना पर्याप्त है-इसी अनुभव की आरती में अपने रोम-रोम के हजार-हजार हाथों से अपनी सारी आयु के काले-प्रदीपों को जलाकर मरण-पर्यन्त क्या जन्म जन्मान्तर तक करता चलूँ तो बहुत है...राह ही काटनी है न ! तो बैल की तरह कई मन पाथेय की छाँटी ढोने से क्या लाभ? अनुभव का उतना ही पाथेय लो जितना पका सको, खा खिला सको-अधिक का क्या होगा।'(25)

जीवन में पवित्रता और औधड़पन को श्रेय देनेवाले इस निबन्धकार ने'स्व' के संरक्षण, पर का उपकार, अन्तः करण की चिन्ता पर बल दिया है। इन्होंने सनातन हिन्दुस्तानी बोध और भारतीय जीवन दर्शन को आदर्श माना है इसलिए कहा है- 'प्रभु यदि बड़ा बनने का अवसर दें तो बट पीपल बनो, रसाल बनों और यदि नहीं अवसर मिला, तो सन्तोष करके दूब बनो। तुम्हारी लम्बाई-चौड़ाई-मुटाई नहीं, तुम्हारा अन्तः करण, तुम्हारा हृदय, तुम्हारी

महानता का मान दण्ड होगा। परिवेश की चिन्ता न करके अन्तः सत्य की चिन्ता करो। यह है सनातन हिन्दुस्तानी बोध।'[26] क्योंकि यह दूर्वा पददलित और उत्पीड़ित होकर भी ईज्जतदार है। यह साधारण अस्तित्व वाला बनकर भी प्रभु के शीश पर चढ़ती है। यह रोष-क्षोभ से भरकर पैरों को चुभती नहीं बल्कि'स्व' का संसार या वृहत्तर सत्ता के लाभ के लिए लोप करने में सदैव संलग्न रहती है।

इनके अनुसार कल्पना भी यथार्थ से कम उपयोगी नहीं है। जीवन संघर्ष के क्षणो में इसका महत्व और अधिक बढ़ जाता है'जब तक कल्पना है तब तक फाकाकशी में भी मनुष्य मस्त रहेगा, वह भीतर से कभी भी रिक्त नहीं होगा, बिकाऊ नहीं होगा टूटेगा नहीं।'[27]

इस प्रकार सम्पूर्ण ललित निबन्धों में भारतीय जीवन दर्शन को ही मूल रुप से अभिव्यक्ति देना कुबेरनाथ राय का लक्ष्य है। इनकी जीवन दृष्टि में धर्म-कर्म, ध्यान योग, भोग, विस्तार की और ले जाने वाली कल्पना से लेकर भोजन शयन-स्नान ही नहीं घर-परिवार तक के जीवन के आदर्श कण मिल जाते हैं। इन्होंने सर्वत्र विभिन्न धर्मशास्त्रों, साहित्य और इतिहास से पुष्ट जीवन दर्शन के उपयोगी संदर्भों की ही व्याख्या की है। इनकी दृष्टि में यही परम्परागत भारतीय जीवन शैली उचित है। संक्षेप में इतना ही कहा जा सकता है। विस्तार के लिए तो इसका अध्ययन पर्याप्त समय और स्थान की अपेक्षा रखता है। कुबेरनाथ राय के शब्दों में ही यह देख सकते हैं।-'हम भारतीय हैं, अतः हम न तो कोरे भौतिकवादी हैं और न कोरे अध्यात्मवादी। हम भौतिकवाद और अध्यात्मवाद दोनों का सामंजस्य करके चलते हैं और इनके बीच की एक और कड़ी भी है मध्यमा कड़ी, रजोगुण प्रधान कड़ी अर्थात् प्राणवादी और इस प्राणवाद का उत्तराधिकार भी हमें प्राप्त है अपने वैदिक पूर्वजों से।'[28]

कामता प्रसाद सिंह काम की जीवन-दृष्टि अत्याधुनिक परिवेश को परखने में व्यस्त है। इन्होंने हल्के-फुल्के ढंग के विचारों को रखने की कृपा की है। इन्होंने देखा है कि आज का जीवन अस्त-व्यस्त, सुख-सम्पन्नता का भोग करता हुआ केवल धन और लोक प्रशंसा बटोरक जीवन है। जहाँ मनुष्य भ्रष्टराजनीति के भ्रंवरजाल में उलझा है। परिवार आदर्श को ताख पर रखकर कपड़े-गहने और आत्म प्रशंसा में अप्रियवातावरण बनाये हुए है। मित्र अविश्वास और अव्यवस्था को जन्म देते हैं। अनुशासन, मर्यादा आदि की जगह खुशामद, ठगी,

काम निकाल कर चम्पत हो जाने की प्रवृत्तियाँ ले ली हैं। ऐसे निबन्धों में जीवन का आदर्श ढूँढ़ना व्यर्थ है। वर्त्तमान का यथार्थपूर्ण जीवन दर्शन यही है।

चिन्तन और विचार के धनी जैनेन्द्र कुमार की दृष्टि अकर्म में ही कर्म ढूँढने पर बल देती है। इनके निबन्धों में भी यही वर्त्तमान बहुत दूर तक छाया है। आत्मा का हनन करता हुआ वर्त्तमान भोगवादी है। प्रेम के अस्तित्व को पैसा और सुख के साधन दोनों मिलकर खा गये हैं। पति पत्नी के बीच का सम्बन्ध सूत्र कहीं-कहीं थोड़ा-बहुत बचा भी है तो व्यर्थ ही। लालसा और आडम्बर ही प्रभावशाली है। उपयोगिता की दृष्टि समाप्त हो गयी है। अध्यात्म के नाम पर' हरे राम' यही सुनाई पड़ता है।'सुनो, राम के नाम पर तुम्हारा मुँह भूत की तरफ है। उसकी तरफ है जो मर गया, इससे जो नहीं है।'(29)

आदमी दफ्तर में व्यस्त है, घर में शांति नहीं, क्लब ही थोड़ी राहत के लिए मंदिर है-'जीवन समृद्ध हो रहा है। धन बढ़ रहा है। अतः स्वतंत्रता और राजनीति बढ़ेगी और धर्म और संयम को सिमटना होगा।'(30) वर्त्तमान को देखकर भविष्य की ऐसी ही कल्पना संभव है। हाँ' होली' निबन्ध में काम-कामना-ब्रह्मचर्य में एक सत्य यह उदधाटित है कि तीनों उचित हैं। तीनों को महत्व देना ही जीवन की पूर्णता का मार्ग है।'(31)

प्रभाकर माचवे तो वर्त्तमान युग के जीवन को इतना नीचे गिरा हुआ मानते है कि कुत्ता भी अपनी दृष्टि से देखे तो उसे अपनी जीवन-शैली और वर्त्तमान युग के मनुष्य की जीवन शैली में कोई अन्तर नहीं दिखे।

आचार विचार, भेद-भाव, ईर्ष्या-द्वेष, छीना-झपटी, प्रेमातुरता में समानता मिलती है।कुत्ता कहता है -मानव जाति को मैं बड़ा आदर्श समझता था परन्तु वैसी कोई विशेष बात नहीं।'(32)

भ्रष्टाचार-घूसखोरी, निष्क्रियता, राजनीति का गिरा हुआ स्तर यही वर्त्तमान परिवेश है। इसमें जीवन का कोई आदर्श नहीं।

इन्द्रनाथ मदान की दृष्टि में वर्त्तमान मानव जीवन छाया हुआ है। ये विभिन्न समस्याओं से धिरे इस जीवन में बेचैनी महसूस करते हैं। यह भौतिकतावादी वर्त्तमान सभ्यता की देन है। आदमी अपनी सुख-सुविधाओं के सामानों के बीच खो गया है। अपनी आत्मा की पुकार नहीं सुन पाता है। शायद आत्मा पुकारना भी छोड़ चुकी है। बढ़ती हुई आबादी में मानव मूल्यों की परवाह नहीं हो रही है। सहानुभूति का गलत फायदा उठाया जाता है। लोग खुशामद करने और झूठ

बोलने की कला में प्रवीण होते जा रहे हैं। बहानेबाजी कमजोरियों को छुपाने का सहारा बन गयी है।

कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर घर-परिवार के लिए नीतियाँ बताने से आगे नहीं बढ़ते हैं। इनके लिए सुख-शांति पूर्ण जीवन का आधार घरेलू वातावरण में ही है। यहीं जिन्दगी मुसकराती है।

शिव प्रसाद सिंह को वर्त्तमान जीवन और व्यवस्थाएँ सर्वत्र गड़बडी से ग्रस्त, अमानवीय और जीवन को सार्थक बनाने में अक्षम लगी है तो अनुचित नहीं है।'सिस्टर' शब्द की पवित्रता का हनन हो गया है तो कोई आश्चर्य नहीं है क्योंकि उपभोक्तावादी इस समाज से मर्यादावादी जीवन-दृष्टि की अपेक्षा करना भारी भूल होगी। यह वर्त्तमान समाज हर तरह से भोगवादी है।

इस प्रकार ललित निबन्धकारों की जीवन दृष्टि में वर्त्तमान मानव-जीवन मूल्यहीन, मर्यादा हीन होता जा रहा है। आधुनिक चेतना की बेचैनी ने जिन निबन्धकारों को झकझोरा वे इसके प्रति असंतोष व्यक्त करके रह जाते हैं। ऐसे निबन्धकार इसे विडम्बना समझकर आदर्श की बात नहीं करते हैं। दूसरी और आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि ने भारतीय अस्मिता को सामने रखकर आदर्श जीवन के स्वरुप स्पष्ट कर जाते हैं जिससे आज समाज को फिर से बदल डालने की आशा बन्धती है। विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय आदि लोक संस्कृति में अच्छे संस्कार देखकर फिर एक बार इस बेचैन जिन्दगी को सरस, मघुर, उत्कण्ठापूर्ण जीवन शैली अपनाने की प्रेरणा दे देते हैं। कितना अच्छा होता कि हम आज भी अपनी सभ्यता-संस्कृति के गौरवपूर्ण जीवन जीने लगते।

2. अतीत सम्बन्धी जीवन–दृष्टि

ललित निबन्धकारों ने कई निबन्धों में अतीत को झाँककर हमारे पूर्वजों की जीवन शैली का परिचय दिया है। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के अनुसार मानव जब बनमानुष का जंगली जीवन जी रहा था तब सबसे पहले नाखून और दाँत को अस्त्र के रुप में व्यवहार में लाता था। फिर ढेले, पेड़ की डालियाँ आदि का उपयोग करने लगा। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं, निबन्ध के अनुसार यह कुछ लाख वर्षों की ही बात है। लड़ने-झगड़ने और प्रेम पूर्वक रहने की परम्परा भी उतनी ही पूरानी है, इसी प्रकार कुछ वर्षों बाद का इतिहास' आम फिर बौरा गये प्रेम और प्रकृति से प्रेरणा प्राप्त करने का, मदन, कृष्ण, विष्णु आदि देवी-देवताओं की पूजा, ईश्वर के प्रति भक्ति भाव का भी परिचय देता है। ईसवी सन् के

आरम्भ के आस पास धर्म, साहित्य और समाज का विकसित रुप इस बात को पुष्ट करता है कि लोग ईश्वर और मानव ही नहीं प्रकृति के विविध उपादानों से असीम प्रेम रखते थे। तभी ये 'अशोक के फूल' शिरीष, कुटज, देवदारु आदि को कालिदास के साहित्य, काम सूत्र आदि में वर्णित पाते हैं।

आर्यों के संघर्ष एवं इनकी जीजिविषा के प्रणाम पुराणों से लेकर द्विवेदीजी बतला जाते हैं कि हमारा अतीत बनते बिगड़ते रहने के बावजूद महान है। हमारे पूर्वजों में त्याग और बलिदान, संघर्ष और समझौता सब कुछ की कला थी। कुटज की तरह उनमें स्वाभिमान था, अवधूतपन था। भक्तिकाल अमोध महिमाशाली प्रेम के उसी पूराने भाव को पुनः सप्राण बना दिया।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र 'गऊचोरी' की प्रवृत्ति महाभारत के भीष्म तक में दिखाते हैं। चितचोरी में तो कृष्ण बदनाम हैं ही। इन्द्रियों की चोरी युगों-युगों से मानव की प्रवृत्ति रही है। कला प्रेमी कालिदास और बाण के काव्य में बसन्त के पूर्ण विकास का वर्णन तत्कालिक प्रकृति एवं ऋतु-प्रेम के प्रमाण हैं। हमारा अतीत ग्रामीण संस्कृति में पल रहा था, कृषि कर्म और पशुपालन उसका व्यवसाय था।

'मुरली की टेर' इस बात का प्रमाण है। महाभारत काल का जीवन मधुवन में अपने गीतों के साथ आनन्द मनाता था। पुराणों में पर्व-त्योहार में रमा हुआ जनजीवन अपनी पवित्रता एवं भक्ति का परिचय देता है।

भारत का अतीत सत्यं शिवं सुन्दरम् भाव से आपूरित है। श्रम ही इनके रग-रग में सुगन्ध की तरह भरा था और छल-कपट का उतना कोई महत्व नहीं था। आज भी इसलिए अतीत का जीवन-दर्शन आदर्श बना हुआ है।

कुबेरनाथ राय अपने ललित निबन्धों में अतीत को देखते हुए पाते हैं रुप-रस-गन्ध से आपूरित जीवन। जिसमें है प्रेम, सद्भाव, पारस्परिक रस बोध, ईश्वर के प्रति आस्था, देवी-देवताओं के प्रति श्रद्धा-भक्ति आदि कई आदर्श। जिसकी कृषि-संस्कृति सम्पन्न थी, भूमि को उर्वरा शक्ति से पुष्टिकारक अनाज जौ, चना उगते थे।पशु-पालन इतना व्यापक था कि प्रायः दूध-भात की खाध्य-व्यवस्था रहती थी। माँस खाने की भी परम्परा थी। माँसोदन, धृत माँसोदन की चर्चा पुष्टि कारक भोजन के रुप में हुई है। स्नान-ध्यान-भ्रमण सबकुछ का अपना महत्व था। इतिहास पुराण से ये सारे तत्व लेकर कुबेरनाथ राय ने अपने निबन्धों में समाविष्ट किया है। कुछ साहित्य से और कुछ लोक

परम्परा के अवशेषों से प्राप्त हुए हैं। इनका व्यक्तित्व इनके शब्दों में ही व्यक्त है-'रहना धरती पर ही है, परन्तु मनुष्य जन्म की सार्थकता के लिए अतीत के चन्द्रमण्डल और सूर्यमण्डल में...टहल आना भी आवश्यक है।'(33)

अन्य निबन्धकारों के पास अतीत की और झाँकने के लिए अवसर नहीं है। वे अतीत को परम्परा बनाम आधुनिकता के रुप में भले ही उकेर दिये हैं। इसका अर्थ यह नही है कि उन्हें अतीत के प्रति अनास्था ने घेर रखा है अथवा कोई अन्य कारण है। सबसे बड़ी बात यही हो सकती है कि निजी वर्त्तमान जीवन के यथार्थ में ये व्यस्त हैं भविष्य का अनुमान लगाने में दिक् भ्रमित हैं।

संक्षेप में ललित निबन्धकारों की अतीत-सम्बन्धी जीवन दृष्टि के अनुसार अतीत में महिमा मंडित, सुखद-सम्पन्न वातावरण में निरंतर विकसित होने वाला मानव था। उसमें मानवीयता के वे सारे गुणावगुण थे जो सहज-स्वाभाविक माने जा सकते हैं। मुख्य रुप से गुण ही थे जो सहज-स्वाभाविक माने जा सकते हैं। मुख्य रुप से गुण ही अधिक थे इसीलिए आज भी हमारी आत्मा पुकारती है-' वेदों की और लौटो भले ही मस्तिष्क इस निवेदन को स्वीकार नहीं करता है।

3. वर्त्तमान सम्बन्धी जीवन–दृष्टि:–

ललित निबन्धकार 'स्व' की अभिव्यक्ति क्रम में अपने परिवेश और जीवन-व्यवस्था का भी वर्णन करता है। ललित निबन्धकारों ने वर्त्तमान औद्योगिक विकास और सुख-सुविधा के बढ़ते साधनों में जीवन की उर्वरा शक्ति का ह्रास पाया है। वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ मानवीयता के गुणों और जीवन के आदर्शों का क्षय अंकित किया है। कहीं-कहीं भविष्य का अनुमान मिल सकता है, परन्तु उपदेशक प्रवृत्ति का अभाव होने के कारण सुखद जीवन के मार्ग का अन्वेषण करने का भार पाठक पर छोड़ दिया गया है। इन निबन्धों के भीतर से स्वतः स्फूर्त विचार आते हैं, जिसमें मनोवांछित जीवन-दृष्टि मिल जाती है।

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी वर्त्तमान अस्त्र-शस्त्र बढ़ाने वाली प्रवृत्ति में सुख शान्ति का मार्ग ही नहीं पाते हैं। इसे पशुता की निशानी समझते हैं। इसके अहिंसा, प्रेम, सदभाव, त्याग आदि का विकास होना चाहिए। 'नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबन्ध में इन्होंने इस बात पर बल दिया है कि 'मनुष्य मरणास्त्रों के संचयन से, बाह्य उपकरणों के बाहुल्य से उस वस्तु को पा भी सकता है, जिसे उसने बड़े आडम्बर के साथ सफलता नाम दे रखा है। परन्तु मनुष्य की चरितार्थता प्रेम में है, मैत्री में है त्याग में है, अपने को सबके मंगल के लिए

निःशेष भाव से दे देने में है।'(34)

'क्या निराश हुआ जाय 'निबन्ध में चोरी, ठगी, तस्करी और भ्रष्टाचार से भरे वर्त्तमान जीवन में कुछ ईमानदार लोगों को पाकर निराश होने की जरुरत महसूस नहीं करते हैं। वर्त्तमान उतना हेय नहीं है। इन्होंने स्वयं कहा है।-'ठगा भी गया हूँ, धोखा भी खाया है, परन्तु बहुत कम स्थलों पर विश्वासधात नाम की चीज मिली है।... ऐसी घटनाएँ कम नहीं हैं जहाँ लोगों ने अकारण सहायता की है, निराश मन को ढाढस दिया है और हिम्मत बँधायी है।'(35)

इनकी दृष्टि में आज यूरोप के नये विचार हमारे समाज में भयंकर परिवर्तन ला रहे हैं, जिससे असमर्थ, अयोग्य यह समाज लड़खड़ा गया है। यह विचार-विनिमय इसकी मजबूत सांस्कृतिक नींव को नहीं हिला पायेगा। एक भटकाव की विचित्र परिस्थिति भले ही बनाए हुए है। 'पंडितों की पंचायत' भटके हुए लोगों के लिए राह खोजने का अच्छा प्रयास है। द्विवेदी जी वर्त्तमान युवा वर्ग में निरसता देखते हैं। इस निरसता का कुछ-कुछ कारण अभिभावक वर्ग में पाते है। इसलिए वसंत के आ जाने पर भी युवाओं को बेखबर पाते हैं। इसी प्रकार की कई बातें और हैं जिनकी और इनका संकेत है। जैसे-'मैं स्पष्ट देख रहा हूँ कि नाना जातियों और समूहों में विभाजित मनुष्य सिमटता आ रहा है। उसका कोई भी विश्वास और कोई भी नीति रीति चिरंतन होकर नहीं रह सकी है।'(36)

प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा वर्त्तमान को अर्थ-युग मानते हैं। इसलिए जीवन की आवश्यक वस्तुओं- 'साइकिल' खिलौना 'ताला' आदि ही नहीं 'आँख, दाढी' से लेकर विचार, व्यवहार आदि सब में उपयोगिता और उपभोग,धन और समय की बचत पर ही ध्यान देते हैं। इनके अनुसार आज के मनुष्य का मापदण्ड ही धन है। स्वार्थ, चाटुकारिता और अपना उल्लू सीधा करने के विभिन्न तरीके अपना कर सभी इसी को प्राप्त करने में व्यस्त हैं। उदाहरण के लिए-'इस युग में किसी को फुर्सत नहीं कि आप को तब तक बुलावें जब तक आपसे उसका कोई उल्लू सीधा नहीं होता है।'(37)

कैक्टस अर्थात्' नागफनी' की बढ़ती लोकप्रियता देखकर इन्हें लगता है कि आज भारतीय भी विलायती सभ्यता से प्रभावित होकर अंतरंग को गौण और बहिरंग को प्रधान मानने लगे हैं। केवल बाहरी चटक-मटक, रुप के सौन्दर्य मात्र पर ही मुग्ध होने लगे हैं।

आज राजनीति में 'सफेद झूठ' का बोलबाला है। भ्रष्टाचार हजार झूठ को समेटे हुए है। नगर गंदगी से भरे हैं, जहाँ' कृपया गंदा मत कीजिए' का निर्देश कोई आग्रह न होकर व्यंग्य मात्र बन गया है। नगरों में मच्छर सारी सुविधाओं के बावजूद चैन की नींद नहीं सोने देते। यह स्वदेश की वर्त्तमान स्थिति है। विदेशों में ऐसी स्थितियाँ न पाकर जानेवाला लेखक आश्चर्य कर लेता है कि' कहाँ आ गया। आज मानव मूल्यों का इतना ह्रास हो चुका है कि 'प्रेम न हाट बिकाय' का सत्य तराजू के पलड़ों में प्रेम-व्यापार देखकर शर्मिंदा है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र वर्त्तमान को घोर दुर्दिन की घड़ी मानते हैं। जहाँ-आत्मीयता का अभाव है। सहज सरल जीवन का सुख नहीं है। मधुरता विलीन हो गयी है। ईमान-धर्म के स्थान पर धूर्तता राज कर रही है। भारतीय कला के सार तत्व-' भाति 'प्रिय' उभर नहीं पा रहे है। यहाँ मात्र कला के नाम पर 'कला' बच गयी है। लोक-संस्कृति विलुप्त होती जा रही है। जिसमें जीवन की सरसता, जीवन के आदर्श भरे हुए हैं। तात्पर्य यह कि चारो ओर विघटन की स्थिति बनी हुई है। बहुत कुछ जो होना चाहिए, खो गया। भारत की साधना की वर्त्तमान स्थिति के सम्बन्ध में 'मुरली की टेर' निबन्ध में कहा है- 'आज अपनी उपलब्धि में निस्पन्द है क्लान्त है, मूक है, निस्तब्ध है और रंगीन बादलों के बीच भी एक दम रीती है।'(38)

इनके निबन्धों में बार-बार एक ही स्वर गूँजता है। 'सब कुछ गँवा चुका हूँ। हमारे जीवन संघर्ष का विकल्प मात्र पराजय ही रहा' इसलिए इन्होंने लोक संस्कृति के नाम पर साहित्य रचकर आहुति दिया है। यह मानकर कि'हमारी प्रत्येक आहुति एक दीप है...निर्धूम...प्रत्येक कर्म इस दीप के प्रकाश से उज्ज्वल रहे...भीतर को अपने ठीक नीचे जमीन को आलोकित करना है।'(39)

भारतीय संस्कृति पर पश्चिमी सभ्यता का रंग चढ़ रहा है। हिन्दी भाषा पर अंगरेजी रानी शासन कर रही है।

आँचलिक वातावरण का अस्तित्व शहरी आडम्बरों से ढँका जा रहा है। मासूम, निरीह, निर्भय विचरने वाली पक्षियों (गौरेया) बेकसूर मारी जा रही हैं। यह विचित्र ऊहा-पोह की स्थिति बनी हुई है। इस संक्रांति को समझ पाना भी कठिन है। सन्देह और विरोघ, असहयोग और अविश्वास, ऊँच-नीच, अमीर-गरीब का भेद-भाव, पारस्परिक धृणा के इस वातावरण में निबन्धकार डॉ. मिश्र के अनुसार 'आज मानववादी आन्दोलन अपने उस असली स्वरुप

को भूलकर उसे पाने की कोशिश कर रहा है।'(40)

इन्होंने बहुत उपयुक्त कहा है- 'आदमी सिर्फ आदमी के रुप में मूल्यहीन हो गया है... सारे मानवीय रिश्ते अब लेबुलों के बीच कायम होते हैं और लेबुल बदलते ही अपने आप टूट जाते हैं।'(41)

विद्यानिवास मिश्र की वर्त्तमान जीवन सम्बन्धी-दृष्टि के सम्बन्ध में इससे आगे भी कुछ कहना अनावश्यक विस्तार पर जाना प्रतीत होता है।

धर्मवीर भारती वर्त्तमान मनुष्य में अस्तित्वहीन मनुष्य का व्यक्तित्व देख कर महसूस करते हैं इन्हें पात्र बनाकर आज कला सृजन संभव नहीं हो पाता है। फूहड़ता, अश्लीलता और आडम्बर नौजवानों को इतना गुमराह कर गयी है किये देवी-देवाताओं की मर्यादा तक हनन करने के लिए उतारु हो गये हैं। आज चित्त अविश्वास, आशंका और द्विविधा से धिरा हुआ है। इससे राजनीति प्रदूषित हो गयी है। साम्प्रदायिकता लाख व्यवस्थाओं के बावजूद गर्त में समा रही है। चिन्तक और मनीषी भी असमय नींद और तनाव में आकर देश को भीतर से कमजोर कर रहे हैं। पर्यावरण-संतुलन बनाने वाले हाथी आदि जानवरों को मारा जा रहा है। कला, संस्कृति, भक्ति प्रेम सब कुछ इस भौतिकवाद में नष्ट होता जा रहा है। यही कारण है कि धर्मवीर भारती कहते हैं- 'आज अगर हम घृणाभरे शब्दों से उत्पन्न इस सत्ता की प्यासी, चुतुर्दिक फैलती हुई आग को नहीं रोकते तो ये तमाम बड़े-बड़े सिद्धान्तोंवाले शब्द और वैज्ञानिक चमत्कार एक मरती हुई संस्कृति के दर्दनाक खेल बनकर रह जायेंगे।'(42)

कुबेरनाथ राय की वर्त्तमान जीवन सम्बन्धी-दृष्टि समाज के दर्पण-साहित्य से जा टकराती हैं जहाँ देखती है कि' आज का समस्त रति-परक साहित्य एकांगी भाव पर आश्रित है, इसी से वह सम्मोहन (सिडक्शन) और व्यभिचार-मात्र का चित्र देता है।'(43) आज के लोकतन्त्र में विश्वास इतना मर गया है कि सच्चाई की आवाज सार्थक नहीं हो पाती है। इसलिए बृद्धिजीवी वर्ग लाचार होकर क्रोध ही व्यक्त कर सकता है। पूंजीवाद वर्त्तमान गरीबी के श्रम का भोग कर रहा है। खाध्य परम्परा बदल रही है। लोग डब्बाबन्द भोजन के प्रतिउत्साह दिखा रहे हैं। चना जैसे पौष्टिक अनाजों का उत्पादन धट रहा है। नदियों का पानी प्रदूषित हो रहा है। देखा जाय निबन्धकार के शब्दों में 'यमुना जहरीली हो गयी है, वृन्दाविपिन पक्षी गणों की लाशों से सड़ रहा है, व्योम में मृत्यु कीट छाये हुए हैं।'(44)

'हिपी' और ईपी 'दोनों मिलकर ध्वंस की राजनीति चला रहे हैं। भौतिकवाद आत्मा को बन्धक बना लिया है-भोग-विलास मात्र के लिए। राजनीतिक स्थिति यह है कि' राजा से लेकर प्रजा तक सभी उन आदर्शों (संविधान के आदर्श) का अंग- अंग अपनी सुविधा के अनुसार कर रहे हैं। सारा राष्ट्र एक त्रिशंकु की तरह अनिश्चय के वातावरण, अर्थों की युक्तिबाजी के मध्य भकुआ बना खड़ा है।'(45)

धर्म, साहित्य, पेशा भ्रष्टनीति के चंगुल में उलझ कर बेबशी का रोना, गाली-गलौज, जातिवाद-वर्गवाद का संघर्ष भोग रहा है। यह विश्वविख्यात् संघर्ष धर्म और अधर्म, सत्य और असत्य का संघर्ष है। भौतिक सुखवाद में जहाँ अधिक से अधिक सामग्री उत्पादन, संचय और भोग ही आदर्श जीवन-दर्शन का रुप ले रहा है। वहाँ आत्मा और मानवमूल्य गौण पड़ गये हैं। यही कारण है कि नगरजीवन में छीना-झपटी है, नित चीर-हरण है। ग्रामीण संस्कृति से गीत-संगीतमय,-राग-रंग पूर्ण वातावरण लुप्त होता जा रहा है। वर्त्तमान मानव जीवन एक बैचनी महसूस कर रहा है। दौड़ रहा है। बस दौड़ ही रहा है सार के लिए नहीं असार को इकट्ठाकर भोगने मात्र के लिए। यही छटपटाहट कुछ अल्प मात्रा में अन्य निबन्धकारों के ललित निबन्धों में देखी जा सकता है। कामता प्रसाद सिंह काम रोजमर्रा की जिन्दगी में इसी भोगवादी वर्त्तमान जीवन-दृष्टि का परिचय देते हैं। ये राजनीतिक उथल-पुथल और आर्थिक छीना-झपटी का रंग भरते हैं। जैनेन्द्र कुमार वर्त्तमान समाज का छल-बल, धार्मिक उदासीनता, राजनीतिक अव्यवस्था, शहर की और ग्रामीणों का पलायन आदि देख आते हैं। प्रभाकर माचवे असभ्य वर्त्तमान पर व्यंग्याधात कर देते हैं। वाह्याडम्बर पर चोट करते हैं। इतना कहना ही पर्याप्त होगा।

वस्तुतः ललित निबन्धकारों ने वर्त्तमान जीवन के ठीक-ठीक सच्चे स्वरुप को देखने में सफलता पायी है। वर्त्तमान का जब इतिहास लिखा जायगा तब संभवतः ये सारे तत्व ही प्रधान होंगे। विधटनशील, भोगवादी, भौतिकता के प्रति आसक्त, अनास्था, अविश्वास और चरित्रहीनता के बीच पलता हुआ मानव का रुप ही इसका वर्त्तमान है। यही इतिहास बनेगा।

4. परम्परा बनाम आधुनिकता सम्बन्धी चिन्तन :—

प्रस्तुत उपखण्ड में परम्परा बनाम आधुनिकता सम्बन्धी चिन्तन के सम्बन्ध में बहुत कुछ कहना शेष नहीं रह गया है। क्योंकि इससे पूर्व इसकी बहुत चर्चा

हो चुकी है।

यहाँ सम्मिलित रुप में यह बतला देना पर्याप्त समझता हूँ कि ललित निबन्धकारों ने रेखांकित किया है ऐसे मूल भावों और विचारों को, जिसकी परम्परा मानव समाज में सतत् प्रवाहमान थी। आधुनिक युग वैज्ञानिकता और अर्थ प्रधानता, के साथ अतिशय भोग-विलास में खो गया है। इससे आत्मिक, आध्यात्मिक, आस्थावादी, धार्मिक नैतिक आदि मानव-मूल्यों में गिरावट आयी है। ये सारे तत्व ऐतिहसिक सत्य हैं कि मानव जीवन के लिए अत्यन्त उपयोगी रहे हैं इसलिए अध्ययनशील अनुभवी निबन्धकारों ने साहित्य के माध्यम से इन पर प्रकाश डाला है। यह चिन्तन अन्य साहित्य में भी छाया हुआ है। अपने युग के जीवन की विसंगतियों से जब पाँव टकराता है। ठेस लगते ही मानव की चेतना अतीत को स्मरण करने लगती है। ठीक यही बात ललित निबन्धकारों के साथ भी सच है।

भारतीय सभ्यता-संस्कृति को सर्वाधिक प्राचीन मानते हुए यह कहना उचित होगा कि इसकी परम्परागत आदर्शवादी धारणायें ललित निबन्धों में अधिकाधिक स्थान प्राप्त कर सकी हैं। भारत की परम्परा स्वयं समृद्ध है। इसकी सांस्कृतिक विशेषताओं का आकलन करने पर मानव जीवन के लिए उपयोगी मोती के कण सर्वत्र बिखरे मिलते हैं।

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इसी भारतीय परम्परा को इतना समृद्ध, उर्ज्वसित एवं नवजीवन प्रदायक समझा है कि आज की विसंगतियाँ-क्षणिक बाधा मात्र लगती हैं। इन्हें अपनी संस्कृति की नींव पर पूरा भरोसा है इसलिए कहते हैं।-'कम्बख्त नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें, मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा।[46] और यह कि' मनुष्य प्रकृति को अनुकूल बना देनेवाला अदभूत प्राणी है। यह विशाल विश्व आश्चर्यजनक है, पर इसको समझने के लिए प्रयत्न करनेवाला और इसे करतलगत करने के लिए जुझने वाला यह मनुष्य और भी आश्चर्यजनक है।'(47)

कोई एक बाहरी कानून या विचार इसको नहीं हिला सकता क्योंकि इसमें अपूर्व शक्ति और धैर्य है। परिवर्त्तनशील जीवन के झोंके सहने की क्षमता है। द्विवेदीजी के शब्दों में' उसने अपने विराट् परिवर्त्तनशील दीर्धजीवन में क्या-क्या नहीं देखा हैं? कुछ और देख लेने में उसे कुछ भी झिझक नहीं, कुछ भी हिचक नहीं जो लोग इस तेजोमय मूर्ति को नहीं देख सकते वही घबराते हैं मैं नहीं धबरा सकता।'(48)

डॉ. विद्यानिवास मिश्र की सोच पर्व-त्योहारों की और जाती है तो पाते हैं-'भारत में आज मची है होरी' की होली गाने वाले भारतेन्दु के समय में यह रीतापन नहीं था, शिवशम्भु शर्मा के साथ व्रज के कन्हैया की याद करनेवाले बाबू बालमुकुन्द गुप्त के समय में भी नहीं, यहाँ तक कि' वीरों का कैसा हो बसन्त' का साज बाज रंगने वाली सुभद्रा के समय तक में उतना नहीं।'(49)

साथ ही यह भी आज का साहित्यकार 'कुमार सम्भव की उन पंक्तियों को जिनमें पार्वती घड़े से पौधों को ऐसे सींचती है मानो माँ स्तनपान करा रही हो, हब्शीपने को निशानी समझता है, इसलिए वह कोरी रेखाओं के उभार की बात करता है।'(50)

इसी प्रकार के अनेक संस्कारों की परम्परा को आधुनिक संदर्भों में रखकर विद्यानिवास मिश्र बतलाना चाहते हैं कि परम्परा से चली आ रही सोच आज बदल गयी। सोच बदलने से समाज का रुप बदल गया और साथ ही खालीपन आ गया है। अपनी शताब्दियों से अर्जित सम्पति खो गयी है। ज्ञान-आत्मबोध और ध्यान-योग का भंडार किनारे रह गया। आज हम बाहरी सम्पन्नता का दंभ भले भर लें भीतर शून्य है। जिस भारत में प्रेम और सहानुभूति का पारावार उमड़ता था वह अब मात्र मनुष्यों से भरा जंगल है। यहाँ जीवन मात्र एक-दूसरे को छीनता है। उत्तेजनावश लूटता है देता कुछ नहीं। केवल लूटने में ही सारा रस पाता है। निबन्धकार ने उचित ही कहा है अब सब खरीददार हैं, भले ही किसी न किसी दूसरी अदृश्य सत्ता के हाथों पहले से बिके हुए। सब नीलामी की बोली बोल रहे हैं। बिना समझे कि बोली कैसे बोली जाती है।'(51)

इसके बावजूद आज भी हमारे बीच से सारा कुछ एकदम बाहर नहीं हो गया है। बहुत कुछ शेष है जिसके बल पर मानव समाज को बहुत कुछ दे रहे हैं। भारतीय संस्कृति के अवशेष ही आज भी संसार को शांति एव अहिंसा का पाठ पढ़ाता है। विद्यानिवास मिश्र की सोच-'हमारी संस्कृति करी सन्तान परम्परा इसलिए कभी उच्छिन्न नहीं होती, हम शक्ति को पौरुष में नहीं, स्त्रीत्व में, पूर्णत्व में साकार देखते हैं।'(52) तमाम विसंगतियों के बावजूद भीतर से प्रेरित करती रहती है। आधुनिकता के वश में आने से रोकती है।

इन्हें परम्परा बनाम आधुनिकता सम्बन्धी अपना सम्पूर्ण चिन्तन' पत्र इण्टेलेक्चुअल भैया के नाम परम्परा जीजी का निबन्ध में रखने में पूरी सफलता मिली है। यहाँ परम्परा जीजी स्पष्ट कहती है।-'मैंने सुना है तुम मानसिक क्लेश

में हो। आधुनिकता को स्वीकारने की तुम्है ललक है, पर तुम्हारे मन में चोर है कि कहीं वही तुम्है न नकार दे, क्योंकि तुम्हारी जीजी परम्परा है। तुम शपथ खाने के लिए तैयार हो कि मुझे परम्परा से कुछ लेना-देना नहीं, मैं जड़हीन हूँ, पर डर तुम्हें धेरे हुए है कि आधुनिकता कहीं ठुकरा न दे।'(53) इस निबन्ध से ही स्पष्ट हो जाता है कि इनका चिन्तन सम्पूर्ण भटकाव, टूटन, धूटन और वाह्यावरण के तेज से दिक् भ्रमित आधुनिक परिवेश में भी परम्परा के प्रति स्नेह रखने वाला है। परम्परा की मर्यादा कायम रखने की आकांक्षा रखता है।

कुबेरनाथ राय की दृष्टि में साहित्य-रचना की परम्परा आधुनिकता के आवेश में खोती जा रही है। दृष्टिकोण बदलजाने से कई तत्वों की व्याख्या बदल रही है। इनके शब्दों में ''नया कवि मधुर रति को अस्वीकार नहीं करता है परन्तु प्रेम और भावुकता को देखकर' छी, छी' करता रहता है। फलतः उसकी मधुर रति सारे आवेगों एवं गहराई के बावजूद क्षुद्र वासना बन जाती हैं।'(54)

इसी तरह मानवीय भावना है, व्यवहार आदि में जो बदलाव आया है-छिछला, स्वार्थी, अस्तित्वहीन, मर्यादाहीन है। आत्मीयता का इतना लोप हुआ है कि निबन्धकार को संदेह हो जाता है।

'जिस भूमि ने मुझे जन्म दिया है वह रुप-रस-गन्ध से इतनी खाली तो नहीं हो गयी है कि मेरे आखेटक मन को मास -दो-मास का चारा न दे सके।'(55)

इसके बावजूद आशा का बाँध भी नहीं टूटा है। परम्परागत उदान्त रंजक प्रेम का स्मरण बार-बार हो जाता है :-'हो सकता है कि स्मरण करते-करते कन्धे पर रखा हुआ जन्मजात नीरस काष्ठ एक दिन पल्लवित हो उठे।'(56)

इनके अनुसार आज का दुर्दिन यह है कि वृन्दावन की प्रोषित पतिका दृष्टिहीन हो रही है अनुराग का प्रसाद नहीं बाँट पा रही है। और'यमुना में जहर है। पर परास्त होकर मानसर लौटने में ग्लानि और शाप है। मराल विकल है विपन्न है।'(57)

जिस देश में पौष्टिक भोजन दूध-भात, धृत माँसोदन करने वाले सत्तूखोर आर्य की सुदृढ़ खाध्य परम्परा रही है वहीं निबन्धकार महसूस करता है कि आधुनिक युग में यहाँ 'मधु और दूध की तो बात क्या, इस देश से धान्य लक्ष्मी भी रुष्ट है।'(58) जहाँ अति भोजन भोगवादी प्रवृत्तियाँ है, संचय की लोलुपता है। मानवता का मेड़ टूटता ही जा रहा है। ताप्पर्य यह है कि परम्परा के विपरित सारा कुछ चल रहा है। प्रकृति को विज्ञान नष्ट करता जा रहा है। पूरानी सोंच

को नयी संवेदनाएँ टकराकर छोटे-छोटे टुकड़ों में बाँटकर विखराती जा रही है। किसी भी चिन्तक को यही लग सकता है कि' परम्परा आज उस दर्पण के टूकड़ो के समान है जिसकी उपस्थिति साहित्य और इतिहास के पन्नों में तो है पर आधुनिक मानव उसमें अपना अस्तित्व, अपना चेहरा साफ साफ नहीं देख सकता है। अपनी आकृति पूर्णत : विलुप्त भी नहीं हो गयी है, जिसमें कि कुछ भी न दिखे और ऐसी भी नहीं है कि अपने परम्परागत स्वरुप को साफ देख सकें। अजीब सी स्थिति है। इस स्थिति को अभिव्यक्त करने का प्रयास भी असफल है।

ललित निबन्धकारों ने इसे समझने का कुछ प्रयास किया है और अन्य विधाओं के साहित्यकारों के समान ही इसे नैतिकता पर अनैतिकता का विजय, जीवन संरक्षण के स्थान पर विघटन और अनेक ऐसे तथ्य जो मानव-प्रकृति के विरुद्ध हैं। इसके बावजूद थोड़ी सी आशा, थोड़ी शुभ कामना भी इसलिए कि शायद मानव अब भी परम्परागत अस्तित्व को पहचान आधुनिकता की भाग-दौड़ में रुके। पीछे मुड़कर जीवन की बूटी ग्रहण करे।

निष्कर्ष

ललित निबन्धकार वर्त्तमान जीवन-व्यवस्था एवं जीवन शैली के प्रति असन्तोष व्यक्त करते हैं। इनकी दृष्टि में वर्त्तमान वैज्ञानिक-अर्थप्रधान-भोगवादी युग मानवतावादी परम्परा को नष्ट कर रहा है। मनुष्य अपने अस्तित्व का हनन अपने ही हाथों से करने लगा है। यदि यही स्थिति रही तो थोड़ा बहुत शेष मानव-मूल्य भी समाप्त हो जायेंगे। इन्हें पुनः प्राप्त करना कठिन ही नहीं असम्भव होगा। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी आदि निबन्धकार कहते हैं कि ऐसा नहीं होगा, क्योंकि भारतीय संस्कृति की नींव काफी मजबूत है। इसके बावजूद संभव है बुद्धिजीवियों और मनीषियों के साथ यदि सम्पूर्ण समाज सचेत नहीं रहा तो मनुष्य की मानवता मृत प्राय हो जाय।

भविष्य जो भी हो ये निबन्धकार अतीत में डूबकर महिमामंडित संजीवनी लाये हैं। इनका विश्वास है कि हमारा अतीत आदर्श जीवन की विशेषताओं से सम्पन्न है। प्रकृति के अनुकूल सुखद-शांति पूर्ण विकासशील परम्परा को स्मरण करके आज भी उसे अपने व्यवहार में लाया जाय तो आधुनिक जीवन की विंसगतियों से बचा जा सकता है। एक प्रकार से ये निबन्धकार वेदों की और लौटो का संदेश देते हैं।

परन्तु इतनी दूर आकर हजारों वर्षों पूर्व की जीवन-शैली नहीं अपनायी जा सकती है। अतः उसके कुछ अति उपयोगी एवं सरल तत्वों, मनोभावों और विचारों को तो अपनाया ही जा सकता है। इसलिए आज भी ये निबन्धकार प्रेम-सद्भाव, पारस्परिक सहयोग-सहानुभूति आदि बनाये रखने की अपेक्षा रखते हैं। प्राचीन से अर्वाचीन-को अधिक पुष्ट बनाने की कामना करते हैं रस मौलिक सांस्कृतिक विरासत की रक्षा का यही लक्ष्य है। परम्परा बनाम आधुनिकता सम्बन्धी इनके चिन्तन का सार भी यही है।

ललित निबन्धकार स्वाधीन मनः स्थिति में मानवजीवन के विभिन्न पहलुओं से टकराते हुए वर्त्तमान जीवन से असंतुष्ट होकर भी सुखद भविष्य के प्रति आशान्वित हैं। यदि इनके दृष्टिकोण अपनाने में समाज सफल हो तो निश्चय ही अतीत का नवनीत वर्त्तमान और भविष्य को सरस, सुखद एवं शांतिपूर्ण बना सकेगा।

संदर्भ-संकेत

सं.	पुस्तक का नाम	लेखक/सम्पादक	पृ. सं.
1.	कल्पलता	ले. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	7
2.	”	”	10
3.	”	”	10
4.	हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली-खण्ड-9	सम्पादक-मुकुन्द द्विवेदी	33
5.	”	”	447
6.	अशोक के फूल	ले. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	16
7.	”	”	18
8.	खटटा-मीठा	ले. प्रो. देवेन्द्र नाथ शर्मा	45
9.	”	”	55
10.	आइना बोल उठा	”	33
11.	”	”	82
12.	प्रणाम की प्रदर्शनी में	”	7
13.	”	”	67
14.	छितवन की छाँह	ले. डॉ. विद्यानिवास मिश्र	131
15.	तुम चन्दन हम पानी	”	175
16.	मैंने सिल पहुँचाई	”	16
17.	”	”	31
18.	”	”	35
19.	ठेले पर हिमालय	ले. धर्मवीर भारती	33
20.	पश्यन्ती	”	54
21.	कहनी अनकहनी	”	25
22.	प्रिया नीलकण्ठी	ले. कुबेरनाथ राय	72
23.	”	”	79
24.	रस आखेटक	”	72
25.	”	”	73
26.	”	”	184
27.	गन्धमादन	”	113
28.	पर्ण मुकुट	”	22

29.	सोच-विचार	ले. जैनेन्द्र कुमार	165
30.	”	”	182
31.	”	”	267
32.	प्रभाकर माचवे : प्रतिनिधि रचनाएँ	सम्पादक कमल किशोर गोयनका	164
33.	पर्ण मुकुट	ले. कुबेरनाथ राय	56
34.	कल्पलता	ले. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	11
35.	हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली खण्ड-9	सम्पादक-मुकुन्द द्विवेदी	450
36.	अशोक के फूल	ले.आ.हजारी प्रसाद द्विवेदी	40
37.	खट्टा-मीठा	ले. प्रो. देवेन्द्र नाथ शर्मा	44
38.	तुम चन्दन हम पानी	ले. डॉ. विद्यानिवास मिश्र	140
39.	मैंने सिल पहुँचाई	”	35
40.	आँगन का पंक्षी और बनजारा मन	”	120
41.	तमाल के झरोखे से	”	36
42.	कहनी अनकहनी	ले. धर्मवीर भारती	11
43.	प्रिया नीलकण्ठी	ले. कुबेरनाथ राय	39
44.	गन्धमादन	”	96
45.	”	”	116
46.	कल्पलता	ले. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	11
47.	”	”	22
48.	हजारी प्रसाद द्विवेदी	ग्रन्थवली सम्पादक मुकुन्द द्विवेदी	459
49.	छितवन की छाँह	ले. डॉ. विद्यानिवास मिश्र	75
50.	तुम चंदन हम पानी	”	147
51.	विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्ध	सम्पादक भोलाभाई पटेल एवं राम कुमार गुप्त	40
52.	”	”	70
53.	”	”	105
54.	प्रिया नीलकण्ठी	ले. कुबेरनाथ राय	42
55.	रस आखेटक	”	41
56.	गन्द्यमादन	”	85
57.	”	”	94
58.	”	”	160

षष्ठम अध्याय

ललित निबन्धकारों की भाषा-शैली

ललित निबन्धकार प्रायः सर्वत्र सहज प्रवाहपूर्ण भाषा शैली का प्रयोग करते हुए देखे जाते हैं। इनकी भाषा की प्रकृति रोचक है। विचार भाव, कल्पना, यथार्थ सब-कुछ संदर्भ के अनुकूल व्यक्त करते हुए अपने लेखकीय व्यक्तित्व को उभारने में इनकी भाषा-शैली सक्षम होती है। गंभीर तथ्य भी सरल रुप में उपस्थित होकर सुपाच्य हो जाते हैं। जटिलता घुलकर सरल हो जाती है। भाषा में आडम्बर नहीं होकर स्वाभाविकता झलकती है। प्रायः निबन्धकारों की भाषा-शैलीगत विशेषता उनके निबन्धों में निहित लालित्य है। भाषा-शैली के इसी सौन्दर्य ने इन्हें अन्य निबन्धों से भिन्न एवं विशिष्ठ स्थान प्रदान किया है।

विषय एवं विचार विविधता के समान ही एक ही निबन्धकार संदर्भ के अनुरुप अपनी भाषा-शैली का तेवर बदलता हुआ देखा जा सकता है। परन्तु उसकी रूझान सहज वार्तालापीय ढंग की और होती है। व्यक्तिगत विशेषता के अनुसार प्रत्येक निबन्धकार की भाषा-शैली भी एक-दूसरे से भिन्न होती है। इसके बावजूद कुछ समानताएँ रेखांकित की जा सकती हैं। जैसे-आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र एवं कुबेरनाथ राय के निबन्धों की भाषा में संस्कृत निष्ठ भाषा के शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं। धर्मवीर भारती, जैनेन्द्र कुमार, प्रभाकर माचवे आदि के निबन्धों में आज की बोल-चाल की हिन्दी भाषा में घुले-अंगरेजी शब्दों का प्रयोग हुआ है।

तात्पर्य यह है कि अपने अध्ययन-अनुभव और व्यवहार क्षेत्र के प्रभाव के कारण इनकी भाषा-शैली में विभिन्नता आयी है। और इनके ललित निबन्धों में इसकी छाप पड़ी है।

प्रस्तुत अध्याय में इनकी भाषा शैली से सम्बद्ध कुछ मूलभूत विन्दुओं पर विचार किया जा रहा है।

1. शब्द स्त्रोत और शब्द संयोजन

ललित निबन्धकार प्रायः संस्कृत अंगरेजी उर्दू, भोजपुरी आदि क्षेत्रीय बोलियों एवं भाषाओं से प्रायः हिन्दी के लिए सहज व्यावहारिक शब्दों को ग्रहण किया है। कुछ संदर्भों में तथा शब्द चिन्तन-क्रम में ऐसे शब्द भी आये हैं जो सर्व सामान्य के लिए अपरिचित होते हैं। साहित्य और इतिहास के पन्नों से

अनायास उपस्थित ऐसे शब्द रोचक प्रसंग छेड़ देते हैं।

क) संस्कृत-आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र एवं कुबेरनाथ राय के ललित निबन्धों में संस्कृत के शब्द भरे हुए मिलते हैं। ये निबन्धकार कई अनुच्छेदों में संस्कृत साहित्य के कई श्लोकों एवं अन्य पंक्तियों को उद्धरण स्वरुप उद्धृत कर देते हैं।

हजारी प्रसाद द्विवेदी के निबन्ध 'आम फिर बौरा गये' में ही' आम्रमञ्जरी, स्वादु उदुम्बरम्, आताम्रहरित-पाण्डुर, कुज्झटिकाच्छन्न नभोमण्डल, स्वधा (वैदिक शब्द) मृत्तिका, नवाम्रखादनिका आदि संस्कृति शब्दों का प्रयोग देखा जा सकता है। अन्य निबन्धों में भी ऐसे प्रयोग हैं।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र संस्कृत के पंडित हैं। ये भी हजारी प्रसाद द्विवेदी के समान संस्कृत साहित्य से उद्धृत पंक्तियों और संस्कृत के शब्दों को ललित निबन्धों में स्थान देते हैं। साँझ भई निबन्ध में इसके उदाहरण मिलते हैं-

कृष्णाभिसारिणी, मुमुर्ष, वणिग्लक्ष्मी, हरिश्शरणम आदि। कुबेरनाथ राय इन्हीं निबन्धकारों की श्रेणी में आते हैं। सभ्यता संस्कृति की तह तक पहुँचने के क्रम में ये भी संस्कृत शब्दों का सहारा लेते हैं।' चण्डीथान' निबन्ध में उदाहरण के लिए ये शब्द देखे जा सकते हैं। प्रांगण, त्रिपुर, मुखाकृति, आमलक, प्रस्तर खण्ड, गर्भ गृह, लिंग-विग्रह,कामना-दंशित, विगतज्वर हिरणगर्भा आदि।

मुख्य रुप से ये तीन निबन्धकार संस्कृति को अपने ललित निबन्धों का शब्द स्रोत बनाते हैं।

अन्य निबन्धकारों ने भी यत्र-तत्र संस्कृत शब्दों का प्रयोग किया है। परन्तु अत्यल्प ही कहा जायगा। निबन्धों में व्याप्त ऐसे संस्कृत शब्द हिन्दी से तादाम्य स्थापित कर लेते हैं। इन शब्दों के उपयोग होने से अभिव्यक्ति को सबलता सरसता और अर्थगर्भिता प्राप्त हुई है।

ख) अंगरेजी-निबन्धकारों का परिवेश, अध्ययन क्षेत्र और रचना प्रक्रिया में अंगरेजी भाषा का प्रभाव लक्षित होता है। प्राय : सभी निबन्धकार अंगरेजी भाषा के शब्दों का उपयोग यत्र-तत्र करते हैं। ऐसे शब्द हिन्दी भाषा में घुले-मिले होते हैं। उदाहरण के लिए आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी' इण्डीपेण्डेन्स' सेल्फडिपेण डेन्स' आदि शब्दों का अर्थ खोलते देखे जाते हैं।'[1] प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा' मोटर, इंजन, ऐक्सिडेंट'[2] रेलवे क्रासिंग, लाउडस्पीकर आदि शब्दों का व्यवहार करते हैं। डॉ. विद्यानिवास मिश्र' मेरी गोराउण्ड, ब्रेकफास्ट, लंच, मोटर, होटल, मोटल,

ग्रास, हैपनिंग,स्विंग'[3] आदि शब्दों का व्योरा प्रस्तुत करते जाते हैं।

ग) उर्दू-उर्दू शब्दों का प्रयोग अत्यल्प संख्या में हुआ है। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी' खुदा, कमबख्त, मियां, पेशा आदि शब्दों का कहीं-कहीं प्रयोग करते हैं। प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा ने दरख्त, आलापनाह अक्ल जैसे शब्दों का उपयोग किया है।'[4]

घ) भोजपुरी' (क्षेत्रीय भाषा') डॉ. विद्यानिवास मिश्र एवं कुबेरनाथ राय ने ग्रामीण संस्कृति से सम्बन्द्ध ललित निबन्धों में भोजपुरी भाषा से मात्र शब्द ही नहीं बल्कि लम्बे-लम्बे अवतरण, लोक गीतों की पंक्तियाँ मुहाबरे, लोकोक्तियाँ आदि भी ग्रहण किया है। इसके प्रमाण विद्यानिवास मिश्र के' मेरे राम का मुकुट भीग रहा है,' अग्निरथ' आदि निबन्धों में तथा कुबेरनाथ राय के कई निबन्धों में मिल सकते हैं। जैसे' निषाद बाँसुरी'[5] निबन्ध' इन विभिन्न भाषाओं के शब्दों की प्रकृति जटिल नहीं है। सामान्य स्तर का पाठक इनसे परिचित होगा। अतः कोई हिन्दी भाषा के साथ उपयुक्त प्रयोग होनेवाले शब्दों के अतिरिक्त जो शब्द आये हैं। उनका कहीं कहीं अर्थ स्पष्ट कर दिया गया है। कहीं-कहीं शब्द चिन्तन में उनकी व्याख्या भी है।

2. विशिष्ट अभिप्राय गर्भित शब्द

निबन्धकारों ने कुछ शब्दों का ऐसा प्रयोग किया है कि सामान्य अर्थ से भिन्न विशेष संदर्भगत अर्थ प्रदान करते हैं। आ. द्विवेदी के नाखून क्यों बढ़ते हैं' निबन्ध में नख दन्तावलम्बी जीव' का प्रयोग आदिम मानव के लिए किया गया है। जबकि नख दन्त के सहारे जीने वाला जीव इसका सामान्य अर्थ है।' आम फिर बौरा गये 'निबन्ध में' जीवित सर्वस्य' शब्द आया है जो कालिदास द्वारा आम्र कोरकों के लिए प्रयोग किया गया है।' सुवसन्तक' वसन्तावतार के दिन को कहते हैं।' शम्बर', सम्बर' साबर या शाबर उस असुर के लिए भागवत पुराण में प्रयुक्त है जो'यातु धान' अर्थात् इन्द्रजाल या जादू विधा का आचार्य था।' शाबरोत्सव' कालिका पुराण में वर्णित ठीक उसी प्रकार का उत्सव है जैसा' मदनोत्सव' क्योंकि शाबरोत्सव में भी गाली-गलौज अश्लील ढंग से वेश्याएं देती थी। गोधूम लता' का अर्थ गायों के मच्छर भगाने के लिए घुआँ पैदा करने के काम आने वाला पौधा है, जिसका तात्पर्य गेहूँ हो गया।

अशोक के फूल' निबन्ध में बतलाया गया है कि गंधर्व एवं कंदर्प काम देवता के ही नाम के पर्याय हैं। भारत वर्ष को ही रवीन्द्रनाथ ने एक दूसरा

नाम' महामानव समुद्र' दिया है, क्योंकि यहाँ असूर, आर्य हूण नाग, गंधर्व आदि अनेक जातियाँ निवास की हैं।

यक्षों और गंधर्वों के देवता-कुबेर, सेाम, अप्सराएँ पूराने साहित्य में अपदेवता माने गये हैं। महाभारत में सतानार्थिनी स्त्रियों की कामना पूरी करते हुए, विलासी, उर्वरता जनक बतलाये गये हैं।

'कुटज' निबन्ध में हजारी प्रसाद द्विवेदी' नाम' शब्द का अर्थ उस' नाम' पद से लेते हैं, जिसमें समाज की मुहर लगी होती हैं। आज जिसे' शोशल सैक्सन' कहा जाता है।-समाज द्वारा स्वीकृत इतिहास द्वारा प्रमाणित, समष्टि-मानव के चित्त में स्नात।

'कुटज' का अर्थ एक छोटा सा शानदार वृक्ष है। परन्तु द्विवेदी जी ने इसके कई अर्थ एक साथ रख दिया है। कुटज कहना अधिक अच्छा होता क्योंकि यह गिरिकूट पर उत्पन्न हुआ है। संस्कृत में कूटज, कूटज और कुटच तीनों रुप मिलते हैं।' कूटज' का अर्थ कूट' (घड़ा) ज (जन्मलेने वाला) अर्थात् घड़ा से जन्म लेनेवाला भी होता है। अगस्त्य मुनि इसलिए 'कूटज' कहै जाते है। कुट घर को भी कहते है। इसलिए घर में काम करनेवाली दासी कुटकारिका और कुटहारिका कही जा सकती है। गलत ढंग की दासी' कुटनी' और संस्कृत में' कुट्टनी' कही जाती है।' कुटच' सम्भवतः आग्नेय परिवार की भाषा का शब्द है।'[6] इसी से कुटिया, कुटीर भी बने हैं।

'देवदारु' का अर्थ देवता का काठ पुराना नाम देवदारु अर्थात् देव भी और तरु भी होने की संभावना व्यक्त की गयी है।

'लगना' शब्द भी संदर्भ और विस्तार के आधार पर भिन्न-अर्थ रखता है। जो सबको लगे तो कवि, एक को लगे पर सबको नहीं तो पागल। एक सार्थक है दूसरा निरर्थक।

प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा के निबन्ध मुण्डे-मुण्डे मतिर्भिन्ना में 'विश्वनिन्दक' शब्द का विशिष्ट अर्थ संसार की सभी वस्तुओं की निन्दा करने वाला है।भले ही उन वस्तुओं में गुण ही गुण क्यों न हो।' प्रणाम की प्रदर्शनी में 'निबन्ध में' प्रणाम' का अर्थ अच्छी तरह झुकना और 'दंडवत प्रणाम' का अर्थ जमीन पर सुलाये दंड की तरह पेट के बल लेटकर जमीन पर नाक रगड़ते हुए आदर और श्रद्धा के साथ प्रणाम कहना है। इसी तरह-ताला लगाना' वस्तुओं को चोरों से नहीं सज्जनों से बचाना है, ऐसे कई विशिब्ट अर्थ बोधक शब्दों का

प्रयोग हुआ है। विचित्रता उत्पन्न करने वाले देवेन्द्र शर्मा का तर्क उचित है कि' अजात शत्रु' निरर्थक शब्द है क्योंकि आजतक कोई ऐसा नहीं जिसका कोई शत्रु न हो। आकाश में फूल नहीं होता इसलिए' आकाश पुष्प और बन्ध्या पुत्र उत्पन्न नहीं करती इसलिए' बन्ध्या पुत्र' शब्द भी निरर्थक हैं। (अचूक नुस्खा')

डॉ. विद्यानिवास मिश्र 'हरसिंगार' में श्रृंगार के दो अर्थ 'रति का अनुराग' और 'मृत्यु' ग्रहण करते हैं। 'साँझ भई' का अर्थ उम्र का ढलना, यौवन की संध्या है। सिल 'का अर्थ विभिन्न प्रकार का कर्म एवं उत्तरदायित्व समझा गया है। 'भोर का आवाहन' का 'संदेश' वस्तुत : अनगिन रोनों का संक्षिप्त उत्तर है। यह सोलह हजार गोपियों या सोलह हजार ऋचाओं की उत्कण्ठा का उपशम है। जागरण के तप पर बल देनेवाला और स्वप्न-सुख का तिरस्कार करनेवाला है। (7) संध्या' का ध्यान आत्मचिन्तन, बन्दना की बेला, मनुष्य की दुर्बलता, प्रेम की गहराई की माप, मोह और ज्ञान की संधि, नारी-पुरष के मिलन की भूमि के रुप में किया जाता है।

'पानी' सभी स्वादों-तीते, मीठे, खट्टे कसैले-सभी रसों का पैमाना है। सामान्य, अपरिभाषित परन्तु इच्छा जगाने वाला, परितृप्त करने वाला, अविच्छिन्न स्मृति का प्रवाह, निश्शेष अर्पण है।

भारतीय 'नारी' नर की वृद्धि है, देवता का साक्षात विग्रह शक्ति का प्रस्फुरण, हजार रिश्तों का केन्द्र बिन्दु है। यह नारी शब्द भारतीयता से जुड़कर विशिष्ट अर्थ बोधक हो जाता है।

इसी प्रकार भारतीय 'नर' भी साक्षात् नारायण का विग्रह है, पुरुष मात्र नहीं। नारायण भी भारत का नर होने के लिए लालायित रहता है।'(8)

भारत की देवनदी' गंगा का अर्थ मात्र पानी का बहता हुआ स्रोत नहीं बल्कि यह अदभूत सौन्दर्य युक्त विशिष्ट अर्थ बोधक शब्द अमृत पान करानेवाली माता, प्रत्यक्ष देवी, त्रयताप हरने वाली। जिसके बूँद-बूँद में गोविन्द हैं। प्रत्येक डूबकी में शिव और प्रत्येक कलख में ब्रह्मा का वास है। वही गंगा है।

ये सारे अर्थ परम्परागत भारतीय संस्कृति की मान्यता पर आधारित होने के कारण विशिष्टता प्रदान करते हैं। ठीक उसी प्रकार जैसा रिवाजवश 'धान-पान' भारतीय नारी की आंतरिक कठोरता और कोमलता के प्रतीक हैं।

कुबेरनाथ राय की दृष्टि में 'मनियारा साँप' प्रेमी ह्रदय, रसिक श्री कृष्ण का अर्थ प्रदान करता है। इसके साथ ही ऐसे अनुरागीजनों की आसक्ति को

भी व्यक्त करता है।

'सम्पाती के बेटे' शब्द से साहित्यकारों को सम्बोधित किया गया है। 'देह वल्कल' में शब्द का अर्थ वृक्ष का छाल, पशुचर्म, मानव चर्म से लेकर नारी के लज्जा परिधान (नग्न वक्ष का कवच) तक ही सीमित नहीं रहता है, बल्कि रुप-रस-गन्ध के उस आवरण का बोधक भी है जिसके भीतर परम सत्ता विष्णु निवास करते हैं। जहाँ वह शून्य, वह शिव सुन्दरम् विराजमान रहता है।

इसी प्रकार के अनेक विशिष्ट अर्थ बोधक शब्दों को अन्य निबन्धकारों ने अपने निबन्धों में स्थान दिया है। यहाँ कुछ शब्द और उनके विशिष्ट अर्थ उदाहरण स्वरुप प्रस्तुत किये गये हैं। अध्ययन क्रम में प्रयास होतो अनेक ऐसे शब्दों का छोटा शब्दकोश तैयार किया जा सकता है।

3. वाक्य संरचना का स्वरुपः—

ललित निबन्धकार बातचीत की शैली अपनाते हैं। इसलिए इनके वाक्य लच्छेदार होते हैं। एक वाक्य दूसरे वाक्य के भाव से बन्धा हुआ और कभी अचानक टूटकर दूसरे संदर्भ को उठाता हुआ मिलता है। ऐसी स्थिति में वाक्य-संगठन में विविधता देखी जाती है। एक ही निबन्धकार कभी छोटे सरल वाक्य को रखता है तो कभी सामान्य आकार का मिश्र वाक्य। कहीं-कहीं धारा प्रवाह में बहते हुए दो-तीन पंक्तियों तक का एक संयुक्त वाक्य बना देता है। उदाहरण के लिए कुबेरनाथ 'निषाद बाँसुरी' में-'अपनी प्यारी नदीं के सानिध्य में, जिसकी सेवा वे जन्म से ही बड़े मनोयोगपूर्वक कर रहे हैं, मैं इनका आतिथ्य ग्रहण कर कृतकृत्य होता हूँ और ये मुझे नौका नयन के दो चार गीत सुनाते हैं, और सबसे बढ़कर चन्द्र विगलित ज्योत्स्ना में नदी के एकान्त वक्ष पर झिझिरी खेलने का अवसर देते हैं, तब मेरा आदिम निषादमन मुझे क्षणों के लिए पुनः इस जन्म में मिल जाता है।'[9]

इन्होंने छोटे वाक्य भी बनाया-'यह बछड़ा और कोई नहीं, भारत वर्ष ही है। इसी से इस धेनुरुपी नदी के लिए हमने अत्यन्त सार्थक नाम चुना है। गंगा। अर्थात् जो गं-गं ध्वनि करती हुई चलती है।कहते भी हैं।'गं-गं गच्छति सा गंगा।'[10]

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के वाक्यों में संक्षिप्त एक विशेषता बन गयी है। 'तत' किम्! या ये उसी पाश्वी वृत्ति के जीवन्त प्रतीक हैं।'[11] जैसे छोटे वाक्यों में ही वैसे व्यापक भावों की अभिव्यक्ति हो जाती है। जैसा बहुत बड़े अनुच्छेद

में संभव हो सकता है। इनके वाक्य कितने सधे हुए हैं। तथ्यों को सामने रखने में कितना सशक्त हैं। इसका अनुमान इन पंक्तियों से लग जाता है।-'मैं कहता हूँ कि कवि बनना है मेरे दोस्तों, तो फक्कड़ बनो। शिरीष की मस्ती की और देखो। लेकिन, अनुभव ने मुझे बताया है कि कोई किसी की सुनता नहीं। मरने दो !... शकुन्तला बहुत सुन्दर थी। सुन्दर क्या होने से कोई हो जाता है? देखना चाहिए कि कितने सुन्दर हृदय से वह सौन्दर्य डुबकी लगाकर निकला है। शकुन्तला कालिदास के हृदय से निकली थी। विघाता की और से कोई कार्पण्य नहीं था, कवि की और से भी नहीं। राजा दुष्यन्त भी अच्छे भले प्रेमी थे।'(12)

ध्यातव्य है कि इन वाक्यों का गठन दूसरे ढंग से भी हो सकता है। किन्तु भाव का यह तारतम्य, विचारों का स्पष्टीकरण और एक लयात्मक अनुभूति की जो प्रतीति इसमें है। वह उस दूसरे ढंग से संभव नहीं भी हो सकती है।

इसी प्रकार आ. देवेन्द्रनाथ शर्मा के वाक्य संगठन कुछ इस प्रकार के हैं कि विचित्र और चौका देने की कला अनायास फूट पड़ती है।'पता नहीं साइकिल के अनेक गुणों-उसकी अनुपम विशेषताओं पर आपने ध्यान दिया है या नहीं? सम्भवतः नहीं ही दिया होगा। एक दिन मैं कहीं चला जा रहा था कि सहसा मुझे ऐसा लगा, जैसे मैंने कोई अदभूत सत्य पा लिया।'(13) यदि इस बात को मैं इन वाक्यों में व्यवस्थित करुँ कि'- शायद आपने साइकिल की अनेक विशेषताओं पर ध्यान नहीं दिया होगा, परन्तु मैंने इस पर ध्यान दिया तो लगा कि कोई अद्‌भूत सत्य पा लिया।' तो स्पष्ट है कि वाक्य में वैसी चौंका देने की कला समाप्त हो गयी। शब्दों का चमत्कार नष्ट हो गया और एक तथ्य मात्र रह गया।

तात्पर्य यह कि ललित निबन्धकार वाक्य संरचना करते समय भी विधि-निषेधों को महत्वपूर्ण न मानकर स्वाभाविक अनुभूति और प्रभाव को महत्व देते हैं। इनके वाक्य कथात्मक-रस एवं रागात्मक अभिव्यक्ति के अनुरुप अपने आप बनते चले जाते हैं। ध्यान अभिव्यक्ति की सफलता पर रहता है न कि व्याकरण-सम्मत नियमों पर। कर्ता, कर्म, क्रिया, का क्रम बदल सकता है। अधूरे वाक्य मिले सकते हैं। इन वाक्यों की सबसे बड़ी विशेषता है मन को मुग्ध करने की क्षमता। उदय को आनन्दित कर देने की शक्ति और अनावश्यक बोझ तले दबने से बचाकर साथ ले चलने की कला। बिलकुल बातुनी, सुहृद मित्र की तरह ये वाक्य विभिन्न विचार-भाव-संवेदना-कल्पना-यथार्थके विशाल समुद्र में नौका विहार कराते हैं। वह भी कितना आनन्द-पूर्वक ठीक-ठीक कहना

कठिन हो जाता है।

4. विशिष्ट भाषिक युक्तियाँ

ललित निबन्धकार अपने निबन्धों में सहजता लाने के लिए कई विशिष्ट भार्षिक युक्तियाँ अपनाते हैं। इनमें से कुछ तो पीछे भी उल्लिखित हैं जैसे वाक्य संगठन में तारतम्य स्थापित करना, विचित्र चौंकाने वाली स्थिति पैदा करना इत्यादि। इन मार्गों को अपनाकर सरसता लाने के अतिरिक्त जो महत्वपूर्ण युक्तियाँ हैं उनमें 1. मुहावरों का प्रयोग 2. लोक संवेदना से जुड़े व्यावहारिक शब्दों का उपयोग 3. कौतूहल वर्द्धक एवं प्रसंग-विक्षेप के सूचक शब्दों या शब्द समूहों का सहारा लेना जैसे-कौन बताएगा? सबको आती है। क्या मुझे ऐसा लगता है, मुझे लगा आदि' 4. भावानुरुप भाषा को परिस्थिति के अनुरुप मोड़ने की शैली 5. एकरसता तोड़ने वाली भाषा 6. सूक्ति वाक्य एवं उद्धरणों को यथावत स्थिति में अपनाना और 7. विभिन्न शैलियों का समन्वित रुप में प्रयोग।

ये सभी युक्तियाँ अलग-अलग नहीं बल्कि एक साथ योगदान देकर अद्‌भूत रसायन का निर्माण करती हैं जिसका रसास्वाद ललित निबन्धों में मिलता है।

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी मुहावरों का कम प्रयोग करते हैं। परन्तु कौतुहल वर्द्धक शब्दों' जरा तुक मिलाइए मैं दूसरी बात सोच रहा हूँ' मेरा अनुमान है, मैं सोचता हूँ मुझे ऐसा लगा,। मैंने साफ देखा', बात यह हुई से आत्मीयता बनाते हुए आगे की जिज्ञासा प्रायः सभी निबन्धों में बढ़ाते हैं। ऐसी भाषिक युक्ति से प्रसंग बदलने में पाठक के साथ-अचानक कटने का भय भी समाप्त हो जाता है। विषयान्तर का यह तरीका बेहद प्रशंसनीय है। इनकी भाषा प्रसंग बदलते ही करवट बदल लेती है। यह कहीं तथ्यात्मक विवरण में तो कही भावुकता में व्यस्त हो जाती है। यह भाषागत विशिष्टता किसी भी निबन्धकार के निबन्धों में देखी जा सकती है।

सूक्ति वाक्यों और उद्धरणों को यथावत रखने की प्रवृत्तियाँ हजारी प्रसाद द्विवेदी की तरह ही डॉ. विद्यानिवास मिश्र आदि निबन्धकारों में भी है' कुबेरनाथ राय भी ऐसी ही युक्ति अपनाकर कथन की वास्तविकता और पाठक की विश्वसनीयता प्राप्त कर लेते हैं। इसके कई उदाहरण मिलते हैं।

लोक जीवन से जुड़े संदर्भ प्रस्तुत करने में विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय की बराबरी कोई नहीं कर सकता है। इधर शिक्षित समुदाय के लिए प्रभाकर माचवे, देवेन्द्रनाथ शर्मा आदि के नाम लिए जा सकते हैं। विद्यानिवास मिश्र के

निबन्ध' काहे बिन सून अँगनवा' हो या कुबेरनाथ राय का निषाद बाँसुरी लोक जीवन की शब्दावली और भाषा प्रयोग के प्रमाण हैं।

ललित निबन्धों में विभिन्न शैलियों आत्मपरक, वार्तालापीय, कथात्मक, रागात्मक आदि का प्रयोग अनिवार्यतः होता है। कुछ निबन्धकार व्यंग्य का और कुछ शिष्ट हास्य, मनोविनोद का भी अच्छा प्रयोग करते हैं। लोकोक्तियाँ और मुहावरे जहाँ विभिन्न भावों को संक्षेप में उकेर देते हैं वही व्यंग्य विनोद से मस्तिष्क के तार झनझनाकार हल्केपन का एहसास होता है। हाँ। ध्यातव्य यह है कि मात्र व्यंग्य विनोद ही न हो अन्यथा ललित निबन्ध व्यंग्य साहित्य हो जायगा। इसका लालित्य खतरे में पड़ जायेगा। अति सर्वत्र वर्जयेत' के सिद्धान्त पर ललित निबन्धकार इसका प्रयोग करते हैं। विभिन्न शैलियों को अपनाने के कारण हिन्दी ललित निबन्धों में एकरसता नहीं आने पायी है। इनमें क्षण-क्षण परिवर्त्तन से लालित्य से वृद्धि हुई है। किसी भी अच्छे ललित निबन्ध में यह गुण देखा जा सकता है।

5. भाव निवेदन के विभिन्न रुप

ललित निबन्धकारों में सबने एक ही सूत्र को नहीं अपनाया है। इसी तरह एक निबन्धकार भी अपने सभी ललित निबन्धों में एक सी अभिव्यक्ति नहीं दी है। कुछ निबन्धों में कथाकार की तरह एक से एक कहानी या आप बीती का जिक्र करते हुए मूल कथ्य को उभारा गया है। तो कहीं दूर-दराज में निवास करके प्राप्त अनुभवों को सुनाया गया है। विद्यानिवास मिश्र बाहर रहकर अपने घर आँगन की बात बतलाते हैं। कुबेरनाथ राय के निर्वासित जीवन में गाँव की स्मृतियाँ जग जाती हैं। अतः वही सुनाने लगते हैं। इससे भाषा में विशेष प्रभाव पड़ जाता है। इन दोनों के निबन्धों में ग्रामीण परिवेश की भाषा आ जाती है। इसी प्रकार देवेन्द्र नाथ शर्मा आदि नगर के शिक्षित जनों से बातें करते हुए आधुनिक नगरजीवन की भाषा का उपयोग करते हैं। विषय, भाषा और भाव की दृष्टि से ललित निबन्ध में निबन्धकार एक साथ कई अन्यविधाओं कहानी, संस्मरण आदि को अंगीकार कर लेता हैं। इसलिए इसके भाव निवेदन में कहानीकार, संस्मरण लेखक, गद्य-काव्य के रचयिता आदि के विभिन्न गुण समाहित हो जाते हैं।

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी अपने निबन्धों में अधिक से अधिक रोचक इतिहास की तरह बातें करते हैं। ये सारे ऐतिहासिक तथा पारम्परिक विषय ही

अधिक बतलाते हैं।

आ. देवेन्द्रनाथ शर्मा वर्त्तमान की रुप रेखा खींचते हुए विचित्र दृष्टिकोण प्रस्तुत करते जाते हैं। इसलिए इनके निबन्ध वर्त्तमान की प्रतिक्रिया व्यक्म करने वाले विचित्र विचारक की तरह भाव व्यक्त करते हैं।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय के अधिकांश निबन्ध लोक जीवन एवं लोक संस्कृति को पकड़कर कभी इतिहास में चले जाते हैं तो कभी लोक जीवन में ही उल्लसित होते है। अतः ये लोक जीवन-द्रष्टा की तरह पाठक को लोक जीवन का सरस परिचय देते हैं।

धर्मवीर भारती मन को ही उदय के साथ मथने में व्यस्त प्रकृति प्रेमी है। अतः भावुकतावश भावात्मक अभिव्यक्ति देते हैं। जैनेन्द्र कुमार अपने हल्के-फुल्के विचार प्रस्तुत करते हैं। इसी तरह सभी अपने-अपने ढंग से पाठकों के साथ वार्ता करते हुए अपने भावों का सम्प्रेषण करते हैं।

6. शैलीकार के रुप में महत्व :—

हिन्दी ललित निबन्ध का आज से पूर्व का पूरा अतीत झाँकने पर स्पष्ट हो जाता है कि ललित निबन्धकारों ने ललित निबन्ध की अच्छी शैलियों का विकास कर लिया है।

इस कार्य में महत्वपूर्ण भूमिका आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की है। इन्होंने विषय चयन की दृष्टि से विविद्यता एवं सामान्यता का परिचय दिया और कल्पना तथा यथार्थ की भी जोड़ा। इतिहास और वर्त्तमान को एक साथ प्रस्तुत करने की इनकी कला अभूतपूर्व है। इन्होंने गंभीर तथ्यों को सरल भाषा शैली में प्रस्तुत करके जो सफलता हासिल की, वह प्रशंसनीय है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय बहुत दूर तक आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी के समान ही विषय चुनते हैं। परन्तु भेद इतना है कि द्विवेदी जी इतिहास में गोता लगाते हैं और ये दोनों लोक जीवन को भी बड़ी श्रद्धा से अंगीकार करते हैं। भाषा शैली की दृष्टि से भी भेद बहुत अधिक नहीं मिलते हैं। संस्कृत-निष्टता का हल्का आभास सबमें है। कुबेरनाथ राय कुछ अधिक विस्तार में जाकर विचारों से उब पैदा होने की स्थिति बनाने लगते हैं। इस प्रकार इस संस्थान के प्रमुख शैलीकार आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ही सिद्ध होते हैं। प्रारम्भिक प्रयास इनका ही था। विद्यानिवास मिश्र लोक भाषा को अपनाकर कुछ इस प्रकार पिष्टपेषित कर देते हैं कि वे विशिष्ट अर्थ गर्भित लोक भाषा

के शब्द अर्थपूर्ण अभिव्यक्ति देने लगते हैं। जैसे-'असाढ़ में पहला डौंगरा बड़ी आशा ले के आया,[14]

सावन में धूल उड़ने लगी और भादो आये उसके पहले हीं कुआर आ गया। भोजपुरी ग्रामीण भाषा के शब्द- 'असाढ, डौगरा'-चौमासे की पहली वर्षा डौंगरा या दौंगरा कही जाती हैं।'[15] कुआर-'कुआरी या उन्हारी या भदई'(16) अर्थ की अभिव्यक्ति प्रस्तुत कर जाते हैं।

लोकवाणी का ऐसा ही प्रयोग कुबेरनाथ राय के ललित निबन्धों में देखा जा सकता है। यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो अधिक सहजता विद्यानिवास मिश्र प्रस्तुत करते हैं। लोकवाणी अपने असली स्वरुप के साथ इन्ही की लेखनी से अंकित होती है। अतः व्यापक प्रस्तुति एवं सहजता की दृष्टि से इस क्षेत्र में विद्यानिवास मिश्र आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी एवं कुबेरनाथ राय दोनों से अधिक महत्वपूर्ण हैं।

इस संस्थान के तीनों निबन्धकारों ने विचार और भाव, कल्पना यथार्थ का समन्वित लालित्यपूर्ण शैली का निर्माण किया है। इन्होने ही आज स्वतंत्रता पूर्व के निबन्धों की अपेक्षा अधिक सुन्दर ललित निबन्ध साहित्य दिया है। आज चयनित सामान्य विषयों में जो अर्थ-भाव-ज्ञान विवेक की गहराई मिलती है, उसका श्रेय इन्हीं निबन्धकारों की विषयान्तर में जाने की कला को प्राप्त हुआ है।

प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा, जैनेन्द्र कुमार आदि ने वर्त्तमान जीवन को जिस निजीपन से देखकर सहज भाषा-शैली में गम्भीर तथ्यों को रखने का यत्न किया है, वह पहले के निबन्धों में सम्भव नहीं हो सका था।

संक्षेप में ललित निबन्धकारों के प्रयास से उपयुक्त भाषा-शैली का संघान हुआ है। अब यही भाषा शैली पूरे ललित निबन्ध को लालित्य की ऊँचाई तक शमन देती है। आज भावाभिव्यक्ति संपन्न सरस हिन्दी ललित निबन्ध आदर्श बन गये हैं। ये भविष्य के लिए प्रेरक हो गये हैं।

संदर्भ- संकेत

सं.	पुस्तक का नाम	लेखक/सम्पादक	पृ. सं.
1.	कल्पलता	ले. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	8
2.	खट्टा-मीठा	ले. प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा	6
3.	विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्ध	सम्पा. भोलाभाई पटेल रामकुमार गुप्त	81-82
4.	खटटा मीठा	ले. प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा	9
5.	निषाद बाँसुरी	ले. कुबेरनाथ राय	29
6.	हजारी प्रसाद द्विवेदी ग्रन्थावली खण्ड-9	सम्पा. डॉ. मुकुन्द द्विवेदी	30-31
7.	भोर का आवाहन	ले. विद्यानिवास मिश्र	3
8.	तमाल के झरोखे से	”	91
9.	निषाद बाँसुरी	ले. कुबेरनाथ राय	29
10.	”	”	21
11.	कल्पलता	ले. आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी	6
12.	”	”	26
13.	खट्टा-मीठा	ले. प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा	2
14.	छितवन की छाँह	ले. विद्यानिवास मिश्र	87
15.	हिन्दी की शब्द-सम्पदा	”	39
16.	”	”	41

सप्तम अध्याय

तुलनात्मक अध्ययन

ललित निबन्धों के अध्ययन क्रम में स्पष्ट होता है कि विभिन्न निबन्धकारों की रुचि विषय चयन एवं जीवन-दृष्टि के साथ भाषा-शैली के चुनाव में भी कहीं-कहीं समानता रखती है। व्यक्तित्व-भेद अर्थात् व्यक्तिगत विशेषताओं के कारण इनकी रुचि में पर्याप्त भेद भी स्वाभाविक है।

अतः समानताओं-असमानताओं को स्पष्ट करके कुछ स्पष्ट निष्कर्ष तक पहुँचने का प्रयास प्रस्तुत अध्याय का लक्ष्य है। यहाँ क्रमशः तीन मूल बिन्दुओं पर ध्यान दिया जा रहा है।-

1. विषयवस्तुगत तुलनाः-

संस्कृति-सम्बन्धी विषय-चयन करनेवाले निबन्धकार आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी इतिहास में डूबकर मूल तत्व प्रेम, आस्था विश्वास, सामर्थ्य और सम्पन्नता आदि अनेक सामग्रियाँ बटोर लाते हैं। डॉ. विद्यानिवास मिश्र संस्कृति के अवशेषों को भारतीय लोक जीवन में पाते हैं। ये इन अवशेषों की सुरक्षा का निवेदन करते हैं, क्योंकि इसमें सरसता-सम्पन्नता एवं आनन्द पूर्ण जीवन प्रदान करने की सदियों पूरानी क्षमता आज भी है। कुबेरनाथ राय भी इसी ग्रामीण जीवन से विषय चुनकर विद्यानिवास मिश्र की भाँति आगे बढ़ते हैं। ये तीनों निबन्धकार संस्कृति-सम्बन्धी विषय चुनते हैं।

ये तीनों निबन्धकार मूलतः एक ही तरह का कार्य करते हैं। भेद मात्र इतना है कि जहाँ हजारी प्रसाद द्विवेदी सीधे इतिहास में चले जाते हैं वहाँ विद्यानिवास मिश्र एवं कुबेरनाथ राय लोक जीवन के आधार सूत्रों को पकड़कर अतीत की गहराई की और बढ़ते हैं। संस्कृति सम्बन्धी विषयों का चयन इन तीनों के समान किसी भी अन्य निबन्धकार में इतनी व्यापकता के साथ अब तक उपलब्ध नहीं हो सका है।

इतिहास-पुराण-धर्म ग्रन्थ एवं प्राचीन साहित्य-सम्बन्धी विषय चयन करनेवालों में भी हजारी प्रसाद द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र एवं कुबेरनाथ राय ही महत्वपूर्ण हैं। इसका एक मात्र कारण भारतीय संस्कृति की परम्परा का अनुसन्धान करना है। ऐसा अनुसन्धान एवं ऐसी रुचि किसी दूसरे निबन्धकार में उपलब्ध नहीं है।

धर्म और दर्शन-सम्बन्धी विषयों को समाहित करने वालों में आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र, कुबेरनाथ राय, प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा और एक दो निबन्धों में जैनेन्द्र कुमार भी हैं। सबका एक ही लक्ष्य है। भारतीय संस्कृति की हजारों वर्षों से संचित विचारों को सामने रखना और वर्त्तमान को प्रशिक्षित करना। अंतर मात्र इतना ही है कि आ. द्विवेदी प्रेम, कर्म एवं संतोष के साथ जीवन जीने पर बल देते हैं। जिजीविषा, मृत्यु एवं तन की नश्वरता को सत्य मानते हैं। योग, समाधि, स्थिरता आदि पर प्रकाश डालते हैं। विद्यानिवास मिश्र त्याग, प्रेम, समन्वय, साहस, संघर्ष आदि को रेखांकित करते है। कुबेरनाथ सांख्य दर्शन से प्रभावित शाक्त साधना की चर्चा करते है। प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा बिलकुल व्यावहारिक होकर मत विभिन्नता, चोरी-कर्म, याचक-प्रवृत्ति, प्रेम-व्यापार आदि पर दार्शनिक विचार देते हैं।

तात्पर्य यह है कि ये सभी निबन्धकार अपनी रुचि के अनुसार और स्वाधीन चिन्तन क्रम में धर्म-दर्शन-सम्बन्धी विषय के कुछ समान और कुछ भिन्न तत्वों को ग्रहण करते हैं। व्यक्तिगत रुचि के कारण यह विभिन्नता आयी है। शेष कोई विशेष अन्तर नहीं है।

वर्त्तमान जीवन-सम्बन्धी-विषय चयन करने वाले आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी वर्त्तमान अव्यवस्थाओं के प्रति चिन्तित होकर भी बैचेन नहीं है। इन्होंने व्यक्ति मात्र ही नहीं समाज और राष्ट्र का भी वर्त्तमान स्वरुप देखा है। इनकी आशावादी दृष्टि यहाँ काम कर रही है, इसलिए ये अशान्ति, भेद-भाव आदि विसंगतियों को क्षणिक मानते हैं। प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा की दृष्टि में वैसे विषय आये हैं। जिनमें उपयोगिता-अनुपयोगिता मान सम्मान, भ्रष्टाचार, शहरी जीवन आदि पर विचार है। इनके निबन्धों में अत्याधुनिक पक्ष अधिक समेटा गया है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र विभिन्न सांस्कृतिक कला वर्त्तमान भोगवाद की प्रधानता, श्रम का अभाव, खान-पान-आबोहवा, प्राकृतिक उपादानों का हनन्, वर्त्तमान कुण्ठा, आक्रोश, बुद्धिजीवी वर्ग की समस्याएँ पर्व-त्योहारों में रुचि की कमी आदि विषय अंगीकार कर लिए हैं। धर्मवीर भारती ने वर्त्तमान को मूल्यहीन, कल्पनाहीन, कला सृजन के प्रतिकूल माना है और अश्लीलता, मर्यादाहीनता, भ्रष्टाचार आदि विषयों पर ध्यान दिया है। इन्होंने आत्मीयता का ह्रास, बुद्धिजीवियों की कुण्ठा, सामाजिक अव्यवस्था आदि विषयों की चर्चा की है।

कुबेरनाथ राय ने कुछ विस्तार में जाकर साहित्यकारों की वर्त्तमान दशा, लोकतंत्र के प्रतिअनास्था, आशंका-भय, कृषि-संस्कृति की ह्रासशील स्थिति, खाद्य-परम्परा का अवमूल्यन, प्रेम का अभाव नर-नारी के परस्पर प्रेम में स्वार्थ भावना, नैतिक मूल्यों का ह्रास धर्म-अधर्म के बीच की लड़ाई, आदर्शहीनता आदि विषयों पर ध्यान दिया है। कामता प्रसाद सिंह काम व्यक्तिगत एवं घर-परिवार की वर्त्तमान विसंगतियों, राजनीति, अविश्वास आदि को विषय बनाते हैं। इन्द्रनाथ मदान, प्रभाकर माचवे, शिव प्रसाद सिंह, कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर आदि वर्त्तमान सतही विषयों को समेटते हैं।

विषयचयन की दृष्टि से ग्राम जीवन एवं नगर जीवन सम्बन्धी-विषय भी समाहित हुए हैं। आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने मात्र ग्राम जीवन में ही रुचि दिखलायी है। जबकि डॉ. विद्यानिवास मिश्र, और कुबेरनाथ राय गाँव और शहर के जीवन से प्राप्त अनुभव वर्त्तमान सत्य एवं परम्परागत यथार्थ व्यक्त करते हैं। इनदोनों का झुकाव गाँव की और अधिक है।

प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा, कामता प्रसाद सिंह काम, जैनेन्द्र कुमार, प्रभाकर माचवे, शिव प्रसाद सिंह काम, जैनेन्द्र कुमार आदि निबन्धकार नगर जीवन के अभ्यस्त हैं। इनकी रुचि नगर जीवन के विषयों में है। गाँव शायद कहीं एक दो पंक्तियों में टपकता जाय तो कोई विशेष नहीं।

निजी जीवन को विषय बनानेवाले निबन्धकारों में आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी बहुत महत्वपूर्ण नहीं हैं। ये कहीं-कहीं। अपनी बातें करने का शौक भले ही पूरा करते हैं। प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा निजी जीवन में कुछ अधिक दिलचस्पी लेते हैं। डॉ. विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय तो अपने जीवन की समस्याएँ, निजी व्यक्तित्व की विशेषताएँ आदि व्यक्त करके अपने मन का बोझ पाठकों के सिर पर फेंकते रहते हैं और कला की शक्ति ऐसी कि पाठक चूँ तक नहीं बोलता बल्कि सब कुछ सहर्ष स्वीकार करता जाता है। निजी जीवन के विषयों पर जुगाली करना इन्हें खूब आता है। आत्मपीड़ा को निकाल फेंकने और पाठक से बतकही करने में व्यक्त इन निबन्धकारों को काम-धाम से बेफिर्क, सेवानिवृत चौपाल पर घंटो बैंठे गपबाजी में लीन, अनुभवी-ज्ञानवान, चौथेपन की सवारी करता हुआ, दीर्धजीवी कहा जाय तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। इन्होंने अनेक निबन्धों मे जहाँ भी अवसर मिला, देखा पाठक रस ले रहा है और आपबीती छेड़ दी।

कामता प्रसाद सिंह काम, और इन्द्रनाथ मदान अधिकांशतः निजी जीवन सम्बन्धी निबन्ध प्रस्तुत किये हैं। आत्मपरकता इनके निबन्धों का वैशिष्टय है। इसकी अतिशयता ललित निबन्ध की दृष्टि से अवगुण भी बन गयी है।

जैनेन्द्र कुमार भी अपने निबन्धों में निजी-जीवन के विचार छेड़ते हैं। प्रभाकर माचवे निजी बातें रखकर भी कहते हैं यह मेरा नहीं है।

प्रकृति प्रेम से सम्बद्ध विषय आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी डॉ. विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय के निबन्धों में व्यापकता के साथ उपस्थित हैं। देवेन्द्रनाथ शर्मा और धर्मवीर भारती ने भी इस और कम परन्तु गहराई से रुचि ली है। अन्य निबन्धकारों में कहीं एकाध फूल-पत्ती, नाले मिल जायें तो बहुत है।

ऋतु एवं महीना सम्बन्धी विषय हजारी प्रसाद द्विवेदी एक से अधिक निबन्धों में अपना नहीं सके। विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय ने प्रकृति के प्रांगण में मन रमाकर ऋतु-मास का जितना अनुभव किया उतना और किसी ने नहीं। शेष नगरजीवन के निबन्धकारों को इससे कोई मतलब ही नहीं रहा है।

इस प्रकार प्रस्तुत विषयगत तुलना से यह बात सिद्ध हो जाती है कि ललित निबन्धकार अपने परिवेश से सम्बद्ध विषयों के प्रति ही आत्मीयता रखते हैं। ये अपने अनुभव सत्य और अध्ययन-विस्तार के क्षेत्र में उपस्थित तत्वों को ही समेटते हैं। जिन निबन्धकारों की गति दूरतक नहीं है। परन्तु प्रतिभावान हैं वे निजी जीवन की बातें व्यक्त करने में रह जाते हैं। ललित निबन्धकारों की व्यक्तिगत रुचि का प्रमाण यहीं मिल जाता है। उनके व्यक्तित्व की माप यहीं निर्धारित हो जाती है। उनके लेखकीय व्यक्तित्व की सभरता, अथवा निम्नता की कोटियाँ स्पष्ट हो जाती हैं। उनकी निजी प्रकृति की पहचान भी हो सकती है।

2. भाषा–शैलीगत तुलना–

भाषा शैली की दृष्टि से आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी से लेकर कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर तक सभी निबन्धकार एक समान सहजता अपनाने की कोशिश करते हुए दिखते हैं। जहाँ जटिल शब्द आवश्यकतावश आ गये हों वहाँ उनका अर्थ-स्पष्ट करना आदि। सभी सरल अभिव्यक्ति को ही महत्व देते हैं। शब्द चयन करते समय सबकी मानसिक स्थिति व्यावहारिकता की और झुकी हुई मिलती है। इसलिए अंगरेजी, उर्दू आदि दूसरी भाषाओं के वैसे ही शब्दों का व्यवहार करते हैं जो हिन्दी में सहजव्यवहार में आते हैं। शैली में आत्मपरकता, आत्मीयता, आदि शैलियाँ सबमें मिलती है। इसके बावजूद प्रत्येक

निबन्धकार भाषा शैलीगत निजी विशेषताओं के कारण दूसरे निबन्धकारों से भिन्न भाषा-शैली का प्रयोग करता है।

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की भाषा संस्कृत-साहित्य की भाषा से प्रभावित है। अतः स्वाधीन मनः स्थिति में संस्कृत की शब्दावली अधिक प्रयुक्त हुई हैं। लोक संस्कृति की और कम ध्यान जाने के कारण लोक भाषा का दर्शन कहीं-कहीं ही हो सकता है। इनकी भाषा का तेवर साहित्य एवं इतिहास के संपन्न अध्येता की भाषा के समान है। कहीं-कहीं अल्प शिक्षित पाठक को कठिनाई हो सकती है। साहित्य एवं इतिहास की शब्दावली से अपरिवर्तित सामान्य जन के लिए इनका कथ्य पूरी तरह रसानुभूति न करा सके, ऊपरी अर्थबोध मात्र दे सके तो इसका यही कारण होगा। इन्होंने व्यंग्य का हल्का सहारा लिया है, मात्र मनोविनोद के लिए। इन्हें तीखापन बहुत पसंद नहीं है। इसके बावजूद इनके आत्मव्यंग्य में मन परिष्कृत करने की क्षमता है। रोचकता सर्वत्र बनी हुई है। जिज्ञासा बढ़ाने की कला का खूब निर्वाह हुआ है। आत्मपरकता का सहारा जगह-जगह लिया गया है। ये सहज वार्तालाप करते हुए आगे बढ़ते गये हैं। ये विशेषताएँ प्रायः ललित निबन्धकारों के सामान्य गुण हैं।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय की भाषा-शैली भी अधिकांशतः आ. द्विवेदी के समान है। संस्कृत साहित्य और इतिहास की ओर दृष्टि जाने पर ये भी द्विवेदी जी के समान भाषा और शब्दावलियों का प्रयोग करने लगते हैं। कुबेरनाथ राय तो कुछ अधिक जटिल शब्दों को भी बहुत जटिल न समझकर समाहित कर लेते हैं। जिसके लिए इन्हें सीमित पाठक मिलेंगे जिनमें भाषा और साहित्य के अध्ययन का अभ्यास हो वे ही इनके निबन्धों का रसास्वादन कर सकेंगे। संस्कृत साहित्य-दर्शन आदि में प्रयुक्त शब्द बहुत कुछ मूल रुप में आ गये हैं। समासिक शब्दों का बाहुल्य है। विशिष्ट अर्थ बोधक शब्दों के भीतर छुपे विभिन्न विषयों-संदर्भों का ज्ञान होना अनिवार्य हो जाता है। शुक्र है कि ऐसे संदर्भ बहुत अधिक नहीं है जहाँ दर्शन शास्त्र और मनोविज्ञान के अध्येता कुबेरनाथ राय की भाषा की गम्भीरता आई है वर्ना सारा लालित्य इसी में खो जाता।

लोक संस्कृति को विषय बनाकर ग्रामीण परिवेश की चर्चा में रस लेते विद्यानिवास मिश्र की भाषा शैली की सहजता-व्यावहारिकता एवं प्रभावोत्पादकता सम्पूर्ण ललित निबन्धों की भाषा-शैली में सर्वाधिक प्रशंसनीय है। कुबेरनाथ राय

सहज स्वाभाविक रसानुभूति कराने में कुछ चुक जाते हैं परन्तु मिश्र जी वैसे स्थलों में भी सुप्रसिद्ध वैयाकरण होने का परिचय देते हैं। ये ग्रामीण परिवेश से सहज गलबाँही ही देकर चलते-फिरते नजर आते हैं। इनमें न दार्शनिक गम्भीरता का बोझ है और न सांस्कृतिक इतिहास में प्रवेश करने का अथक प्रयास। सब कुछ सहज सम्प्रेषणीय बना देना ही ललित निबन्ध की सबसे बड़ी विशेषता है। इस विशेषता के धनी होने के कारण इन्हें ललित निबन्धों का आदर्श रचनाकार या स्वामी कहना उचित होगा।

व्यंग्य-विनोद की दृष्टि से ये तीनों निबन्धकार एक समान रचना करते हैं। ये कहीं-कहीं आत्म-व्यंग्य में ही रस लेते हैं। इस आत्मव्यंग्य में हल्की चोट आत्मग्लानि पाठक महसूस कर जाते हैं। इससे मन परिष्कार का लक्ष्य पूरा हो जाता है। गहरी मारक चोट, तीखा प्रहार, निर्मम डाँट-फटकार, अशिष्ट व्यंग्याघात इन प्रबुद्ध निबन्धकारों के साहित्यिक व्यक्तित्व के अनुकूल नहीं हो सका है। शिष्ट सुन्दर आचरण इनकी वैयक्तिक विशेषता है। हास परिहास और आत्म-व्यंग्य अपनाकर पाठक मनोरंजन करते हुए मन के कुसंस्कार शमित करने का कार्य पूरा कर लेते हैं।

प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा की भाषा-शैली अपने कथ्य के अनुरुप विशेष चौंकाने वाली है। ऐसी चौंक कुछ-कुछ प्रभाकर माचवे में मिलती है। वाक्यों को उलट-पलट कर बातें एक आवृति में घेर कर समझाने का कार्य जैनेन्द्र कुमार में मिलते हैं। इनमें से जैनेन्द्र कुमार दर्शन और विचारों में उमड़ती-घुमड़ती भाषा-शैली का परिचय देते हैं। अर्थात् इन्हें तथ्य रखने के क्रम में सपाट-बयानी का मार्ग अपनाना पड़ता है तो विश्लेषण-क्रम में पुनरुक्ति का सहारा भी लेना पड़ता है।

ये निबन्धकार बिलकुल अत्याधुनिक शिक्षित वर्ग को बोल चाल की अच्छी भाषा का प्रयोग करते हैं। लगता है कि पढ़े-लिखे लोग अच्छी हिन्दी भाषा में स्वाधीन मनः स्थिति में वार्तालाप कर रहे हैं। स्वाभाविक है इनमें अंग्रेजी शब्दों का हिन्दी रुप जितना प्रयुक्त हुआ है, संस्कृत के शब्द उतने नहीं। इन्हीं के वर्ग में शिव प्रसाद सिंह और इन्द्रनाथ मदान भी रखे जा सकते हैं। परन्तु शिव प्रसाद सिंह की भावाभिव्यक्ति का लहजा जहाँ सामाजिक चिन्तक का है वहाँ इन्द्रनाथ मदान पारिवारिक क्षेत्र तक ही सीमित हो जाते हैं। इस सीमित क्षेत्र का प्रभाव इनकी भाषा में पड़ जाता है।

व्यंग्य की तीखी मार सर्वत्र अपना अधिकार बनाये रखने का कायल होने के कारण प्रभाकर माचवे इन निबन्धकारों के बीच से उछलकर बाहर आ जाते हैं। चौंकाने की कला और विचित्र शब्द चिन्तन की प्रणाम की प्रदर्शनी में खड़ा देवेन्द्रनाथ शर्मा अर्थ का अनर्थ और अनर्थ का अर्थ ढूँढ़ती हुई भाषा-शैली का पक्षधर होकर अलग खड़ा मुस्कुराते रहते हैं।

इस प्रकार सबकी अपनी अपनी विशिष्ट शैली है। कुछ भाषा शैलीगत समानताओं के आधार पर ही निबन्धकार को एक-दूसरे से जोड़ सकते हैं। जैसे धर्मवीर भारती की लयात्मक भाषा को शब्द-चयन की दृष्टि से इन निबन्धकारों के बीच रखते हुए भी इनकी ध्वनि किसी से मेल नहीं खा सकती है। ये तो सीधे विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय के निबन्धों की ओर चले जायेंगे। परन्तु, संस्कार वहाँ भी टकराने लगेगा।

3. जीवन–दृष्टिगत तुलना :–

आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी की जीवन दृष्टि में गाँधीवादी विचारों का दर्शन होता है। महत्वपूर्ण रुप से उनके अवधूतपन का। 'स्व' के बंधन में रहकर पर मुखापेक्षित नहीं होना और अहिंसात्मक जीवन व्यतीत करना इनकी दृष्टि में आदर्श मानव-जीवन है। आत्मसंयम, तप, त्याग, सुख-दुख के प्रति संवेदनशीलता, विवेकशीलता, आत्मसंतोष, प्रेम, सहनशीलता, अस्तित्ववादी भावना, स्वाभिमान, जीवन-मूल्यों की रक्षा, राष्ट्रप्रेम, संघर्ष, स्वावलम्बन आदि मानवीय गुण जीवन को सार्थक एवं आदर्श बनाते हैं। ऐसे गुणों से युक्त मनुष्य किसी भी युग में उत्साह पूर्वक, मस्ती के साथ जीता है। ऐसे लोग बहुत कम होते हैं, परन्तु होते अवश्य हैं। आ. द्विवेदी जी ने देखा है-महात्मा गाँधी आदर्श व्यक्तित्व का प्रकाश पूंज, ऐसा अवधूतपन। ऐसे उत्साह एवं मस्ती भरे जीवन जीनेवाले भारत में हुए हैं।

प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा की जीवन-दृष्टि आ. द्विवेदी की जीवन-दृष्टि का पक्ष स्वीकार नहीं कर पाती है। ये वर्त्तमान अर्थ-प्रधानयुग में उपयोगितावादी दृष्टि को ही प्रबल मानते हैं। इनके अनुसार आज इन आदर्श जीवन-मूल्यों की और किसी का ध्यान नहीं है। यही यथार्थ है। अतः जीवन के उतार-चढ़ाव में आनेवाली परिस्थितियों का सामना करते हुए आगे बढ़ना इनका लक्ष्य है। इसके बावजूद इन्होंने भी वर्त्तमान युग के लिए आत्मगौरव, संघर्ष,असीम जिजीविषा, व्यक्तिगत स्वातंत्र्य, निजी-दृष्टिकोण आदि को अपनाना उपयुक्त समझा है।

इनकी जीवन-दृष्टि वर्त्तमान यथार्थ जीवन-दृष्टि है। इसमें पारम्परिक आदर्श का कोई विशेष महत्व नहीं है।

डॉ. विद्यानिवास मिश्र बहुत कुछ हजारी प्रसाद द्विवेदी के समान जीवन-दृष्टि के पक्षधर हैं। इनकी दृष्टि में भी भारतीय संस्कार-युक्त जीवन में ही मानव-जीवन की सार्थकता दिखती है। आत्मसंतोष, आत्म सम्मान, ईश्वर के प्रति आस्था,त्याग-बलिदान से युक्त सात्विक प्रेम भाव, राष्ट्र प्रेम, सहजता आदि बार-बार इनके निबन्ध अपनाने के लिए प्रेरित करते हैं। ये आदर्शवादी जीवन-दृष्टि रखते हैं।

धर्मवीर भारती जीवन की सार्थकता प्रकृति के सानिध्य से प्राप्त सौन्दर्य रस और सात्विक प्रेम में अधिक देखते हैं। उनके अनुसार यह निश्छल सात्विक प्रेम परमात्मा में आत्मा को समाकर जीवन को सार्थक बना देता है। इनकी दृष्टि में बाह्याडम्बर, फूहड़ता, अश्लीलता अविश्वास, आशंका, आत्मीयता का ह्रास, भ्रष्ट राजनीति से विसंगतियों का विरोध होना चाहिए। शुद्व आत्मीयता पूर्वक मानव और प्रकृति के प्रति प्रेम और सम्मान रखना अनिवार्य है। इसी में मानव और मानव-समाज का कल्याण है। राष्ट्रप्रेम, सफलता, मानवतावादी, समन्वयवादी दृष्टि में पर्याप्त आस्था जीवन की सफलता का मार्ग है। आज इसी जीवन-दृष्टि की आवश्यकता है।

कुबेरनाथ राय भी आ. द्विवेदी, विद्यानिवास मिश्र और धर्मवीर भारती से परे कुछ दूरी नहीं तय करते हैं। जीवन के उन्हीं आदर्श-मूल्यों को इनके निबन्धों में देख सकते हैं। पवित्र-प्रेम भाव आध्यात्मिक दृष्टि पर बल, सात्विक प्रेम रस का पान, नियम संयम। इतना अवश्य है कि इनकी पवित्र रुप-रस-गंध की भोगवादी दृष्टि कुछ-कुछ धर्मवीर भारती में है। अत्यल्प संकेत मात्र विद्यानिवास मिश्र में और आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी में नगण्य। इन्होंने स्पष्ट स्वीकार किया है कि भौतिकवाद, अध्यात्मवाद एवं प्राणवाद (रजोगुण प्रधान) तीनों की समन्वित धारा हमारे जीवन में प्रवाहित है। इस तरह तीनों का जीवन में महत्व है।

कामता प्रसाद सिंह 'काम' वर्त्तमान जीवन का यथार्थ मात्र रखते हैं जिसमें प्रकारान्तर से वर्त्तमान के प्रति असंतोष देखा जा सकता है। जैनेन्द्र कुमार में भी इसी प्रकार की बात है। प्रभाकर माचवे का असंतोष तो इतना तीव्र हो गया है कि ये व्यंग्य-बौछार करने लगे हैं।

इन्द्रनाथ मदान बेचैन हो उठते हैं। कन्हैया लाल मिश्र प्रभाकर घर-परिवार

के भीतर शांति बनाने के लिए नीतियाँ गढ़ने लगे हैं। शिव प्रसाद सिंह को सर्वत्र विसंगतियाँ और परम्परा का हनन नजर आता है। ये सभी निबन्धकार इस युग के जीवन का दुर्भाग्य या विडम्बना समझकर आदर्श की बात नहीं करते हैं। परम्परा को स्मरण करना शायद इन्हें बहुत उपयोगी नहीं लगता है।

निश्चय ही आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ. विद्यानिवास मिश्र एवं कुबेरनाथ राय की दृष्टि में अतीत का जीवन मर्यादा सम्पन्न था। सरस संपुष्ट एवं सुखद उस जीवन का स्मरण और अनुकरण आज भी अत्यन्न उपयोगी हो सकता है। इसके व्यवहार में आने से वर्त्तमान की विसंगतियों, बेचैनी और अंसतोष से बचा जा सकता है। इतनी संभावना होने पर भी आज का आदमी उस परम्परा को जीवन में नहीं उतार पा रहा है। आ. द्विवेदी का विश्वास है कि पश्चिमी विचार-विनियम के थपेड़े भारतीय संस्कृति की नींव नहीं हिला पायेंगे। अर्थात् इनकी दृष्टि आशावादी है।

परन्तु प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा तो धन और प्रतिष्ठा के प्रति आसक्त वर्त्तमान को बाह्य रुप से जहाँ बाह्याडम्बर में, वही आंतरिक रुप से झूठ-फरेब, स्वार्थ में आकण्ठ डूबा बताते हुए सब कुछ चुकने की बात स्पष्ट कर दी है। धर्मवीर भारती की धारणा है कि जो कुछ शेष है उसकी रक्षा न की गई तो उसे भी पुनः प्राप्त कर पाना कठिन है। कुबेरनाथ राय देखते हैं-ध्वंस की राजनीति में सबकुछ स्वाहा होता ही जा रहा है।

ऐसी स्थिति में यही कहा जा सकता है कि परम्परागत जीवन-दृष्टि के प्रति सभी निबन्धकारों में मोह है। वर्त्तमान के प्रति अंसतोष है। कुछ तो कुछ शेष मानवीयता देखते हैं कुछ यह भी नहीं पाते। प्रत्येक निबन्धकार की दृष्टि में बहुत भिन्न मान्यताएँ नहीं आयी हैं। हाँ ! दृष्टि पथ पर आने वाले तत्व (प्रेम, मानवीयता, आदि) भिन्न भिन्न रुपों में व्यक्त अवश्य हुए हैं। व्यक्तिगत विशेषता के कारण किसी ने कुछ तत्वों को समेट लिया कुछ को छोड़ दिया और किसी दूसरे ने किसी अन्य तत्व को माध्यम बनाया। जिनकी रुचि जिस पथ पर है, वह उसी पथ पर चलकर विभिन्न तत्वों को समेट लिया है।

निष्कर्ष

ललित निबन्धकारों के प्रस्तुत तुलनात्मक अध्ययन से कई बातें स्पष्ट हो जाती हैं। प्रथम तो यह कि विषय-विविधता और व्यापकता की दृष्टि से डॉ. विद्यानिवास मिश्र और कुबेरनाथ राय ललित निबन्धकारों में महत्वपूर्ण हो जाते

हैं। भाषा की सहजता और व्यावहारिकता की दृष्टि से डॉ. विद्यानिवास सर्वोपरि स्थान रखते हैं। ये हजारी प्रसाद द्विवेदी की ललित निबन्ध-शैली को विस्तार देकर उनसे आगे निकलते हैं। तात्पर्य यह नहीं कि आ. द्विवेदी की ललित निबन्ध लेखन की गरिमा इनसे कम है। इनमें प्रमुख एवं प्रारम्भिक शैलीकार की दृष्टि से आ. हजारी प्रसाद द्विवेदी का महत्वपूर्ण सर्वाधिक है। ये तीनों निबन्धकार एक ही संस्थान के हैं।

दूसरे भिन्न शैलीकारों में प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा महत्वपूर्ण हैं। इनके समान विचित्र चौंक उत्पन्न करनेवाले किसी निबन्धकार की पहुँच इतनी ऊँचाई तक न जा सकी है। विषय भले ही कई निबन्धकार (कामता प्रसाद सिंह आदि) चुनते हैं। प्रभाकर माचवे के निबन्धों में यह चौंक मिल सकता है परन्तु व्यंग्य की जो प्रकृति इनकी है, उसे देवेन्द्रनाथ शर्मा में नहीं पाया जा सकता है।

व्यंग्यात्मक शैली का सर्वाधिक उपयोग प्रभाकर माचवे ने किया है। इनकी जीवन-दृष्टि-पथ पर आनेवाली वर्त्तमान विसंगतियाँ व्यंग्य की तीखी मार से छटपटाने लगती है। ऐसा तीव्र प्रहार कहीं अन्यन्त्र प्राप्त होना असम्भव है। इसी से ये रचनाएँ विषयान्तर, आत्मपरकता आदि न होने पर व्यंग्य-साहित्य मात्र हो जाती ललित निबन्ध नहीं।

जैनेन्द्र कुमार एवं शिव प्रसाद सिंह कुछ विचारशील तथा कुछ भावात्मक अभिव्यक्ति देनेवाले हैं। कामता प्रसाद सिंह काम, इन्द्रनाथ मदान और कन्हैयालाल मिश्र के निबन्धों में दृष्टि विस्तार या कहैं सभर व्यक्तित्व का उभार बहुत कम हुआ है। विषय और जीवन दृष्टि संकुचित क्षेत्र में है। अतः ये प्राप्त ललित-निबन्धों के बीच अति सामान्य स्तर के निबन्धों की श्रेणी में रह जाते हैं। इन्हें आदर्श मानना ललित निबन्धों की गरिमा पर कहीं-न-कहीं कमी कर देना होगा।

आधार ग्रन्थ

क्र.सं.	ग्रंथ	लेखक/सम्पादक/प्रकाशक	सस्करण/प्रकाशक वर्ष
1.	अशोक के फूल	ले. हजारी प्रसाद द्विवेदी प्र. मुकुन्द द्विवेदी, नैवेध निकेतन, रवीन्द्रपुरी वाराणसी-5	स. 8वां 1966 ई.
2.	आइना बोल उठा	ले. प्रो. देवेन्द्र नाथ शर्मा प्र. भारती भवन पटना-1,	सं. 2021 वि.सं
3.	आस पास की दुनिया	ले. कामता प्रसाद सिंह 'काम' प्र. पारिजात प्रकाशन डाक बंगला रोड पटना-1	सं.चतुर्थ-1965 ईं.
4.	आँगन का पंछी और बनजारा मन	ले. विद्यानिवास मिश्र प्र. वाणी प्रकाशन 4697/5, 21ए रियागंज, नई दिल्ली-110002,	सं-तृतीय आवृत्ति
5.	कल्पलता	ले. आ. हजारी प्रसाद द्विवदी प्र. राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.'8 फैज बाजार दिल्ली-6	सं. 8वां 1979 ई.
6.	कुछ उथले कुछ गहरे	ले. डॉ. इन्द्रनाथ मदान प्र.भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 3620/21 नेतीजी सुभाष मार्ग दिल्ली-6	सं. प्रथम, 1968 ई.
7.	कहनी अनकहनी	ले. डॉ. धर्मवीर भारती प्र. भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन 3620/21 सम्पा. लक्ष्मीचंद्र जैन नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली-6,	सं प्रथम 1970
8.	खट्टा-मीठा	ले. प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा प्र. ग्रन्थमाला कार्यालय पटना-4	सं. चतुर्थ, 2019 वि. सं.
9.	गाँव का मन	ले. विद्यानिवास मिश्र प्र. वाणी प्रकाशन 4697/5, 21/ई दरियागंज,	सं. प्रथम आवृति

		नई दिल्ली-2	
10.	गन्धमादन	ले. कुबेरनाथ राय प्र. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 3620/21 सम्पा. लक्ष्मीचन्द्र जैन नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली-6	सं प्रथम 1972 ई.
11.	छितवन की छाँह	ले. विद्यानिवास मिश्र प्र. लोक भारती प्रकाशन 15-ए, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद-1,	सं. नवीन 1982ई.
12.	जिन्दगी मुसकराई	ले. कन्हैयालाल मिश्र प्रभाकर सम्पा. लक्ष्मी चन्द्र जैन प्र. भारतीय ज्ञानपीठ, दुर्गा कुण्ड रोड, बनारस,	सं. प्रथम 1954 ई.
13.	झूठ-सच	ले. सम्पा. सियाराम शरण प्र. साहित्य सदन चिरगाँव झाँसी	सं पंचमावृति-2013 वि. सं.
14.	ठेले पर हिमालय	ले. धर्मवीर भारती प्र. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, प्रधान सम्पा. लक्ष्मी चंद्र जैन कार्यालय-9 अलीपुर पार्क प्लेस कलकत्ता -27	सं. द्वितीय, 1970 ई.
15.	तुम चंदन हम पानी	ले. डॉ. विद्यानिवास मिश्र प्र. भारती भंडार लीडर प्रेस, इलाहाबाद	सं. प्रथम, 2013 वि. सं.
16.	तमाल के झरोखे से	ले.'प्र. राधाकृष्ण प्रकाशन प्रा.लि. 2 अंसारी रोड, दरियागंज नई दिल्ली 110002,	सं. द्वितीय 1989 ई.
17.	निषाद बाँसुरी	ले. कुबेरनाथ राय प्र. भारतीय ज्ञानपीठ बी./45-47 कनॉट प्लेस, नयी दिल्ली 110001	सं. दूसरा - 1982 ई.
18.	प्रतापनारायण ग्रन्थावली	सम्पा. विजय शंकर मल्ल प्र. नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी	प्रथम खण्ड सं. प्रथमावृति 2014 वि. सं.

19. प्रणाम की प्रदर्शनी में	ले. आ. देवेन्द्रनाथ शर्मा प्र. पारिजात प्रकाशन डाक बंगला रोड पटना-800001,	सं. प्रथम, 1980 ई.
20. प्रभाकर माचवे : प्रतिनिधि रचनाएँ	सम्पा, कमल किशोर गोयनका प्र. साहित्य निधि 29/59 ए, गली न. 11 विश्वास नगर शाहदरा, दिल्ली-110032	संस्करण- 1988 ई.
21. प्रिया नीलकण्ठी	ले. कुबेरनाथ राय, सम्पा. लक्ष्मीचन्द्र जैन प्र. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 3620/21नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली-6	सं. प्रथम 1968 ई.
22. पर्णमुकुट	ले. कुबेरनाथ राय प्र. लोक भारती प्रकाशन 15/ए, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद-1,	सं. प्रथम 1978 ई.
23. पश्यन्ती	ले. धर्मवीर भारती सम्पा. लक्ष्मीचन्द्र जैन प्र. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 3620/21 नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली-6	सं. द्वितीय 1972 ई.
24. भट्ट निबन्धावली	सम्पा. देवीदत्त शुक्ल प्र. गोपाल चन्द्र सिंह (सचिव), हिन्दी पहला भाग धनञ्जय भट्ट' सरल' साहित्य सम्मेलन प्रयाग,	सं. सातवाँ, 1947 ई.
25. भट्ट निबन्धावली	सम्पा. श्री धनंजय प्र. हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग दूसरा भाग भट्ट'सरल'	स. तृतीय, 1942 ई.
26. भोर का आवाहन	ले. डॉ. विद्यानिवास मिश्र सम्पा. डॉ. शिव प्रसाद सिंह प्र. अनुराग प्रकाशन के 40/10, भैरवनाथ वाराणसी	सं. तृतीय 1968 ई.

27.	महके आँगन चहके द्वार	ले. कन्हैयालाल मिश्र, सम्पा. लक्ष्मी चंद्र जैन प्रभाकर, प्र. भारतीय ज्ञानपीठ बी. 45/47 कनॉट प्लेस नई दिल्ली,	सं. तृतीय, 1979 ई.
28.	मन पवन की नौका	ले. कुबेरनाथ राय प्र. प्रभात प्रकाशन चावड़ी बाजार दिल्ली 110006,	सं. प्रथम, 1982 ई.
29.	मेरी असफलताएँ	ले. गुलाबराय प्र. साहित्य रत्न भण्डार, साहित्य कुंज आगरा,	सं. पंचम 1960 ई.
30.	मैंने सिल पहुँचाई	ले. डॉ. विद्यानिवास मिश्र प्र. राजकमल प्रकाशन प्र. लि. दिल्ली	सं. प्रथम, 1966 ई.
31.	रस आखेटक	ले. कुबेरनाथ राय सम्पा. लक्ष्मीचंद्र जैन प्र. भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 3620/21 नेताजी सुभाष मार्ग दिल्ली-6,	सं. प्रथम 1970 ई.
32.	विषाद योग	ले. कुबेरनाथ राय प्र. नेशनल पब्लिशिंग हाउस 23 दरियागंज, दिल्ली 110006,	सं. प्रथम 1973 ई.
33.	विद्यानिवास मिश्र के ललित निबन्ध	सम्पा. भोलाभाई पटेल, रामकुमार गुप्त प्र. जय भारती प्रकाशन इलाहाबाद-3	सं. प्रथम, 1991 ई.
34.	शिव पूजन रचनावली दूसरा खण्ड	ले सम्पा. शिव पूजन सहाय प्र. विहार राष्ट्रभाषा परिषद नवीन संस्करण खीष्टाब्द पटना-3	1957
35.	शिवशम्भु के चिट्टे	ले. बालमुकुन्द गुप्त	सं. पुनर्मुद्रण 1995 ई.

		प्र. राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. बी नेताजी सुभाष मार्ग नयी दिल्ली-110002	
36.	सोच विचार	ले. जैनेन्द्र कुमार प्र. पूर्वोदय प्रकाशन दरियागंज दिल्ली-6	सं.पुनरावृत्ति 1973 ई.
37.	साहित्य सुमन	ले. पं. बालकृष्ण भट्ट, सम्पा. श्री दुलारेलाल प्र. श्री दुलारेलाल अध्यक्ष गंगा पुस्तक माला कार्यालय लखनऊ,	सं. पष्ठावृति 1898 वि. सं.
38.	हजारी प्रसाद द्विवेदी गन्थावली खण्ड 9	सम्पा. डॉ. मुकुन्द द्विवेदी प्र. राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 8 नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली 110002	सं. प्रथम 1981 ई.
39.	हजारी प्रसाद द्विवेदी गन्थावली खण्ड 10	सम्पा. डॉ. मुकुन्द द्विवेदी प्र. राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 8 नेताजी सुभाष मार्ग नई दिल्ली 110002	सं. प्रथम 1981 ई.

सहायक ग्रन्थ ले./सम्पा. प्रकाशन, प्रकाशन वर्ष/संस्करण

1.	आ. रामचन्द्र शुक्ल और चिन्तामणि	ले. राजनाथ शर्मा प्र. विनोद पुस्तक मंदिर आगरा,	17वाँ, 1990 ई.
2.	काव्य दर्पण	ले. वाचस्पति, प. रामदहिन मिश्र प्र. ग्रन्थमाला कार्यालय भिखना पहाड़ी पटना 800004	सं. पुनर्मुद्रण 1983 ई.
3.	जोग लिखी	ले. अज्ञेय प्र. राजपाल एण्ड सन्ज कश्मिरी गेट दिल्ली,	सं. प्रथम 1977 ई.
4.	निबन्ध मानस	सम्पा. प्रो. नलिन विलोचन शर्मा प्र. पुस्तक भंडार पटना	.....
5.	निबन्ध श्री	सम्पा. डॉ. कुंवरचंद्र प्रकाश सिंह एवं डॉ. राजेन्द्र कुमार प्र. भारती भवन एक्जीवीशन रोड-पटना-1	सं. प्रथम 1969 ई.
6.	निबन्ध : पूर्णिमा	सम्पा. डॉ. ब्रजकिशोर मिश्र	सं. प्रथम 1962 ई.

		प्र. प्रकाशन केन्द्र, न्यु बिल्डिंग अमीना बाद, लखनऊ,	
7.	निबन्धः सिद्धान्त और	ले. डॉ. हरिहरनाथ द्विवेदी प्र. विहार हिन्दी ग्रंथ अकादमी सम्मेलन प्रयोगभवन पटना-3,	सं. प्रथम 1971 ई.
8.	प्रतिनिधि हिन्दी निबन्धकार	ले. डॉ. विभूराम मिश्र प्र. अभिनव भारती 42, सम्मेलन मार्ग इलाहाबाद-211003	सं. प्रथम, 1975 ई.
9.	पाश्चात्य काव्यशास्त्र के सिद्धान्त	ले. डॉ. शान्ति स्वरुप गुप्त प्र. अशोक प्रकाशन नई सड़क दिल्ली-9	सं. पंचम, 1979 ई.
10.	बाल मुकुन्द गुप्त एक मूल्यांकन	सम्पा. कल्याणमल लोढ़ा, विष्णुकांत शास्त्री प्र. बालमुकुन्द गुप्त शतवार्षिकी समारोह समिति कलकत्ता,	सं. प्रथम, 2022 संवत्
11.	शांतिप्रिय द्विवेदी जीवन और साहित्य	ले. डॉ. मालती रस्तोगी प्र. कल्पकार प्रकाशन 52, बादशाह नगर लखनऊ-7,	सं. प्रथम, 1974 ई.
12.	समसामयिक हिन्दी निबन्ध	ले. ज्ञानेन्द्र वर्मा प्र. ज्ञान भारती प्रकाशन, सी 8 मॉडल टाउन, दिल्ली-9	सं. प्रथम, 1969 ई.
13.	समीक्षायण	ले. प्रो. कन्हैया लाल सहल प्र. रामलाल पुरी, आत्माराम एण्ड सन्स काश्मिरी गेट, दिल्ली	सं. प्रथम, 1950 ई.
14.	समसामयिक हिन्दी साहित्य	सम्पा. समिति, डॉ. हरिवंश राय बच्चन इत्यादि प्र. साहित्य अकादमी, नई दिल्ली	सं. 1967 ई.
15.	साहित्यिक निबन्ध	सम्पा. त्रिभुवन सिंह	सं. तृतीय, 1985 ई.

		प्र. विजय प्रकाश बेरी, हि. प्रचारक संस्थान-पिशाच मोचन वाराणसी 221010	
16.	साहित्य रुप शास्त्रीय विश्लेषण	ले. ज्ञा का गायकवाड़ प्र. विद्यानिवास 87/336, आचार्य नगर कानपुर-208003,	सं. प्रथम 1978 ई.
17.	सिया शरण गुप्त का साहित्य एक मूल्यांकन	ले. परमलाल गुप्त प्र. नवयुग ग्रन्थागार सी. 747 महानगर लखनऊ,	सं. प्रथमावृति 2023
18.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	ले. रामचन्द्र शुक्ल प्र. नागरी प्रचारिणी सभा वाराणसी	सं. 22वाँ, संवत् 2045
19.	हिन्दी साहित्य का इतिहास	सम्पा. डॉ. नगेन्द्र प्र. नेशनल पब्लिशिंग हाउस दरियागंज नयी दिल्ली-110002,	सं. दूसरा 1988 ई.
20.	हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास	ले. रामस्वरुप चतुर्वेदी प्र. लोक भारती प्रकाशन 15 ए, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाद-1,	सं. द्वितीय (पुनर्मुद्रण) 1993 ई.
21.	हिन्दी निबन्धकार	ले. जयनाथ नलिन प्र. रामलाल पुरी, आत्माराम एण्ड सन्स कश्मीरी गेट दिल्ली-6	सं. 1954 ई.
22.	हिन्दी निबन्धों का शैलीगत अध्ययन	ले. डॉ. मु. ब. शहा प्र. पुस्तक संस्थान 109/ 50 ए नेहरु नगर, कानपुर-12,	सं. 1973 ई.
23.	हिन्दी निबन्ध का विकास	ले. ओंकारनाथ शर्मा प्र. अनुसन्धान प्रकाशन 87/259 आचार्य नगर कानपुर,	सं. 1964 ई.
24.	हिन्दी के वैयक्तिक	ले. श्री वल्लभ शुक्ल	सं. प्रथम, 1963 ई.

	निबन्ध	प्र. साहित्य भवन प्रा. लि. इलाहाबाद	
25.	हिन्दी निबन्ध	ले. प्रभाकर माचवे प्र. राजकमल प्रकाशन बम्बई	सं. 1955 ई.

पत्र—पत्रिकाएँ

1.	अक्षत (पत्रिका)	सम्पा. डॉ. श्री राम परिहार सम्पर्क आजाद नगर खण्डवा 450001	वसंत शरद-98
2.	समीक्षा (पत्रिका)	प्रधान सम्पा. देवेन्द्रनाथ शर्मा सम्पर्क सी 1/2 युनिवर्सिटी कॉलोनी राजेन्द्र नगर, पटना-800016	जून 1973 ई.
3.	समीक्षा (पत्रिका)	सम्पा. गोपाल राय	नव दिस 1975 ई.
4.	साहित्य अमृत (मासिक)	सम्पा. डॉ. विद्यानिवास मिश्र प्र. श्याम सुन्दर, 4/49 (पत्रिका) जून 1998 आसफअली रोड नई दिल्ली-2	....

कोश :

1.	हिन्दी साहित्य कोश भाग-1	प्रधान सम्पा. धीरेन्द्र वर्मा प्र. ज्ञान मण्डल लि. वाराणसी-1	.....
2.	हिन्दी की शब्द सम्पदा	ले. डॉ. विद्यानिवास मिश्र प्र. राजकमल प्रकाशन प्रा. लि. 8 फैज बाजार, दिल्ली-6	सं. प्रथम, 1970 ई.

लेखक परिचय

लेखक : डॉ. प्रफुल्ल कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर सह अध्यक्ष-''हिन्दी विभाग'', राम रतन सिंह महाविद्यालय मोकामा, पटना। पाटलिपुत्र वि.वि., पटना।

जन्म : 27 नवम्बर 1965 ई.

स्थायी पताः ग्राम-चकमें बरवाटोला, पोस्ट-चकमें, थाना-बुढ़मू, जिला-राँची(झारखंड)।

वर्तमान पता : D/10, ओल्ड पोस्टआफिस लेन, चित्रगुप्त नगर, पोस्ट-लोहिया नगर, कंकड़बाग, पटना(बिहार)पिन-800020

संपर्क : मो.न.-6202376429

ई.मेल- prafullkr93@gmail.com

शिक्षा : प्रारम्भिक- माध्यमिक विद्यालय चकमें, ऊच्च विद्यालय खेलारी, राँची। स्नातक(हिन्दी प्रतिष्ठा)- संत जेवियर्स कालेज, राँची। स्नातकोत्तर- स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग राँची वि.वि.राँची।

पीएच.डी.- स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग राँची, वि.वि.राँची।

स्नातकोत्तर शिक्षा हेतु राँची वि.वि. द्वारा मेधा छात्रवृत्ति प्राप्त।

यू.जी.सी. द्वारा आयोजित व्याख्याता पात्रता परीक्षा-'बेट'(बिहार पात्रता परीक्षा) उत्तीर्ण।

माता-पिता : श्रीमति धनमती देवी एवं स्वर्गीय बलदेव महतो।

पत्नी : श्रीमति सुधा कुमारी(एम.एस.सी-रसायन शास्त्र, बी.एड.)।

पुत्र : प्रियांशु प्रियम एवं शिवम् प्रत्युष।

अन्य पारिवारिक सदस्य : स्व. मानस कुमार-श्रीमति सुमित्रा देवी, श्री ओम प्रकाश-श्रीमति बसंती देवी, श्री संजय कुमार-श्रीमति किरण देवी, श्री शैलेन्द्र कुमार-श्रीमति पार्वती देवी, श्री अनिल कुमार-श्रीमति बसंती देवी। रेखा, पुनम, सीमा, विनिता, श्रेया, अनु, गौतम, सुमित, अमित, विक्रम, सुशांत, अर्पित। अनुपम, ज्योत्सना, प्रिंसेज(निधि) एवं अनमोल।

कार्यानुभव : अगस्त 2003 ई. से मार्च 2018 ई. तक राम रतन सिंह महाविद्यालय मोकामा, पटना (मगध वि.वि.बोधगया)एवं मार्च 2018 से लगातार राम रतन सिंह महाविद्यालय मोकामा, पाटलिपुत्र वि.वि. पटना, बिहार में हिन्दी प्राध्यापक।

सम्पादन एवं प्रकाशित आलेख :

1. छात्र सम्पादक- महाविद्यालय पत्रिका (Student's Forum-1989-90)- संत जेवियर्स कालेज राँची, राँची वि. वि. राँची।
   -'अगर है जिंदगी' कविता पत्रिका में प्रकाशित।
2. प्रधान सम्पादक-महाविद्यालय पत्रिका 'रतन सागर' 2017 ई., प्रथम संस्करण, राम रतन सिंह कालेज, मोकामा, पटना। मगध वि. वि.बोधगया की अंगीभूत इकाई(नैक-ग्रेड 'बी')
3. आलेख-'ऋषिकल्प साहित्य साधक'- नई धारा- जून-सित- 2004 ई., पृष्ठ-156, R.N.I N0-3906/57. Regd. PT-79
   सौजन्य सम्पादक- शिवनारायण।
4. आलेख-'महिला सशक्तिकरण और वैश्वीकरण'-वैश्वीकरण एवं महिला सशक्तिकरण (विविध आयाम)-2009 ई. पृ.50-60, ISBN-978-81-8484-031-5 सम्पादक-डा. विपिन कुमार, रीगल प्रकाशन, नई दिल्ली-110027
5. आलेख-'श्रद्धेय शिवचन्द्र बाबू'-शिवचंद्र : स्मृति पुष्प, संस्करण-2018 ई., पृष्ठ-115-118, ISBN-978-81-86400-60-5,
   सम्पादक-डा.उमेशचन्द्र शुक्ल, निर्मल प्रकाशन, दिल्ली-110094.
6. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग सम्पोषित राष्ट्रीय संगोष्ठियों में प्रकाशित स्मारिकाओं में आलेख- 1-महिला सशक्तिकरण और वैश्वीकरण, 2-गाँधीवादी आदर्श एवं वैश्वीकरण, 3-नारीवादी साहित्य में नारी समाज की चिंता, 4-महिलाओं का समावेशीकरण-आज की जरूरत, 5-प्रेमचन्द और दलित विमर्श, 6-नारी-विमर्श आदि।

सक्रियता : आजीवन सदस्य-बिहार-हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, कदमकुआँ, पटना-3. कार्यक्रम पदाधिकारी-राष्ट्रीय सेवा योजना। संयोजक-साहित्यिक सांस्कृतिक परिषद एवं पत्रिका समिति, राम रतन सिंह महाविद्यालय मोकामा, पटना।

वर्तमान में अद्ध्यापन, पुस्तक, शोध-पत्र, आलेख-लेखन एवं विभिन्न साहित्यिक-सांस्कृतिक कार्यक्रमों में व्यस्त।